पुराने समय में मनोविज्ञान, अध्यात्म-विद्या का ही एक
जाता था। जैसे-जैसे मनोविज्ञान ने वैज्ञानिक रूप धारण किया,
विद्या से अलग हो कर जड़वादी बनता गया। मन कोई भौ
पदार्थ तो है नहीं जिसे इन्द्रियों का विषय बनाया जा सके इसी
जाने लगा कि मनोविज्ञान मनुष्य की चेतना (Conscious
अध्ययन करता है।

एक व्यक्ति की चेतना जो अनुभव करती है, यह आव
दूसरे व्यक्ति की चेतना भी वही अनुभव करे। नदी का रूप कर
को बहुत अच्छा लग सकता है परन्तु दूसरा इसे व्यर्थ का सो
सकता है। फिर चेतना को लेकर कोई परीक्षण भी नहीं किया
इसलिए अब यह समझा जाने लगा कि मनोविज्ञान मनुष्य
(Behaviour) का अध्ययन करता है। आचरणवादियों के हा
मनोविज्ञान केवल शरीर-विज्ञान (Physiology) ही बन कर

मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय (Psycho Analytic Sc
अनुसार हम जो कुछ भी करते, कहते तथा सोचते हैं, उसका आ
अचेतन मन (Unconcious mind) ही होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ उग्र आचरणवादियों (Be
rists) को छोड़ कर सभी मनोविज्ञान का सम्बन्ध मन के सा
किसी रूप से करते हैं। आचरण मनुष्य के मन की कुञ्जी है।
अध्ययन मनोवैज्ञानिक अवश्य करेगा परन्तु वह आचरण के मानसि
ही अधिक ध्यान देगा। अन्त में हम कह सकते हैं कि "मनोविज्ञा
चेतन अथवा अचेतन मन से प्रेरित आचरण का अध्ययन करता है।

"शिक्षा क्या है ?"—मनोविज्ञान के समान ही शिक्षा के सम्ब
... आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ लोग इसे जीविक

(Intellectual Development) करना ही शिक्षा का महान ध्येय है। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र मे ज्ञानार्जन को ही प्रधानता देनी चाहिए।

प्राचीन भारतीय आचार्य तथा पश्चिम के हरबार्ट (Herbart) आदि विद्वान चरित्र-निर्माण (Character Building) को ही, शिक्षा का ध्येय मानते हैं उनके मतानुसार जिस व्यक्ति का नैतिक (Moral) विकास नही होता, वह पशु के समान है।

नन (Nunn) आदि पश्चिमी विद्वान व्यक्तित्व के विकास (Development of Individuality) को ही शिक्षा का चरम-लक्ष समझते हैं।

डिवी (Dewey) और उसके अनुयाइयों के अनुसार पाठशाला समाज का ही छोटा सा स्वरूप है जहाँ बालक को सामाजिक उपयोगिता (Social efficiency) का पाठ पढ़ाया जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओ को देखने से यद्यपि उनमे केवल भिन्नता ही दिखाई देती परन्तु फिर भी एक ऐसा समान तत्व है जो प्रत्येक परिभाषा मे मिल जायगा। चरम लक्ष्य कुछ भी क्यो न हो सभी विद्वान यह चाहते हैं कि शिक्षा के द्वारा शिक्षार्थी का मन इस प्रकार परिवर्तित हो जाए जिससे कि एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति सफलता पूर्वक हो सके। अतएव परिभाषा के रूप मे हम यह कह सकते हैं कि "वाछित उद्देश्य की पूर्ति के लिए, बालकों में मानसिक परिवर्तन उत्पन्न करना ही शिक्षा का प्रधान कार्य है।"

शिक्षा मनोविज्ञान और उसकी परिभाषा—शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा-मनोविज्ञान एक नया विषय है। मनोविज्ञान (Psychology) का विकास उन्नीसवी शताब्दी मे हुआ तथा शिक्षा-मनोविज्ञान (Educational Psychology) का बीसवी शताब्दी मे। मनोविज्ञान के अनेकों अंगों के समान शिक्षा मनोविज्ञान भी एक अंग है। पिछले पचास वर्षों मे शिक्षा-मनोविज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है कि प्रत्येक अध्यापक के लिए इस का ज्ञान आवश्यक सा हो गया है। शिक्षा मनोविज्ञान क्योंकि अभी नया-नया है और विकास की अवस्था मे है इसलिए इस की कोई स्थायी परिभाषा निश्चित नहीं की जा सकती। शिक्षा मनोविज्ञान को हम एक व्यावहारिक मनोविज्ञान

(Applied Psychology) कह सकते हैं। इस का लक्ष्य केवल मन का ज्ञान करना ही नही वरन् उस ज्ञान को अपने काम मे लाना और उससे लाभ उठाना है।

अध्यापक के लिए मनोविज्ञान की आवश्यकता—

(१) पाठ्य-विषय के समान बालक का ज्ञान भी आवश्यक—प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री एडम्स (Adams) के नीचे लिखे कथन को आज सभी स्वीकार करते हैं :—"शिक्षा के कार्य को भलीभाँति चलाने के लिए अध्यापक को दो बातो की जानकारी आवश्यक है—एक पाठ्य-विषय की और दूसरे बालक की मानसिक प्रवृत्तियों तथा योग्यताओ की" (The verb of teaching governs two accusatives in "the teacher taught John Latin"—the teacher must know John as well as Latin)। शिक्षा-मनोविज्ञान हमे बालको की स्वाभाविक रुचि, उनके मन की शक्तियो एवं प्रवृतियो का ज्ञान कराता है। अध्यापक का कार्य है इन प्रवृत्तियों के अनुसार ही बालको की शिक्षा की व्यवस्था करना।

(२) बुद्धिमापक परीक्षाएँ—शिक्षा-मनोविज्ञान ने बुद्धि माप (Mental measurement) को प्रमाणिक (Standardized) बना कर एक बहुत बड़ा काम किया है। अब प्रत्येक बालक की बुद्धि मापी जा सकती है और यह पता लगाया जा सकता है कि उसकी ग्रहण-शक्ति कितना है। अध्यापक बुद्धि के स्तर के अनुसार विद्यार्थियों का श्रेणी-विभाजन करके, छात्रों के श्रम तथा अभिभावको के धन की बचत कर सकते हैं।

(३) अवधान (Attention) सम्बन्धी प्रयोग—शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र मे अवधान के सम्बन्ध मे अनेको प्रयोग हो चुके हैं और उनके अनुसार इस बात का पता लगाया जा चुका है कि किसी विषय मे बालक की रुचि कैसे बढ़ाई जा सकती है। बालकों के अवधान को स्थिर रखने के लिए अध्यापक मान-चित्र, श्यामपट, मूर्तिया, आदि कई उपकरणों को काम मे लाएगा तथा बीच-बीच मे प्रश्न भी पूछता जाएगा।

(४) सीखने के नियमों (Laws of L

के नियमों के सम्बन्ध में शिक्षा-मनोविज्ञान ने काफी परिमाण में सामग्री प्रस्तुत कर दी है। अध्यापक उससे लाभ उठा सकता है। उदाहरण स्वरूप यह बात अब प्रमाणित हो चुकी है कि यदि बालकों को कविता सिखानी है तो अंश-पद्धति (The Part Method) के स्थान पर पूर्ण-पद्धति (The Whole Method) को अपनाना चाहिए।

(५) मनोविज्ञान द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की परीक्षा—मनोविज्ञान शिक्षार्थियों के लिए कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं करता। लक्ष्य निश्चित करना शिक्षा का कार्य है। शिक्षा द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति करना मनोविज्ञान का कार्य है। मनोविज्ञान के द्वारा इस प्रकार की विधियाँ प्रयोग में लाई जायेंगी जिनसे हम उन लक्ष्यों तक पहुँच सकें। साथ ही साथ मनोविज्ञान यह भी देखता है कि क्या हम इन लक्ष्यों को प्राप्त भी कर सकते हैं या नहीं। यदि नहीं तो क्यों ?

(६) बालकों के मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) का ध्यान रखना—कक्षा-गृहों में प्रायः झगड़ालू, चोर झूठे तथा अपराधी बालक देखे जाते हैं। ऐसे सब बालक मानसिक रूप से अस्वस्थ हैं। जिस अध्यापक ने शिक्षा-मनोविज्ञान का अध्ययन किया होगा वह ऐसे बालकों को मानसिक चिकित्सा (Psychiatry) की सहायता से, फिर से स्वस्थ बना सकता है। यूरोप और अमेरिका के कई प्रगतिशील विद्यालयों में ऐसे चिकित्सालयों (Clinics) का आयोजन किया गया है जहाँ मानसिक रूप से अस्वस्थ बालकों की चिकित्सा की जाती है।

(७) बालकों के प्रति सहानुभूति का भाव—जिस अध्यापक ने मनोविज्ञान का अध्ययन किया होगा वह बालकों के प्रति सहानुभूति का भाव रखेगा [illegible] शुष्क नहीं होगा। बाल [illegible] र कर इन घृणा नहीं करेगा। [illegible] करना—बहुत से अध्यापक [illegible] तथा हीनता की भावना [illegible] हैं। ऐसे अध्यापक बालकों [illegible] के

अध्यापकों को अपनी इन दुर्बलताओं का ज्ञान हो जाता है तथा वे
मानसिक चिकित्सा स्वयं कर सकते हैं। मानसिक तथा शारीरिक रूप
स्थ अध्यापक ही बालकों को प्रेरणा दे सकता है।

Q. 3. Describe the various methods used in the study of educational psychology. Discuss in particular the observational method. [Agra 1958]

(शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन में किन-किन विधियों का प्रयोग किया जाता है—इसकी चर्चा करते हुए निरीक्षण पद्धति पर विस्तार से प्रकाश डालो।) [आगरा १९५८]

Q. 4. Show the importance and drawbacks of introspection and experiment as method of obtaining data for educational psychology. [Panjab 1951 suppl.]

(शिक्षा मनोविज्ञान में प्रयुक्त अन्तदर्शन तथा परीक्षण पद्धतियों पर प्रकाश डालते हुए इनकी विशेषताओं की चर्चा करो।) [पंजाब १९५१ सप्ली]

Q. 5. Describe how experiment and psycho-analysis have been used to obtain psychological data [Agra 1952, Panjab, 1954, 1952]

(परीक्षण पद्धति तथा मनोविश्लेषण पद्धति द्वारा किस प्रकार मनोवैज्ञानिक प्रदत्तो का संकलन किया जा सकता है?) [आगरा १९५२, पंजाब १९५४, १९५२]

उत्तर—शिक्षा मनोविज्ञान भी एक विज्ञान है अतएव इसके अध्ययन की विधियाँ भी वैज्ञानिक हैं। परन्तु अन्य विज्ञानो से मनोविज्ञान में एक विशेषता है। वह चेतन मनुष्यो का अध्ययन करता है। वास्तव मे मनुष्य का मन इतना गहन है कि किसी एक पद्धति द्वारा उसे नही समझा जा सकता। शिक्षा-मनोविज्ञान के अध्ययन में प्रमुख रूप से नीचे लिखी विधियो का प्रयोग किया जाता है :—

(क) अन्तरदर्शन (Introspection)

(ख) निरीक्षण (Observation)

(ग) प्रयोग अथवा परीक्षण (Experiment)
(घ) तुलना (Comparitive Method)
(च) मनोविश्लेषण (Psycho-analysis)
(छ) व्यक्ति इतिहास (Case History)
(ज) प्रॉजेक्टिव विधि (Projective Technique)

(क) अन्तरदर्शन (Introspection)—इस पद्धति का सम्बन्ध व्यक्ति
ाप से है। कोई भी व्यक्ति एकान्त स्थान मे जा कर अपने मन की गति-
यों का स्वय अध्ययन करता है और उन का कारण खोजने का प्रयत्न
ा रहता है। मानसिक क्रिया मे एक विशेषता होती है। वह इतनी
तक होती है कि उस तक किसी दूसरे की पहुँच नही हो सकती हमारे मन
या हो रहा है, इस का ज्ञान केवल हमे ही हो सकता है। मान लीजिए
कोई दुःख या क्लेश है। अब इस का अनुभव केवल मैं ही कर सकूँगा।
रे इस दुःख का अनुभव नही कर सकते। मुझे कितना क्लेश है तथा इस
या कारण हो सकते है, इस की जानकारी, दूसरों को मेरे बताने पर ही हो
ती है। इस प्रकार सामग्री प्राप्त करने की जो क्रिया है वह अन्तरदर्शन
ntrospection) कहलाती है।

तरदर्शन पद्धति की विशेषताएँ—

(१) इस विधि का प्रयोग किसी भी समय, किसी भी स्थान पर किया
सकता है। इस मे किसी भी प्रकार के उपकरणो (Apparatus and
uipment) की आवश्यकता नही पड़ती।

(२) जितने भी मानसिक अनुभव है वह व्यक्ति स्वयं ही कर सकता है।
य साधनो द्वारा उन की पूरी-पूरी जानकारी नहीं हो सकती।

(३) मानसिक क्रियाओ के सम्बन्ध मे, भिन्न-भिन्न व्यक्तियो को जो
भव हुए है, उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

तर्दर्शन पद्धति की सीमाएँ—

(१) हम जिस मानसिक क्रिया का अध्ययन करना चाहते है, अध्ययन
समय वह क्रिया नष्ट हो जाती है। उदाहरण स्वरूप मुझे क्रोध आ रहा है

निरीक्षण-विधि के समान ही है। दोनो मे अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ निरीक्षण विधि मे वातावरण स्वतन्त्र तथा स्वाभाविक होता है वहाँ प्रयोग विधि मे प्रयोगकर्ता, आवश्यकतानुसार वातावरण में फेर बदल कर सकता है। वर्तमान समय मे बालको के सीखने की क्रिया (Learning), थकावट (Fatigue), अवधान (Attention) आदि के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं।

प्रयोग पद्धति की विशेषताएँ—

(१) प्रयोगकर्ता का वातावरण पर पूर्ण अधिकार होता है। बाधा उपस्थित करने वाले तत्वो को प्रयोगशाला मे कोई स्थान नही दिया जाता।

(२) इस विधि के द्वारा हम ठीक-ठीक परिणामो पर पहुँचने मे समर्थ हो सकते हैं।

प्रयोग पद्धति की सीमाएँ—

(१) वातावरण (Environment) के सभी तत्वों पर अधिकार प्राप्त करना बडा कठिन होता है।

(२) प्रयोगशाला (Laboratory) का वातावरण कृत्रिम होता है इसलिए यह आवश्यक नही कि हर हालत मे बालको का आचरण (Behaviour) स्वाभाविक ही हो।

(घ) तुलना—(Comparitive Mathod)—शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन की यह चौथी विधि है। तुलना विधि मे मनोविज्ञान के आचार्य पशु-पक्षियो की क्रियाओं का निरीक्षण करते हैं तथा उनके व्यवहारों की तुलना मनुष्यो के आचरण से की जाती है। जो मूल-प्रवृत्तियाँ अपने विकसित स्वरूप मे मानवो मे पाई जाती है वही अपने वास्तविक रूप मे पशु-पक्षियों में भी होती है। स्नेह, प्रेम, भय, क्रोध, ईर्ष्या आदि के भाव मनुष्यों के साथ-साथ पशुओ मे भी पाए जाते हैं। यह अवश्य बात है कि शिक्षा और सभ्यता के प्रभाव से मनुष्य इन भावो को छिपा सकता है अथवा नए रूप में प्रकट कर सकता है। मनुष्य के स्वभाव को समझना बड़ा कठिन है परन्तु पशु-पक्षियों का आचरण सरलता से समझ मे आजाता है।

निरीक्षण-विधि के समान ही है। दोनों मे अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ निरीक्षण विधि मे वातावरण स्वतन्त्र तथा स्वाभाविक होता है वहाँ प्रयोग विधि मे प्रयोगकर्ता, आवश्यकतानुसार वातावरण मे फेर बदल कर सकता है। वर्तमान समय मे बालको के सीखने की क्रिया (Learning), थकावट (Fatigue), अवधान (Attention) आदि के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं।

प्रयोग पद्धति की विशेषताएँ—

(१) प्रयोगकर्ता का वातावरण पर पूर्ण अधिकार होता है। बाधा उपस्थित करने वाले तत्वो को प्रयोगशाला मे कोई स्थान नही दिया जाता।

(२) इस विधि के द्वारा हम ठीक-ठीक परिणामो पर पहुँचने मे समर्थ हो सकते हैं।

प्रयोग पद्धति की सीमाएँ—

(१) वातावरण (Environment) के सभी तत्वो पर अधिकार प्राप्त करना बड़ा कठिन होता है।

(२) प्रयोगशाला (Laboratory) का वातावरण कृत्रिम होता है इसलिए यह आवश्यक नही कि हर हालत में बालको का आचरण (Behaviour) स्वाभाविक ही हो।

(घ) तुलना—(Comparitive Mathod)—शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन की यह चौथी विधि है। तुलना विधि मे मनोविज्ञान के आचार्य पशु-पक्षियों की क्रियाओं का निरीक्षण करते हैं तथा उनके व्यवहारों की तुलना मनुष्यो के आचरण से की जाती है। जो मूल-प्रवृत्तियाँ अपने विकसित स्वरूप मे मानवो में पाई जाती है वही अपने वास्तविक रूप मे पशु-पक्षियो में भी होती हैं। स्नेह, प्रेम, भय, क्रोध, ईर्ष्या आदि के भाव मनुष्यो के साथ-
मे जाते हैं। यह अलग बात है कि शिक्षा और सभ्यता
ों को छिपा सकता है अथवा नए रूप मे प्रकट कर
को समझना बड़ा कठिन है परन्तु पशु-पक्षियों
आजाता है।

पैवलाव (Pavlov) ने सम्बद्ध सहज क्रिया (Conditioned eflex action) नामक सिद्धान्त के निर्माण में तथा थार्नडाईक (Thorndike) ने प्रयत्न और भूल (Trial and Error) नामक सिद्धान्त के र्माण में पहले-पहल पशुओं पर ही प्रयोग किए। वहाँ सफलता मिलने पर ह प्रयोग मनुष्यों पर भी किए गए।

(च) मनोविश्लेषण (Psycho-analysis)—मनोविश्लेषणवाद के चार्यों में फ्रायड (Freud), युंग (Jung) तथा एडलर (Adler) दि का नाम लिया जा सकता है। मनोविश्लेषणवादियों के मतानुसार चेतन न (Conscious mind) के समान, मनुष्यों का अचेतन मन Unconscious mind) भी होता है। जिन प्राप्त अनुभवों को मनुष्य । चेतना मन विस्मृत कर देता है, वे अनुभव नष्ट न हो कर हमारे अचेतन न में संचित होते रहते हैं और अचेतन मन में रह कर हमारे चेतन आचरण ो बराबर प्रभावित करते रहते हैं। कभी- कभी मनुष्य ऐसा आचरण कर ठते है जिनका बाह्य दृष्टि से कोई उपयुक्त कारण नहीं दिखता। मन का श्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि उनकी तह में भी, अचेतन मन में पड़ा ा कोई पूर्व संचित अनुभव ही है।

मनुष्य के पिछले इतिहास को जानकर, मनुष्य के आचरण का अध्ययन रके, स्वप्नों (Dreams) का विश्लेषण करके, रोगी को मोह निद्रा Hypnosis) में लाकर तथा स्वतन्त्र कथन (Free Association) ादि के द्वारा, मनुष्यों के अचेतन मन की गहराइयों तक पहुँचने का यत्न कया जाता है ताकि चेतन आचरण को समझा जा सके।

(छ) व्यक्ति इतिहास (Case History)—इस विधि के द्वारा व्यक्ति के अतीत इतिहास तथा वर्तमान इतिहास से सम्बन्धित सामग्री एकत्रित की जाती है। और इस सामग्री के आधार पर बालक के व्यक्तित्व को समझने का यत्न किया जाता है। इस सामग्री में परिवार का इतिहास, शिक्षा सम्बन्धी तथा वे सभी बातें आजाएँगी, जिनका सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से है। इस पद्धति का प्रयोग समस्यात्मक बालकों (Problem Children) के

नार्थ ही किया जाता है। साधारण (Normal) बालको की दृष्टि से
यह विधि बडी उपयोगी है।

(ज) प्रॉजैक्टिव विधि (Projective Technique)—ऐसा समझा
ा है कि यदि व्यक्ति को स्वतन्त्र रूप से कल्पनात्मक जगत मे छोड दिया
; तो वह अपनी भावनाओ को दूसरी वस्तुओ मे आरोपित करता है।
ल के एक टुकडे को कोई बालक हाथी समझता है, कोई चीता तथा कोई
इत्यादि इत्यादि। स्विटजरलैंड (Switzerland) का प्रसिद्ध मनो-
ानिक रोशा (Rorschach) स्याही के धब्बो (Ink blots) के द्वारा
मरे (Murray) अपने बीस चित्रो वाले थैमेटिक एपरसैपशन टेस्ट
hematic Apperception Test TAT) के द्वारा मनुष्य के
तित्व का मूल्यांकन करते हैं। यहाँ व्यक्ति-विशेष को इस बात का
पूरा अवसर प्रदान किया जाता है कि वह इन स्याही के धब्बों या चित्रों
अपनी अवचेतन अथवा गुप्त भावनाओ का आरोपण करे।

२

मूल-प्रवृत्तियां और संवे

(Instincts and Emotion

Q. 6. What is an instinct or life urge? What are t characteristics of the human instincts. What is the *importan* of their study in Education? What is the difference between t *instincts of a man* and the instincts of other animals? Enumer *them with their corresponding emotions.*

[Panjab 1952, 1953, 1956, Banaras 1953, Rajasthan 194

(मूल प्रवृत्ति या जीवन-तत्व किसे कहते हैं? मनुष्यों की मूल प्रवृत्तियों की क्या-क्या विशेषताएँ हैं? शिक्षा की दृष्टि से इन मूल प्रवृत्तियों का क्या महत्व है? मनुष्यों की मूल प्रवृत्तियों और पशु की मूल प्रवृत्तियों में क्या अन्तर है संवेगों सहित सभी मूल-प्रवृत्तियों क वर्गीकरण प्रस्तुत करो।)

[पंजाब १९५२, १९५३, १९५६, बनारस १९५३, राजस्थान १९४९

उत्तर—यदि हम कुछ जीव-जन्तुओं (*Insects*) तथा पक्षियों का भल भान्ति निरीक्षण करें तो पता चलेगा कि उन्हें बहुत सी बातें सीखने क आवश्यकता ही नहीं पड़ती। उदाहरण स्वरूप इन्हें घोंसला बनाना कोई भ नहीं सिखाता। इसी प्रकार कई पशु-पक्षी जन्म से ही तैरना जानते हैं। उन्हे कोई तैरना सिखाता नहीं। पशु-पक्षियों का यह आचरण मूल-प्रवृत्तिजन्य आचरण (Instinctive behaviour) कहलाता है।

(१३) सामूहिकता (Gregariousness, Social instinct) — अकेलापन (Feeling of lonliness)

(१४) हास (Laughter) — आमोद (Amusement)

टैन्सले (Tansley) इन मूल-प्रवृत्तियों को तीन भागों में विभाजित करता है।

(क) स्वत्व सम्बन्धी मूल-प्रवृत्तियाँ (Individual instincts)—जैसे भोजन खोजना, जिज्ञासा, पलायन तथा लड़ने आदि की प्रवृत्तियाँ, ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य की आत्म-रक्षा तथा आत्म-विकास की क्रियाओं की प्रेरक होती है।

(ख) सामाजिक प्रवृत्तियाँ (Social instincts)—जैसे सामूहिकता, आत्म-गौरव, विनय की प्रवृत्ति, हँसने की प्रवृत्ति। ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य को सामाजिक कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं।

(ग) सन्तति सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ (Sex instincts)—जैसे काम-प्रवृत्ति (Mating), शिशु रक्षा की प्रवृत्ति। इनका सम्बन्ध सन्तानोत्पत्ति तथा मनुष्य जाति की रक्षा से है।

मूल-प्रवृत्तियाँ और शिक्षा—

ऊपर इस बात का कथन हो चुका है कि मनुष्यों की मूल-प्रवृत्तियाँ परिवर्तनशील है। यदि हम बालकों के आचरण सम्बन्धी परिवर्तन करना चाहते है तो इन मूल-प्रवृत्तियों से सहायता लेनी होगी।

शिक्षा का एक प्रमुख कार्य है, बालकों में आचरण सम्बन्धी परिवर्तन करना। यह कार्य सुचारु रूप से हो सकता है जबकि अध्यापक को इन मूल-प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में पूरा-पूरा ज्ञान हो।

Q 7. What is meant by the modification of instincts? In what way can we modify these instincts?

("मूल प्रवृत्तियों का परिवर्तन"—इस का क्या तात्पर्य है? हम मूल प्रवृत्तियों का परिवर्तन किस प्रकार कर सकते है)?

Instinct)	सम्बद्ध संवेग (Corresponding Emotion)
पलायन (Flight or escape)	भय (Fear)
भोजन ढूंढ़ना (Food seeking)	भूख (Appetite)
ड़ना (Combat or ugnacity)	क्रोध (Anger)
ज्ञासा (Curiosity)	आश्चर्य (Wonder)
ायकता, रचना onstruction)	रचना का आनन्द (Feeling Creativeness)
(Acquisition hoarding)	अधिकार भावना (Feeling of ownership)
ण (Repulsion epugnance)	घृणा (Disgust)
गौरव, आत्म- न (Self asser- or self-Display)	उत्साह, आत्माभिमान (Elation positive self-feeling)
विनीत भाव nission, self nent)	आत्म-हीनता (Subjection, Negative self-feeling)
ना, शिशु रक्षा ntal instinct)	वात्सल्य, स्नेह (Tender emotion, affection)
ति (Sex, uction,)	कामुकता (Lust)
(Appeal)	करुणा (Distress)

दमन (Repression)—इस विधि के द्वारा बालकों की मूल प्रवृत्तियों में जितनी जल्दी परिवर्तन हो जाता है, उतना किसी और साधन से नहीं होता। पुराने समय से अध्यापक दण्ड द्वारा बालकों की मूल-प्रवृत्तियों का दमन करते आए हैं। परन्तु आधुनिक मनोविज्ञान, बालकों की मूल-प्रवृत्तियों में परिवर्तन करने के लिए दमन के उपाय का समर्थन नहीं करता, किसी भी मूल-प्रवृत्ति में यदि दमन द्वारा परिवर्तन किया जाए तो परिणाम बुरे हो सकते हैं। बालक दब्बू और उत्साहहीन हो जाएंगे। कभी-कभी वे उद्दण्ड और दुराचारी भी हो सकते हैं। जो बालक हमेशा कठोर नियन्त्रण में रखे जाते हैं उनके मन में सदा अन्तर्द्वन्द्व चला करता है जो बाद में जाकर भावना ग्रंथियों (Complexes) को जन्म दे सकते हैं। ऐसे बालकों की इच्छा शक्ति निर्बल हो जाती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका यह अर्थ कदापि नहीं कि इस विधि को शिक्षा के क्षेत्र से बाहर ही कर दिया जाए। ऐसी कई मूल-प्रवृत्तियां हैं जिनकी पूर्ण तृप्ति न तो हितकर है और न तो नीति की दृष्टि से उचित ही। उदाहरण स्वरूप संग्रह वृत्ति को लीजिए। खाना-पीना, कपड़ा इत्यादि आवश्यक वस्तुओं के उचित संग्रह के बिना जीवन चल ही नहीं सकता। परन्तु यही मूल-प्रवृत्ति अपने प्रबल रूप में चोरी, डाका, मारकाट, कंजूसी आदि बुरी बातों को जन्म देती है बालकों में आत्म-नियन्त्रण की शक्ति नहीं रहती। कुछ समय तक बाह्य अनुशासन की आवश्यकता होती है। वही बाह्य अनुशासन कुछ समय के पश्चात आत्मानुशासन में परिणित हो जाता है। परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाए कि शिक्षा में इस विधि का प्रयोग कम से कम किया जाए। यदि किसी मूल-प्रवृत्ति का दमन करना भी हो तो उसका दमन एकाएक न करके धीरे धीरे करना चाहिए।

विलयन (Inhibition)—मूल-प्रवृत्तियों के परिवर्तन का दूसरा उपाय विलयन है। यह दो प्रकार से हो सकता है :—

(१) निरोध द्वारा अर्थात् किसी समय इस प्रवृत्ति को उत्तेजित होने का अवसर न देना।

(२) विरोध द्वारा अर्थात् जिस समय एक प्रवृत्ति काम कर रही हो उसी समय उसके विपरीत दूसरी प्रवृत्ति को उत्तेजित करना।

उत्तर—पिछले प्रश्न के उत्तर में बताया ही जा चुका है कि मनु[illegible] मूल-प्रवृत्तियाँ इतर प्राणियों की मूल-प्रवृत्तियों से अधिक परिवर्तनशी[illegible] फलस्वरूप अपने जन्म के समय मनुष्य का बालक, पशु-पक्षियों के बच[illegible] अधिक असहाय होता है। परन्तु साथ ही साथ उसमें इतनी क्षमता भी है कि वह संसार का कठिन से कठिन काम भी कर सके। यह तभी स[illegible] हो सकता है जब कि बालकों की मूल प्रवृत्तियों का विकास उचित दि[illegible] हो। अतएव बालकों के माता-पिता तथा अध्यापकों को इस बात की पूरी[illegible] जानकारी होनी चाहिए कि इन मूल-प्रवृत्तियों द्वारा बालक का विकास [illegible] किया जा सकता है।

मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार निम्नलिखित चार विधियों द्वारा मू[illegible] प्रवृत्तियों में परिवर्तन किया जा सकता है :—

(१) दमन (Repression)
(२) विलयन (Inhibition)
(३) मार्गान्तरीकरण (Redirection)
(४) शोध (Sublimation)

इन चारों विधियों को समझाने के लिए पं० लालजीराम शुक्ल ने अपनी पुस्तक बाल-मनोविकास में बड़ा सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। हम बालकों की मूल प्रवृत्तियों की तुलना जल के प्रवाह से कर सकते हैं। जिस प्रकार झरने से जल निकल कर धारा के रूप में बहने लगता है, उसी प्रकार हमारे अदृश्य या अव्यक्त मन से मूल-प्रवृत्ति की शक्ति प्रवाहित होने लगती है। बाँध-बाँध कर जल के प्रवाह में परिवर्तन किया जा सकता है। यह प्रवाह का दमन है। उसकी दिशा मरुस्थल की ओर घुमा कर उसे शोषित किया जा सकता है। यह उसका विलयन है। प्रवाह को नदी या समुद्र की ओर, जो कि उसका सहज मार्ग है, न जाने देकर नहरों द्वारा खेतों की ओर ले जा सकते हैं। यह प्रवाह का मार्गान्तरीकरण है। यदि जल की भाप बना दी जाए, तो उससे मशीनें चलाने का काम लिया जा सकता है। इस क्रिया को शोध कहेंगे।

[illegible] इन सभी विधियों का कुछ विस्तार से वर्णन किया जाएगा।

ता है। किसी मूल-प्रवृत्ति का प्रकाशन शोध की रीति से होने पर यह
माज के लिए परम लाभकारी सिद्ध हो सकती है। संग्रह वृत्ति का उपयोग
ान-संग्रह मे, सद्‌गुण संग्रह आदि मे किया जा सकता है। काम प्रवृत्ति को
रिष्कृत करके उसका उपभोग काव्य-रचना, चित्र कला अथवा मूर्ति निर्माण
किया जा सकता है। कालिदास, सूरदास, बिहारी आदि की रचनाएँ किसे
च्छी नही लगती। अजन्ता, तथा एलोरा के भित्ति चित्र, किसका मन
ाकर्षित नहीं करते। इन सब के मूल मे काम प्रवृत्ति ही तो है। यहाँ काम-
वृत्ति का कितने उत्तम ढंग से शोध हुआ है।

शोध और मार्गान्तरीकरण में अन्तर—मार्गान्तरीकरण मे मूल-प्रवृत्ति के
ाधारण रूप मे परिवर्तन नही होता। वह वैसी की वैसी रह कर समाजो-
पयोगी कार्यों मे प्रयुक्त होती है परन्तु शोध मे मूल-प्रवृत्ति का रूपान्तरण
इतना हो जाता है कि वह पहचानने मे नहीं आती।

आजकल प्राय दमन (Repression) और विलयन (Inhibition)
को दमन ही कह दिया जाता है और मार्गान्तरीकरण (Redirection)
तथा शोध (Sublimation) को शोध के अन्तर्गत ही गिन लिया
जाता है।

Q 8. What are emotions? Give their characteristics. Can
emotions be trained?

[Punjab 1954, 1955, Banaras 1949, Gauhati 1953.]

(संवेग किसे कहते है? इनकी क्या क्या विशेषताएँ है? क्या
संवेगो का विकास किया जा सकता है?)

[पंजाब १९५४, १९५५, बनारस १९४०, गौहाटी १९५३]

Q 9. What is the importance of training the emotions?
What steps must be taken in a school to ensure proper develop-
ment of the emotions? [Punjab 1953 suppl, Rajasthan, 1952]

(संवेगों के प्रशिक्षण का क्या महत्त्व है? पाठशालाओं में संवेगों का
विकास करने के लिए कौन से पग उठाने चाहिए?)

[पंजाब १९५३ सप्लीमेंट, राजस्थान १९५२]

वृत्ति कम हो, तो हमें उनके जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ नहीं आने
चाहिये । यह उपाय दमन से अच्छा है । इसके द्वारा यदि हम वृत्ति को
में पूर्ण रूप से सफल नहीं भी होते तो कम से कम उसको घोर दु
करते और बालकों के मन में भावना-ग्रन्थि की सृष्टि करके, उनके जीवन
र अधिक अवांछनीय नहीं बना देते । परन्तु इस प्रकार की दबी हुई
वसर पाकर उभड़ भी सकती है ।

रे उपाय द्वारा जब बालक के मन में कोई प्रबल अवांछनीय
होती है तो उसे कठोर दण्ड से दबाने की अपेक्षा, वह दूसरी मूल-
को उत्तेजित करता है । लड़ने की मूल-प्रवृत्ति का बल खेल प्रवृत्ति
हो जाता है । संचय करने की प्रवृत्ति का बल सामाजिक मूल-प्रवृत्तियों
हो जाता है ।

र्गान्तरीकरण (Redirection)—यह मूल प्रवृत्तियों के रूपान्तर
तीसरा उपाय है । इसमें न तो मूल प्रवृत्ति का दमन ही किया जाता
ही उत्तेजित होने का अवसर न देकर उसकी शक्ति को क्षीण किया
। हम मार्गान्तरीकरण द्वारा किसी मूल-प्रवृत्ति के प्रकाशन का
देते हैं । बालकों में लड़ने की प्रवृत्ति (Instinct of Combat)
है । मार्गान्तरीकरण में इस को अहितकर समझ कर दबाया नहीं
व्यक्ति को ऐसे काम में लगा देते हैं जहाँ इस वृत्ति से पूरा-पूरा
या जा सके । लड़ने की प्रवृत्ति को हम देश के शत्रुओं तथा
लकों को छेड़ने वाले गुण्डों के विरुद्ध मोड़ सकते हैं । इस प्रकार
को लीजिए । मार्गान्तरीकरण के अनुसार बालक ऐसी पुस्तकों
उपकरणों का संग्रह करेगा जिसमें उसके मुहल्ले अथवा गाँव के
उठा सकें । यहाँ मूल-प्रवृत्ति के प्रकाशन में कोई अन्तर नहीं
वल प्रकाशन की बहुत सी विधियों में से एक विधि चुन ली

(Sublimation)—मूल प्रवृत्तियों के परिवर्तन का चौथा
है । इस विधि के द्वारा मूल-प्रवृत्ति का प्रकाशन एक नए रूप में

होता है। किसी मूल-प्रवृत्ति का प्रकाशन शोध की रीति से होने पर वह समाज के लिए परम लाभकारी सिद्ध हो सकती है। संग्रह वृत्ति का उपयोग ज्ञान-संग्रह मे, सद्गुण सग्रह आदि मे किया जा सकता है। काम प्रवृत्ति को परिष्कृत करके उसका उपभोग काव्य-रचना, चित्र कला अथवा मूर्ति निर्माण मे किया जा सकता है। कालिदास, सूरदास, बिहारी आदि की रचनाएँ किसे अच्छी नही लगती। अजन्ता, तथा अलोरा के भित्ति चित्र, किसका मन आकर्षित नहीं करते। इन सब के मूल मे काम-प्रवृत्ति ही तो है। यहाँ काम-प्रवृत्ति का कितने उत्तम ढग से शोध हुआ है।

शोध और मार्गान्तरीकरण में अन्तर —मार्गान्तरीकरण मे मूल-प्रवृत्ति के साधारण रूप मे परिवर्तन नही होता। वह जैसी की तैसी रह कर समाजोपयोगी कार्यों मे प्रयुक्त होती है परन्तु शोध मे मूल-प्रवृत्ति का रूपान्तरण इतना हो जाता है कि वह पहचानने मे नही आती।

आजकल प्राय: दमन (Repression) और विलयन (Inhibition) को दमन ही कह दिया जाता है और मार्गान्तरीकरण (Redirection) तथा शोध (Sublimation) को शोध के अन्तर्गत ही गिन लिया जाता है।

Q 8. What are emotions ? Give their characteristics. Can emotions be trained ?

[Panjab 1954 1955, Banaras 1940, Gauhati 1953.]

(संवेग किसे कहते हैं? उनकी क्या क्या विशेषताएँ हैं? क्या संवेगों का विकास किया जा सकता है?)

[पजाब १९५४, १९५५, बनारस १९४०, गौहाटी १९५३]

Q. 9. What is the importance of training the emotions ? What steps must be taken in a school to ensure proper development of the emotions. [Panjab 1953 suppl, Rajasthan, 1952]

(संवेगों के प्रशिक्षण का क्या महत्व है? पाठशालाओं में संवेगों का विकास करने के लिए कौन से पग उठाने चाहिए?)

[पजाब १९५३ सप्ली०, राजस्थान १९५२]

पहली विधि के अनुसार यदि हम चाहते हैं कि बालकों में लड़ने भिड़ने की प्रवृत्ति कम हो, तो हमें उनके जीवन में ऐसा परिस्थितियाँ नहीं आने देनी चाहिये। यह उपाय दमन से कहलाता है। इसके द्वारा यदि हम वृत्ति को दबाने में पूर्ण रूप से सफल नहीं भी होते तो कम से कम उसको और दृढ़ नहीं करते और बालकों के मन में भावना-ग्रन्थि की सृष्टि करके, उनके जीवन को और अधिक अवांछनीय नहीं बना देते। परन्तु इस प्रकार की दबी हुई वृत्ति अवसर पाकर उभड़ भी सकती है।

दूसरे उपाय द्वारा जब बालक के मन में कोई प्रबल अवांछनीय उत्तेजना होती है तो उसे कठोर दण्ड से दबाने की अपेक्षा, वह दूसरी मूल-प्रवृत्तियों को उत्तेजित करता है। लड़ने की मूल-प्रवृत्ति का बल खेल प्रवृत्ति से कम हो जाता है। संचय करने की प्रवृत्ति का बल सामाजिक मूल-प्रवृत्तियों से कम हो जाता है।

मार्गान्तरीकरण (Redirection)—यह मूल प्रवृत्तियों के रूपान्तर करने का तीसरा उपाय है। इसमें न तो मूल प्रवृत्ति का दमन ही किया जाता है और न ही उत्तेजित होने का अवसर न देकर उसकी शक्ति को क्षीण किया जाता है। हम मार्गान्तरीकरण द्वारा किसी मूल-प्रवृत्ति के प्रकाशन का ढंग बदल देते हैं। बालकों में लड़ने की प्रवृत्ति (Instinct of Combat) प्रबल होती है। मार्गान्तरीकरण में इस को अहितकर समझ कर दबाया नहीं जाता वरन् व्यक्ति को ऐसे काम में लगा देते हैं जहाँ इस वृत्ति से पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सके। लड़ने की प्रवृत्ति को हम देश के शत्रुओं तथा असहाय बालकों को छेड़ने वाले गुण्डों के विरुद्ध मोड़ सकते हैं। इस प्रकार संग्रह वृत्ति को लीजिए। मार्गान्तरीकरण के अनुसार बालक ऐसी पुस्तकों तथा अन्य उपकरणों का संग्रह करेगा जिससे उसके मुहल्ले अथवा गाँव के लोग लाभ उठा सकें। यहाँ मूल-प्रवृत्ति के प्रकाशन में कोई अन्तर नहीं आता। केवल प्रकाशन की बहुत सी विधियों में से एक विधि चुन ली जाती है।

शोध (Sublimation)—मूल प्रवृ
... शोध है। इस विधि के द्वारा मूल-प्रवृ

(ख) बालकों का मानसिक स्वास्थ्य और संवेग—बालकों पर किए गए प्रयोगों के आधार पर पता चलता है कि बालकों का मानसिक स्वास्थ्य (Mental health) उनके संवेगों (Emotions) पर निर्भर करता है। बहुत से बालक उद्दण्ड होते हैं, कई पढ़ने लिखने में पीछे रह जाते हैं। ऐसे बालकों के असाधारण (Abnormal) व्यवहार का कारण कोई न कोई भावना ग्रन्थि (Complex) ही होती है। और यह भावना-ग्रन्थि किसी न किसी संवेगात्मक मनोभाव के दमन से ही उत्पन्न होती है।

(ग) शारीरिक स्वास्थ्य और संवेग—जिस प्रकार बालकों का मानसिक स्वास्थ्य, उन के संवेगात्मक जीवन से सम्बन्धित रहता है उसी प्रकार उन का शारीरिक स्वास्थ्य भी, उनके संवेगों पर निर्भर करता है। भय, क्रोध आदि की प्रबल उत्तेजनाएँ बालक के शारीरिक स्वास्थ्य पर स्थायी प्रभाव डालती है। जो बालक सदा भय के वातावरण में रहते हैं। अथवा चिड़चिड़े स्वभाव वाले होते हैं, वे सदा रोगी रहते हैं। उनका शरीर भी दुबला-पतला ही रहता है। थोड़ा सा काम करने पर ही वे थक जाते हैं।

संवेगों का वर्गीकरण—

बालकों के संवेग दो प्रकार के होते हैं—पहले प्रकार के संवेग उनके स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं और दूसरे प्रकार के संवेगों से उनके स्वास्थ्य की हानि होती है। एक से मानसिक विकास होता है और दूसरे से उनके मानसिक विकास में रुकावट पड़ती है। पहले प्रकार के संवेगों में प्रेम, उत्साह आदि भाव हैं जो बालकों के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं। दूसरे प्रकार के संवेगों में भय क्रोध, ईर्ष्या द्वेष आदि संवेग हैं जो बालकों के स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचा सकते हैं।

संवेगों का प्रशिक्षण (Training of Emotions)—

ऊपर यह बताया जा चुका है कि किस प्रकार बालकों के स्वास्थ्य पर उनके संवेगों का प्रभाव पड़ता है। उनका मानसिक विकास भी संवेगों के उचित प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। बालकों के चरित्र-गठन का उन के संवेगों से बड़े निकट का सम्बन्ध है। जिन बालकों का संवेगात्मक विकास

सामान्य सिद्धान्त के बिलकुल विपरीत है। यह सिद्धान्त शारीरिक परिवर्तन को प्राथमिक स्थान देता है।

सर्व मान्य सिद्धान्त तो यह है कि हम सिंह को देख कर डर जाते हैं हमारा शरीर काँपने लगता और हम भाग खड़े होते हैं। परन्तु जेम्स-लैंग सिद्धान्त इस के बिलकुल विपरीत हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार शारीरिक परिवर्तन पहले होते हैं और सवेग की अनुभूति बाद में होती है। हम भय के कारण नही काँपते प्रत्युत हम काँपते हैं, इसलिए भय की अनुभूति होती है। जेम्स ने एक स्थान पर लिखा है—"इन शारीरिक परिवर्तनो के बिना हम सिंह को देख सकते हैं और इस निर्णय पर भी पहुँच सकते हैं कि भागना ही सुविधा जनक होगा, अपमानित होकर प्रहार करने को न्याय-युक्त भी ठहरा सकते हैं परन्तु भय अथवा क्रोध की अनुभूति नही होगी।

कैनन-बार्ड सिद्धान्त (Cannon-Bard Theory of Emotion) कैनन और बार्ड ने १९२७ ई० में एक नए सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार संवेगात्मक अनुभूति तथा संवेगात्मक व्यवहार दोनों स्वतंत्र रूप से उत्पन्न होते हैं। इन दोनो का उदय एक ही समय में होता है।

अध्यापक के लिए संवेगों का अध्ययन क्यों आवश्यक है ?

(क) मानव क्रियाओं का मूल-सवेग— मनुष्य भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अनेकों प्रकार के काम करता है। इन कार्यों की प्रेरणा हमें संवेगो से मिलती है। इसलिए तो मैकडूगल (Mc Dougall) ने प्रत्येक मूल-प्रवृति (Instinct) के साथ किसी न किसी संवेग (Emotion) का होना आवश्यक बताया है।

आधुनिक मनोविज्ञान की खोजो के अनुसार मनुष्य की अनेक प्रकार की आदतों का कारण रागात्मक मनोवृत्तियाँ ही हैं। जहाँ रागात्मक मनोवृत्ति का अभाव हो जाता है, वहाँ आदत भी नष्ट हो जाती है। बालकों में किसी प्रकार की आदत का विकास करने के लिए उनकी रुचि जागृत करना अत्यंत आवश्यक है। और रुचि उत्पन्न करने के लिए बालकों की मूल-प्रवृत्तियों और संवेगों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

(ख) **बालकों का मानसिक स्वास्थ्य और संवेग**—बालकों पर किए गए प्रयोगों के आधार पर पता चलता है कि बालको का मानसिक स्वास्थ्य (Mental health) उनके सवेगो (Emotions) पर निर्भर करता है। बहुत से बालक उद्दण्ड होते हैं, कई पढ़ने लिखने मे पीछे रह जाते हैं। ऐसे बालकों के असाधारण (Abnormal) व्यवहार का कारण कोई न कोई भावना ग्रन्थि (Complex) ही होती है। और यह भावना-ग्रन्थि किसी न किसी सवेगात्मक मनोभाव के दमन से ही उत्पन्न होती है।

(ग) **शारीरिक स्वास्थ्य और संवेग**—जिस प्रकार बालको का मानसिक स्वास्थ्य, उन के संवेगात्मक जीवन से सम्बन्धित रहता है उसी प्रकार उन का शारीरिक स्वास्थ्य भी, उनके संवेगो पर निर्भर करता है। भय, क्रोध आदि की प्रबल उत्तेजनाएँ बालक के शारीरिक स्वास्थ्य पर स्थायी प्रभाव डालती है। जो बालक सदा भय के वातवरण मे रहते हैं। अथवा चिड़चिड़े स्वभाव वाले होते हैं, वे सदा रोगी रहते हैं। उनका शरीर भी दुबला-पतला ही रहता है। थोड़ा सा काम करने पर ही वे थक जाते हैं।

संवेगों का वर्गीकरण—

otional Development) उचित रीति से नहीं होता वे और
में भी सुखी नहीं रहते। उनके मन में कई प्रकार की भावना-ग्रन्थियाँ
nplexes) बनी रहती है।

दयपुर (राजस्थान) के अंगरेजी स्कूल में एक अध्यापक था, जो कक्षा
ने से पूर्व बड़ी तैयारी करता था परन्तु कक्षा में जाते ही पसीने से
र हो जाता था। यदि कोई बालक प्रश्न पूछता तो वह घबरा
ता। इस अध्यापक की मानसिक अस्वस्थता का कारण उन के मन में
ई भावना-ग्रन्थि थी जिसका सम्बन्ध एक आत्म-ग्लानि-जनक घटना
।

र्तमान शिक्षण-पद्धति में बालकों के बौद्धिक विकास पर बहुत अधिक
दिया जाता है परन्तु उनके संवेगों के प्रशिक्षण की ओर कोई विशेष
नहीं दिया जाता। इसलिए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि
लाओं मे बालको के संवेगो का प्रशिक्षण किया जाए और उनको इस
परिवर्तित करने का यत्न किया जाए कि उनके व्यक्तित्व का विकास
velopment of personality) भली-भाँति हो सके।

10. What are the factors in school environment, which
b the child's emotions? How far can your modify or
nate these factors? [Panjab 1955 Suppl]

पाठशाला के वातावरण, में कौन से ऐसे तत्व हैं जो बालकों के
त्मक विकास मे बाधा पहुँचाते है? इन्हें कहाँ तक दूर किया जा
है?) [पंजाब १९५५ सप्ली०]

त्तर—नीचे पाठशाला के वातावरण से सम्बन्धित कुछ ऐसे तत्व दिये
हैं जो बालकों के संवेगात्मक विकास मे बाधक सिद्ध हो सकते हैं—

१) निर्धनता—यदि बालक को उचित भोजन तथा वस्त्र मिलता रहे
र्धनता उसके संवेगात्मक विकास मे रुकावट नही हो सकती। परन्तु
ला के वातावरण में निर्धन बालक, धनी बालकों के सम्पर्क में आते हैं
से अच्छा पहनते हैं और अच्छा खाते हैं। फलस्वरूप उन में ईर्ष्या

पाठशाला के व्यवस्थापकों का यह कर्त्तव्य है कि वे इस प्रकार के बालकों की आवश्यकताओं को समझें और जहाँ तक सम्भव हो, उचित सहायता प्रदान करें।

(२) पाठशालाओं की दोष पूर्ण अवस्था—यदि पाठशालाओं की अवस्था दोषपूर्ण होगी तो भी बालकों की संवेगात्मक स्थिरता (Emotional Stability) को हानि पहुँच सकती है। यदि पाठशाला की इमारत (Building) दोष पूर्ण (Faulty) होगी, कमरों में विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होगी, साजसामान इत्यादि (Furniture) की कमी होगी, खेलों (Sports) की सुविधाओं तथा मनोरंजक क्रियाओं (Recreational Activities) का अभाव होगा तो इन बातों का प्रभाव बालकों के संवेगात्मक आचरण पर भी पड़ेगा।

राज्य के अधिकारियों तथा समाज के कर्णधार लोगों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे पाठशालाओं में इन दोषों को दूर करने का यत्न करें।

(३) दोषपूर्ण शिक्षण-पद्धति—शिक्षा की वर्तमान पद्धति बड़ी दोषपूर्ण है। इस में बालकों को प्रोत्साहित (Motivate) करने का कोई यत्न नहीं किया जाता। प्रोत्साहन के बिना पाठ बालकों के लिए भार स्वरूप हो जाता है और उनकी अध्ययन के प्रति रुचि नहीं रहती।

शिक्षक-वर्ग का यह एक पुनीत धर्म है कि वे शिक्षण पद्धति में सुधार करें ताकि पाठशालाएँ बालकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाएँ।

(४) अध्यापकों में संवेगात्मक स्थिरता का न होना—बहुत से अध्यापक ऐसे होते हैं जो संवेगात्मक रूप से अस्थिर होते हैं। ऐसे अध्यापक पाठशाला के वातावरण को दूषित कर देते हैं। उनके अन्दर जो आत्म-विश्वास के अभाव तथा चिन्ता आदि की भावनाएँ हैं उन्हें वे बालकों में भर देते हैं।

पाठशालाओं के अधिकारियों को ऐसे अध्यापकों से सतर्क और सावधान रहना चाहिए।

(५) दोष पूर्ण अनुशासन—पाठशालाओं में अनुशासन की जो परम्परागत विधि है वह बड़ी दोषपूर्ण है। पाठशालाओं को गुप्त कर्मचारियों से भी या इनकी

उत्तर—भय का महत्व—विभिन्न संवेगो में भय एक महत्वपूर्ण सवेग है। अपने स्वाभाविक रूप में यह एक लाभप्रद सवेग है। यह हमे खतरे से बचने के लिए तैयार करता है। परन्तु मानसिक स्वास्थ्य और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भय सब से अधिक विनाशकारी सवेग है। इस से शरीर के अंग ऐंठ जाते हैं और रुधिर का प्रवाह रुक जाता है। इस प्रकार मनुष्य की जीवन शक्ति कम हो जाती है। अमेरिका मे प्राकृतिक चिकित्सा (Nature Cure) के प्रसिद्ध डाक्टर लिन्डल्हर (Lindlhar) का कथन है कि जो व्यक्ति भय की अनुभूति बार बार करता है, उसकी पाचन-शक्ति भी नष्ट हो जाती है। गले मे कुछ गिल्टियाँ (Glands) होती है जिन से एक प्रकार का रस स्रवित होता है जो शरीर की वृद्धि करता है और उसे पुष्ट बनाता है। जब इस रस की कमी होने लगती है तो शरीर मे इतनी क्षमता नही रहती कि वह बाहरी बीमारियो के कीटाणुओं का सामना कर सके। भय की अवस्था मे ये गिल्टियां (Glands) रस का उत्पादन बन्द कर देती है।

भय का विकास—जन्म के समय भय का सवेग अपनी सुप्त अवस्था मे होता है। एक छोटा सा शिशु किसी भी वस्तु से भयभीत नही होता। विषैले साँप तथा बिच्छू भी उस मे किसी भी प्रकार के भय का सञ्चार नही करते। इस के विपरीत वह उन्हे पकड कर अपने मुँह मे डालना चाहता है। जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाता है, उसमे भय की मात्रा बढ़ती जाती है। जोन्स और जोन्स के एक प्रयोग (Jones and Jones—A Study of Fear in Young Children) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कालिजो के विद्यार्थी, छोटे बालको की अपेक्षा अधिक भयभीत होते हैं।

छोटे बालको मे भय का सञ्चार सम्बन्धीकरण (Conditioning) के द्वारा होता है। छोटे-छोटे बालक कुत्तो अथवा बिल्लो से खेलना पसन्द करते है। खेलते-खेलते कई बार, वे बालको को काट खाते है। अब बालक पास जाने से डरने लगते हैं।

(Suggestion) के द्वारा भी बालक भयभीत होता सीख
छोटे बालको की बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट

नहीं जाने देते और बालक इन वस्तुओं से डरना सीख जाते हैं। भूतों और प्रेतो से डरना भी बालक बड़े लोगों से सीखते हैं। जैसे बालक बड़ा होता है और उसमें समझ आती जाती है, वह अधिक बर्तने लगता है। यह जानता है कि बरसात के दिनों में प्राय: साँप में से निकल आते हैं क्योंकि उनके बिल पानी से भर जाते हैं। त को बाहर नहीं जाएगा ताकि किसी साँप से पाला न पड़ जाए।

के असाधारण भय को कैसे दूर किया जाए ?

क कुछ उदाहरणो से यह स्पष्ट हो गया होगा कि भय की मात्रा यकता से अधिक बढ़ जाए तो बालक के व्यक्तित्व का ठीक-ठीक हो सकता। बालकों के असाधारण भय को दूर करने के लिए ी नीचे लिखी बातों की ओर ध्यान देना चाहिए :—

भय जनक परिस्थितियों का स्पष्टीकरण—बालको के बहुत से भय होते हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि जिन बातो से बालक ते हैं उन का पूर्ण स्पष्टीकरण कर दिया जाए। यदि बालक रे में जाने से डरता है तो उसके साथ अन्धेरे वाले कमरे में दिखा दिया जाए कि यहाँ तो डर वाली कोई बात नहीं है। इस ाण में कमरे की बत्ती जलाई जा सकती है। अब बालक स्वयं से देख लेगा कि उसके भय का कोई वास्तविक कारण नही था।

दूसरों का उदाहरण बालक के सामने रखना—कई बार भय वाली परिस्थिति के स्पष्टीकरण के पश्चात् भी बालक के मन से होता। ऐसी अवस्था मे अध्यापक को दूसरे बालको के उदाहरण को प्रोत्साहन देना होगा। मान लीजिए बालक अन्धेरे कमरे मे ता है। ऐसी अवस्था में अध्यापक उस बालक के सामने, अन्य जो अन्धेरे कमरे से नही डरते, एक-एक करके उस कमरे मे भेजे। एक के साथ, उस बालक को भी वहाँ भेज दे। जब इस क्रिया दोहराया जाएगा तो उस बालक के मन से अन्धेरे कमरे मे जाने

(३) प्रबल प्रेरकों (Stronger motives) द्वारा भय को दूर करना—भय-जनक परिस्थितियों में प्रबल प्रेरकों द्वारा भी सहायता ली जा सकती है। अन्धेरे कमरे की बीचों बीच किसी तिपाई पर मिठाई रखी जा सकती है और अन्धेरे से डरने वाले बालक को यह कहा जा सकता है कि वह उस कमरे में जाकर तिपाई पर से मिठाई उठाकर खा ले। ऐसी अवस्था में बालक का ध्यान अपने उद्देश्य की ओर रहेगा और वह अन्धेरे में डरने वाली बातों की ओर ध्यान नहीं देगा। जब बालक को मिठाई खाने के लिए भेजा जाए तो उसे कमरे के अन्धकारमय वातावरण तथा डराने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में कुछ भी न बताया जाए।

(४) साहसपूर्ण कार्यों के लिए अवसर प्रदान करना—कुछ माता पिता अपने बच्चों के प्रति चिन्तित रहते हैं और उन्हें कहीं दूर नहीं जाने देते। शिक्षक वर्ग यह एक आवश्यक कर्त्तव्य है कि वे पाठशालाओं में इस प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करें जिनमें बालकों को कुछ साहसपूर्ण कार्य करने पड़ें। पहाड़ों की यात्रा, झील या नदी में नाव चलाना, नदी या झील आदि में तैरना तथा बालचर (Scouting) आदि ऐसे ही कार्य हैं। इनके द्वारा भी बालकों के असाधारण भय दूर हो सकते हैं।

(५) पाठशाला के वातावरण में सुधार करना—बहुत सी पाठशालाओं का वातावरण ऐसा होता है जो विशेषकर हीन-भावना से ग्रस्त बालकों में और अधिक भय का संचार कर देता है। शारीरिक दण्ड, झिड़कना, घर के काम का प्रतिदिन निरीक्षण करना—ऐसी कई बातें हैं जो अध्यापकों के लिए तुच्छ होते हुए भी बालकों के संवेगात्मक सन्तुलन पर प्रभाव डालती हैं। गृह-कार्य बहुत अधिक दिया जाएगा तो बालक बहुत चिन्तित रहेंगे। बहुत कड़ा अनुशासन भी बालकों का मानसिक सन्तुलन बिगाड़ सकता है।

(६) बालकों को कोतवाली (Police Station) तथा कचहरी
... बालक चोरों और डाकुओं से बहुत डरते हैं।
... जा सकते हैं। वहाँ वे चोरों और डाकुओं
... करेंगे कि अपराध करने वाले भी हमारे
... तरह स्नेह के पात्र हैं।

३

सामान्य जन्मजात प्रवृ

(General Innate Tenden

Q. 13. What is the importance of imitation and sug tion in process of education ? How should a teacher make of them ? Indicate the role of sympathy also in educa

[Panjab 1945, 1951, 1954, Suppl., Rajasthan 1950, 19

(अनुकरण और निर्देश का शिक्षा की दृष्टि से क्या महत्व अध्यापक को इन दोनों का प्रयोग कैसे करना चाहिए। शिक्षा की से सहानुभूति के महत्व पर प्रकाश डालो।)

[पंजाब १९४५, १९५०, १९५४ सप्ली०, राजस्थान १९५०, १९५२ स

Q. 14. Distinguish between imitation and suggestion state how this tendency can be made use of in education.

[Panjab 1949, 1950, L. T., 1949, 50, 51, Banaras 19

[अनुकरण और निर्देश मे क्या अन्तर है। शिक्षा में इन का प्र कैसे किया जा सकता है, स्पष्ट करो।]

[पंजाब १९४९, १९५०, एल. टी., १९४९, १९५०, १९५७, बनारस १९

उत्तर—प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैकडूगल (Mc Dougall) ने प्रवृत्तियों (Instincts) के अतिरिक्त, कुछ सामान्य जन्मजात प्रवृ

(General Innate Tendencies) का भी उल्लेख किया है जिनमे से नीचे लिखी पाँच प्रवृत्तियाँ मुख्य हैं :—

(i) निर्देश (Suggestion)

(ii) सहानुभूति (Sympathy)

(iii) अनुकरण (Imitation)

(iv) खेल (Play)

(v) आदत डालने की प्रवृत्ति (Tendency to form habits)
इस अध्याय मे Q प्रथम तीन प्रवृत्तियो के महत्व पर ही प्रकाश डाला जाएगा।

निर्देश (Suggestion)—निर्देश वह अवस्था है जब कोई व्यक्ति अनजाने ही दूसरे व्यक्ति के विचारो से प्रभावित हो जाता है और वैसा ही सोचने लगता है जैसा निर्देश देने वाला व्यक्ति सोचता है। विलियम स्टर्न (William Stern) ने निर्देश को दूसरो के विचारो का अनुकरण कहा है। नन (Nunn) ने निर्देश की परिभाषा इन शब्दो मे दी है :—

"It is the adoption of another person's ideas unwilled by oneself"

अर्थात् निर्देश की अवस्था में, अपनी इच्छा न होते हुए भी हम दूसरो के विचारो को ग्रहण कर लेते हैं।

आज संसार मे प्रचार (Propaganda) का जो महत्व है उसका मुख्य कारण भी मनुष्यो की निर्देश-योग्यता (Suggestibility) ही है। आजकल निर्देश का प्रयोग असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal psychology) के क्षेत्र मे ही अधिक किया जाता है। मानसिक रोगी को मोह निद्रा मे ला कर चिकित्सक उसे निर्देश (Suggestion) देता है। ‥ करने के लिए कहा जाता है, वह करता है और जो ‥ जाता है, वही बता देता है। सम्मोहन की अवस्था में

मे दिए गए संकेतों का पालन निद्रा-भंग के बाद भी लोग व
गए हैं।

निर्देशित होने की स्थिति (Conditions of Suggestibili
निर्देश का प्रभाव व्यक्ति की अवस्था तथा चरित्र बल पर निर्भर क
कम आयु के बालक प्रायः निर्देश ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु प्रौढ़ उनकी
बहुत कम निर्देश ग्रहण करते हैं। अशिक्षितों की निर्देश योग्यता,
की अपेक्षा बहुत अधिक होती है, क्योंकि उनका ज्ञान कम होता
बौद्धिक शक्ति अविकसित होती है। जिस व्यक्ति के कुछ दृढ़ और
विश्वास होते हैं, वह अपने विश्वास के विरुद्ध किसी निर्देश को साधा
ग्रहण नही करता। स्वस्थ मस्तिष्क वाला बहुत कम निर्देश ग्रहण व
परन्तु मानसिक रोगी बहुत अधिक निर्देश मान लेता है।

निर्देश का प्रभाव संख्या पर भी निर्भर करता है। जिस वि
कोई व्यक्ति पूरे समूह को प्रभावित देखता है, उससे वह स्वयं भी प्र
हो जाता है।

निर्देश के प्रकार (Kinds of suggestions)—मनोवैज्ञा
निर्देश के चार प्रकार निश्चित किए हैं :—

(i) व्यक्तित्व निर्देश (Prestige Suggestion)
(ii) समूह निर्देश (Mass Suggestion)
(iii) आत्म निर्देश (Avto-suggestion)
(iv) प्रति निर्देश (Contra-suggestion)

(i) व्यक्तित्व निर्देश (Prestige Suggestion)—इस निर्दे
शक्ति किसी व्यक्ति की महानता पर निर्भर करती है। आयु, विद्या, घ
अथवा चरित्र, ये सभी बातें मनुष्य को महानता प्रदान करती हैं। म
ऊँचे व्यक्ति द्वारा ही कोई व्यक्ति निर्देशित होता है।

शिक्षा की दृष्टि से महत्व—बालकों में स्वभाव से अध्यापक के प्रति
का भाव होता है। वह सभी बातों में बालकों से बड़ा होता है, इ
बालक उसके निर्देश को ग्रहण कर लेते हैं। अध्यापक के चरित्र की

बालकों के सामने बहुत जल्दी आ जाती हैं। जिस अध्यापक की कीर्ति एक बार नष्ट हो जाती है, वह कक्षा को भली-भाँति नहीं पढ़ा सकता। अतः अध्यापक को इस बात की सावधानी रखनी होगी कि वह कोई ऐसी बात न करे जिसमें उसकी मान-मर्यादा की हानि हो।

(ii) समूह-निर्देश (Mass Suggestion)—अपने समाज के, धर्म के, पास-पड़ोस के लोगों के विश्वास एवं विचार हम जाने-अनजाने सदा ग्रहण कर लेते हैं। हम उन सभी विचारों को स्वीकार कर लेते हैं, जिन्हें समूह ठीक समझता है। धर्म शिष्टाचार, लोक-रीति, फैशन आदि के अनुसार व्यवहार करने का यही रहस्य है।

शिक्षा की दृष्टि से महत्त्व—सामूहिक निर्देश से अध्यापक बालक के चरित्र में काफी सुधार कर सकता है। सामूहिक निर्देश से बालक में सामाजिकता के भावों की उत्पत्ति होती है।

(iii) आत्म-निर्देश (Auto-suggestion)—अपने विचारों से स्वयं प्रभावित होना आत्म निर्देश कहलाता है। कभी-कभी व्यक्ति अपने को स्वयं ही निर्देश देता है। एक रोगी सोचता है कि वह अच्छा हो रहा है। यह विश्वास उसको स्वस्थ बनाने में बहुत सहायता प्रदान करता है।

शिक्षा की दृष्टि से महत्त्व—आत्म-निर्देश से आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है और व्यक्ति सफलता की ओर बढ़ता है। उसकी इच्छा-शक्ति दृढ़ होती है और सन्देह नष्ट होते हैं।

(iv) प्रति निर्देश (Contra-suggestion)—इस प्रवृत्ति के अनुसार व्यक्ति को जो कुछ कहा जाय, उसका उल्टा अथवा, उसके विपरीत होता। बालकों में विरोध की प्रवृत्ति होती है और वे उन विषयों के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं जिन्हें पढ़ने के लिए उन्हें मना किया जाता है। अध्यापक के दुर्बल व्यक्तित्व के कारण भी कभी-कभी यह प्रवृत्ति बालकों में आ जाती है।

शिक्षा की दृष्टि से महत्त्व—अध्यापक अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाए तथा इस प्रकार की कोई बात न करे जिससे कि प्रति-निर्देश की प्रवृत्ति बालकों में पड़े।

सहानुभूति (Syanpathy)—

जिस प्रकार दूसरों के विचारों को हम अनायास ही ग्रहण करते
प्रकार दूसरों की भावनाओं और संवेदनाओं से भी प्रभावित हो जाया
इसे ही मनोवैज्ञानिक शब्दावली में सहानुभूति कहते हैं । यह हमारी
प्रवृति है । किसी को दुःखी देखकर हम दुखी हो जाते हैं, किसी को
देख हम भी मुस्कराने लगते हैं । यह प्रवृत्ति पशु-पक्षियों में भी पाई
एक चिड़िया जब भय सूचक शब्द करती है तो अन्य चिड़ियाँ भी उ
का शब्द करते हुए डर कर उड़ जाती हैं । सहानुभूति सामाजिक
लिए परमावश्यक है ।

सहानुभूति के प्रकार—सहानुभूति दो प्रकार की होती है :—

(i) निष्क्रय सहानुभूति (Passive Sympathy), (ii)
सहानुभूति (Active Sympathy) निष्क्रय सहानुभूति पशु-प
भी पाई जाती है । बालकों में भी इस प्रकार की सहानुभूति प्र
जाती है । इस में किसी विशेष प्रकार के प्रयास की आवश्यकता नहीं
सक्रिय सहानुभूति में विशेष प्रकार का प्रयास किया जाता है । भिन्
वक्ता (Orators) तथा राजनीतिज्ञ इस दूसरे प्रकार की सहानु
प्रयोग करते हैं ।

शिक्षा की दृष्टि से सहानुभूति का महत्व—अध्यापक इस प्रवृ
प्रयोग शिक्षा में बड़ी सफलता से कर सकता है । इतिहास तथा कविता
पढ़ाते समय जो भाव अध्यापक के मन में रहते हैं, उन्ही की ही सृष्टि
के मन में हो जाती है । इस प्रवृति के द्वारा हम सद्‌भावनाओं के प्रति
तथा दुष्प्रवृत्तियों के प्रति अरुचि उत्पन्न कर सकते हैं । परन्तु इस सम्ब
सावधानी की आवश्यकता है । यदि अध्यापक का चरित्र दूषित हुआ त
इन दूषित भावनाओं का संचार बालकों में भी कर देगा ।

अनुकरण (Imitation)—

दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं तथा आचरण की नकल करने की वृ
अनुकरण (Imitation) कहते हैं । इंगलैंड के प्रसिद्ध शिक्षा वि

श्री टी० पी० नन (T. P. Nunn) ने निर्देश, सहानुभूति तथा अनुकरण को एक ही सामान्य वृत्ति के तीन पहलु कहा है। उसके मतानुसार भावो के अनुकरण को सहानुभूति (Sympathy), विचारो के अनुकरणो को निर्देश (Suggestion) तथा क्रिया के अनुकरण को सामान्य अनुकरण (Imitation) कहा जाता है।

मनुष्य का जीवन अनेको प्रकार के अनुकरणो की एक शृंखला ही है। वह दूसरो का अनुकरण करके बोलना, लिखना तथा पढ़ना सीखता है। खाने पीने की आदतें, कपडे पहनने का ढग, चलने का ढंग इत्यादि सभी बातो मे अनुकरण की ही प्रवृत्ति पाई जाती है। अनुकरण की यह प्रवृत्ति पशु-पक्षियो में भी पाई जाती है। जिधर एक भेड जाएगी, उस ओर अन्य भेडें भी चल पड़ेंगी।

अनुकरण के प्रकार—अनुकरण दो प्रकार का होता है—(i) ज्ञात अनुकरण तथा (ii) अज्ञात अनुकरण।

अज्ञात अनुकरण करने वालो को इस बात का ज्ञान नही होता कि वे दूसरो का अनुकरण कर रहे हैं। बालक अपने जीवन के बहुत से कार्य इसी अज्ञात अनुकरण द्वारा सीखता है। बालक के बोलने का ढग, उसके काम करने की रीति, उसकी वेश-भूषा—ये सब बातें दूसरों का अज्ञात अनुकरण मात्र होती है।

ज्ञात अनुकरण मे व्यक्ति अपनी इच्छानुसार उसी प्रकार का आचरण करने की चेष्टा करता है, जिस प्रकार का आचरण दूसरे व्यक्ति का होता है। शिक्षा मे ज्ञात अनुकरण का बड़ा महत्त्व है। शब्दो का उच्चारण, लिखना, पढ़ना हस्त-कलाओ (Handicrafts) का ज्ञान प्राप्त करना इत्यादि बहुत सी क्रियाएँ बालक विचारपूर्ण अनुकरण करके दूसरों से सीखता है।

ज्ञात अनुकरण दो प्रकार का होता है—(i) व्यक्ति दूसरों को अपने से श्रेष्ठ समझ कर उनका अनुकरण करता है। (ii) दूसरे व्यक्ति को सभी बातो मे बड़ा न मान कर, उसके गुण ग्रहण करने की चेष्टा की जाती है।

अनुकरण के नियम—(i) अनुकरण की गति ऊपर से नीचे की ओर

(संक्षेप में खेल से सम्बिन्धित सिद्धान्तों की चर्चा करो। शिक्षा में खेल-विधि का प्रयोग करने से क्या-क्या लाभ हैं?)

[पञ्जाब १९५३, राजस्थान १९५२]

उत्तर—खेल एक ऐसा विषय है जो बालकों तथा बडो सभी को प्रिय है। छोटे-छोटे बालको को तो खेल के अतिरिक्त और कुछ अच्छा लगता ही नही। बड़े-बूढे लोग भी खेल से खूब आनन्द उठाते हैं। मनुष्यो के अतिरिक्त पशु-पक्षियो को भी खिलना अच्छा लगता है। हम अक्सर कबूतरो तथा कुत्तो आदि को आपस मे खेलता हुआ देखते हैं।

खेल की विशेषताएँ—

खेल और काम—(Play and work)—खेल और काम मे पर्याप्त अन्तर होता है। इसलिए यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि कौन सी क्रियाओं को खेल कहा जाता है और कौन सी क्रियाओं को काम।

(१) जब कोई व्यक्ति काम करता है तो उसका उद्देश्य केवल काम करना ही न होकर कुछ और भी होता है। अध्यापक बालको को पढ़ाता है। अब उसके पढ़ाने का लक्ष्य केवल पढ़ाना ही न होकर जीविकोपार्जन करना भी होता है। परन्तु खेल का लक्ष्य खेल के अतिरिक्त और कुछ भी नही होता।

(२) खेल और काम मे दूसरा अन्तर यह है कि काम करने अथवा न करने को हम स्वतन्त्र नही है। हमे काम करना ही पड़ता है। उसके बिना हमारा निर्वाह नहीं हो सकता। अध्यापक चाहे अथवा न चाहे, उसे पढ़ाने जाना ही है नहीं तो वह अपना जीविकोपार्जन कैसे करेगा। परन्तु खेलने हम अपनी इच्छा से है। यदि हम किसी दिन न भी खेलें तो भी कोई हानि नहीं।

(३) खेल की तीसरी विशेषता यह है कि उस मे कल्पना का अश पर्याप्त मात्रा मे होता है। बालक अपने पिता की छड़ी को घोड़ा समझ कर, उसे दौड़ाता है। परन्तु काम मे इस प्रकार की कोई बात नहीं।

(४) खेल की सब से बड़ी विशेषता है। आनन्द की प्राप्ति। खेल मे हमारा मनोरञ्जन होता है। यही आनन्द ही खेल का उद्देश्य होता है।

(General Innate Tendencies) का भी उल्लेख किया है जिनमे से नीचे लिखी पाँच प्रवृत्तियाँ मुख्य हैं —

(i) निर्देश (Suggestion)

(ii) सहानुभूति (Sympathy)

(iii) अनुकरण (Imitation)

(iv) खेल (Play)

(v) आदत डालने की प्रवृत्ति (Tendency to form habits) इस अध्याय में Q प्रथम तीन प्रवृत्तियो के महत्व पर ही प्रकाश डाला जाएगा।

निर्देश (Suggestion)—निर्देश वह अवस्था है जब कोई व्यक्ति अनजाने ही दूसरे व्यक्ति के विचारो से प्रभावित हो जाता है और वैसा ही सोचने लगता है जैसा निर्देश देने वाला व्यक्ति सोचता है। विलियम स्टर्न (William Stern) ने निर्देश को दूसरो के विचारो का अनुकरण कहा है। नन (Nunn) ने निर्देश की परिभाषा इन शब्दो मे दी है :—

"It is the adoption of another person's ideas unwilled by oneself."

अर्थात् निर्देश की अवस्था में, अपनी इच्छा न होते हुए भी हम दूसरो के विचारो को ग्रहण कर लेते हैं।

आज संसार मे प्रचार (Propaganda) का जो महत्व है उसका मुख्य कारण भी मनुष्यो की निर्देश-योग्यता (Suggestibility) ही है। आजकल निर्देश का प्रयोग असामान्य मनोविज्ञान (Abnormal psychology) के क्षेत्र मे ही अधिक किया जाता है। मानसिक रोगी को मोह निद्रा में ला कर चिकित्सक उसे निर्देश (Suggestion) देता है। उसे जो कुछ करने के लिए कहा जाता है, वह करता है और जो बताने के लिए कहा जाता है, वही बता देता है। सम्मोहन की अवस्था में

मे दिए गए संकेतो का पालन निद्रा-भंग के बाद भी लोग करते दे
गए हैं।

निर्देशित होने की स्थिति (Conditions of Suggestibility)-
निर्देश का प्रभाव व्यक्ति की अवस्था तथा चरित्र बल पर निर्भर करता है
कम आयु के बालक प्रायः निर्देश ग्रहण कर लेते हैं, परन्तु प्रौढ़ उनकी अपेक्
बहुत कम निर्देश ग्रहण करते हैं। अशिक्षितो की निर्देश योग्यता, शिक्षि
की अपेक्षा बहुत अधिक होती है, क्योंकि उनका ज्ञान कम होता है अ
बौद्धिक शक्ति अविकसित होती है। जिस व्यक्ति के कुछ दृढ़ और निश्चि
विश्वास होते हैं, वह अपने विश्वास के विरुद्ध किसी निर्देश को साधारणत
ग्रहण नही करता। स्वस्थ मस्तिष्क वाला बहुत कम निर्देश ग्रहण करता
परन्तु मानसिक रोगी बहुत अधिक निर्देश मान लेता है।

निर्देश का प्रभाव संख्या पर भी निर्भर करता है। जिस विचार
कोई व्यक्ति पूरे समूह को प्रभावित देखता है, उससे वह स्वयं भी प्रभावि
हो जाता है।

निर्देश के प्रकार (Kinds of suggestions)—मनोवैज्ञानिकों
निर्देश के चार प्रकार निश्चित किए हैं :—

(i) व्यक्तित्व निर्देश (Prestige Suggestion)
(ii) समूह निर्देश (Mass Suggestion)
(iii) आत्म निर्देश (Avto-suggestion)
(iv) प्रति निर्देश (Contra-suggestion)

(i) व्यक्तित्व निर्देश (Prestige Suggestion)—इस निर्देश क
शक्ति किसी व्यक्ति की महानता पर निर्भर करती है। आयु, विद्या, धन, प
अथवा चरित्र, ये सभी बातें मनुष्य को महानता प्रदान करती हैं। अपने
ऊँचे व्यक्ति द्वारा ही कोई व्यक्ति निर्देशित होता है।

शिक्षा की दृष्टि से महत्व—बालकों में स्वभाव से अध्यापक के प्रति आद
का भाव होता है। वह सभी बातो मे बालको से बड़ा होता है, इसलि
बालक उसके निर्देश को ग्रहण कर लेते हैं। अध्यापक के चरित्र की त्रुटि

बालकों के सामने बहुत जल्दी आ जाती है। जिस अध्यापक की कीर्ति एक बार नष्ट हो जाती है, वह कक्षा को भली-भाँति नहीं पढ़ा सकता। अतः अध्यापक को इस बात की सावधानी रखनी होगी कि वह कोई ऐसी बात न करे जिससे उसकी मान-मर्यादा की हानि हो।

(ii) समूह-निर्देश (Mass Suggestion)—अपने समाज के, धर्म के, पास-पड़ोस के लोगों के विश्वास एवं विचार हम जाने-अनजाने सदा ग्रहण कर लेते हैं। हम उन सभी विचारों को स्वीकार कर लेते हैं, जिन्हें समूह ठीक समझता है। धर्म शिष्टाचार, लोक-रीति, फैशन आदि के अनुसार व्यवहार करने का यही रहस्य है।

शिक्षा की दृष्टि से महत्त्व—सामूहिक निर्देश से अध्यापक बालक के चरित्र में काफी सुधार कर सकता है। सामूहिक निर्देश से बालक में सामाजिकता के भावों की उत्पत्ति होती है।

(iii) आत्म-निर्देश (Auto-suggestion)—अपने विचारों से स्वयं प्रभावित होना आत्म निर्देश कहलाता है। कभी-कभी व्यक्ति अपने को स्वयं ही निर्देश देता है। एक रोगी सोचता है कि वह अच्छा हो रहा है। यह विश्वास उसको स्वस्थ बनाने में बहुत सहायता प्रदान करता है।

शिक्षा की दृष्टि से महत्त्व—आत्म-निर्देश से आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है और व्यक्ति स्वतन्त्रता की ओर बढ़ता है। उसकी इच्छा-शक्ति दृढ़ होती है और सन्देह नष्ट होते हैं।

(iv) प्रति निर्देश (Contra-suggestion)—इस प्रवृत्ति के अनुसार व्यक्ति को जो कुछ कहा जाय, उसका उल्टा, उसके विपरीत होगा। बालकों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति होती है और वे उन विषयों के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं जिन्हें करने के लिए उन्हें मना किया जाता है। अध्यापक के दुर्बल व्यक्तित्व के कारण भी कभी-कभी यह प्रवृत्ति बालकों में आ जाती है।

शिक्षा की दृष्टि से महत्त्व—अध्यापक अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाए तथा इस प्रकार की कोई बात न करे जिससे कि प्रति-निर्देश की प्रवृत्ति बालकों में पड़े।

है। विद्वानों का साधारण पढ़े लिखे तथा दलवालों का निर्वल अनुकरण हैं।

ii) अनुकरण का कार्य भीतर से बाहर की ओर होता है। पहले मन नी बात के संस्कार पड़ते हैं, बाद मे ये शारीरिक क्रियाओं मे परिणित ।

iii) अनुकरण का तीसरा नियम उसकी संक्रामकता है। अनुकरण वालों की संख्या दिन दूनी तथा रात चौगुनी बढ़ती है। फैशन वा सिनेमा देखने की आदत इत्यादि बातें इसी प्रकार बढ़ती हैं।

नुकरण और शिक्षा—छोटे-छोटे बालको को पढ़ना लिखना सिखाने के अनुकरण की प्रवृत्ति से काम लिया जा सकता है। अध्यापक से सीखने ताय बालक, दूसरे बालको से अधिक सीखता है। कक्षा के सभी बालक, और चतुर बालक की नकल करने की चेष्टा करते हैं और इस प्रकार नी बातें सीख लेते हैं। अध्यापक का यह कर्तव्य है कि कक्षा मे सब द बालक को ठीक-ठीक शिक्षा दे और उसको सदा अनुशासन मे रखे। त एक बालक को सिखाई जाती है, वह दूसरों मे भी शीघ्र फैल है।

. **15.** How does play differ from work ? Ware hat the ng characteristics of the former and how have they been porated in some of the popular modern Educational ods ? [Agra, 1951, L. T. 1946, 1949, 1951.]

खेल और काम में क्या अन्तर है ? खेल की विशेषताओं की करते हुए लिखो कि शिक्षण की वर्तमान पद्धतियों मे इन ताओं को कहाँ तक ग्रहण किया गया है ?)

[आगरा १९६०, १९५१, एल० टी०, १९४६, १९४९, १९५१]

. **16.** State briefly the theories of play. What are the ntages of using play-way in education ?

[Panjab 1953, Rajasthan 1952.]

(संक्षेप में खेल से सम्बिन्धित सिद्धान्तों की चर्चा करो। शिक्षा में खेल-विधि का प्रयोग करने से क्या-क्या लाभ हैं?)

[पञ्जाब १६५३, राजस्थान १६५२]

उत्तर—खेल एक ऐसा विषय है जो बालकों तथा बड़ों सभी को प्रिय है। छोटे-छोटे बालकों को तो खेल के अतिरिक्त और कुछ अच्छा लगता ही नहीं। बड़े-बूढ़े लोग भी खेल से खूब आनन्द उठाते हैं। मनुष्यों के अतिरिक्त पशु-पक्षियों को भी खेलना अच्छा लगता है। हम अवसर कबूतरों तथा कुत्तों आदि को आपस में खेलता हुआ देखते हैं।

खेल की विशेषताएँ—

खेल और काम—(Play and work)—खेल और काम में पर्याप्त अन्तर होता है। इसलिए यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि कौन सी क्रियाओं को खेल कहा जाता है और कौन सी क्रियाओं को काम।

(१) जब कोई व्यक्ति काम करता है तो उसका उद्देश्य केवल काम करना ही न होकर कुछ और भी होता है। अध्यापक बालकों को पढ़ाता है। अब उसके पढ़ाने का लक्ष्य केवल पढ़ाना ही न होकर जीविकोपार्जन करना भी होता है। परन्तु खेल का लक्ष्य खेल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता।

(२) खेल और काम में दूसरा अन्तर यह है कि काम करने अथवा न करने को हम स्वतन्त्र नहीं है। हमें काम करना ही पड़ता है। उसके बिना हमारा निर्वाह नहीं हो सकता। अध्यापक चाहे अथवा न चाहे, उसे पढ़ाने जाना ही है नहीं तो वह अपना जीविकोपार्जन कैसे करेगा। परन्तु खेलते हम अपनी इच्छा से हैं। यदि हम किसी दिन न भी खेलें तो भी कोई हानि नहीं।

(३) खेल की तीसरी विशेषता यह है कि उस में कल्पना का अत्यधिक मात्रा में होना है। बालक अपने पिता की छड़ी को घोड़ा समझ कर, उसे दौड़ाता है। परन्तु काम में इस प्रकार की कोई बात नहीं।

(४) खेल की सब से बड़ी विशेषता है। आनन्द की प्राप्ति। खेल में हमारा मनोरंजन होता है। यही आनन्द ही खेल का उद्देश्य होता है।

विचार करते हैं। अपने सिद्धान्त के स्पष्टीकरण में वे मानसिक शक्ति की उपेक्षा कर जाते हैं।

(२) खोई शक्ति के पुनर्निर्माण का सिद्धान्त (Recreation Theory) यह सिद्धान्त पहले सिद्धान्त का बिल्कुल उलटा है। इस सिद्धान्त के अनुसार खेल के द्वारा अतिरिक्त शक्ति का व्यय नहीं अपितु खोई हुई शक्ति का पुनर्निर्माण होता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे पहले लार्ड किम्स (Lord Kims) ने किया। बाद में पैट्रिक (Patrick) ने इसका समर्थन किया। श्री पैट्रिक के मतानुसार वर्तमान सभ्यता में रहकर मनुष्य को ऐसे-ऐसे थका देने वाले कार्य करने पड़ते हैं कि उन में कोई शक्ति नहीं बच रहती। खेल के द्वारा मनुष्य इस खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करता है।

आलोचना—इस सिद्धान्त के समर्थकों द्वारा इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया जाता कि छोटे-छोटे बालक जिन्हें खेल को छोड़कर और कोई काम ही नहीं, किस लिए खेलते हैं। जब शक्ति का ह्रास ही नहीं होता तो उसकी पुनः प्राप्ति कैसे होगी।

(३) भावी जीवन की तैयारी का सिद्धान्त (The Anticipatory Theory)—जानवरों पर परीक्षण करने के पश्चात् कार्ल ग्रूस (Karl Groos) इस परिणाम पर पहुँचा कि खेलों के द्वारा बालक तथा पशु-पक्षी भावी जीवन की तैयारी करते हैं। हम प्रायः देखा करते हैं कि लड़कियाँ गुड़ियों का खेल [illegible] गुड़ियों को ही [illegible] हैं। लड़के गुड़ियों के [illegible] होते हैं तथा उनका विवाह करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार हम इसलिए नहीं खेलते कि हम छोटे होते हैं बल्कि हम छोटे होते हैं [illegible] खेलने के लिए। (We do not play because we are young but we are young in order to play)।

आलोचना—इससे [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

(४) [illegible] (The [illegible] Theory)—

[illegible]

जिस काम मे हमारा मनोरंजन होता है, वह हमारे लिए खेल ही है और जिस खेल में मनोरंजन न हो वह काम से भी अधिक अरुचिकर कार्य है। इसीलिए तो कहा गया है कि खेल और काम में केवल दृष्टिकोण का ही अन्तर है।

ग्यूलिक (Gulick) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "फिलासफी आफ प्ले" (Philosophy of Play) में खेल की परिभाषा इन शब्दों में दी है—

"Play is what we do when we are free to do wha we will."

अर्थात् जो कार्य हम अपनी इच्छा से स्वतन्त्रता पूर्ण वातावरण में क वही खेल है। इस परिभाषा मे खेल की सभी विशेषताएँ आजाती हैं।

खेल के सिद्धान्त (Theories of Play)—

खेल के सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न विद्वानो ने भिन्न-सिद्धान्तो का प्रतिप किया है। उनमे से कुछ मुख्य सिद्धान्त नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) अतिरिक्त शक्ति का सिद्धान्त (The Surplus Ener Theory) इस सिद्धान्त का निरूपण पहले पहल शिलर (Schiller किया। परन्तु कुछ समय के पश्चात इस सिद्धान्त का समर्थन हर्बर्ट स (Herbert Spencer) ने भी किया। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति द्वारा जो शक्ति प्राप्त हुई है। उसका बहुत सा अश तो जीविको करने मे तथा विपरीत परिस्थियो से लडने मे खर्च हो जाता है। जो बच जाती है और किसी काम मे नही आ सकती, उसका विकास खेलो होता है। स्पेंसर (Spencer) ने खेल की तुलना इजन के सेफ्टी (Safety valve) से की है।

आलोचना—यह बात तो ठीक है कि जो व्यक्ति हमेशा विपरीत प तियो से जूझता रहता है, वह खेलो से प्रायः दूर ही रहता है। परन्त सिद्धान्त को मानने मे कुछ कठिनाइयाँ हैं—(i) बालक पाठशाला अन्य लोग दफ्तर से थक कर घर आते हैं परन्तु फिर भी खेलना चाहत (ii) इस सिद्धान्त के समर्थक केवल शारीरिक शक्ति के सम्बन्ध

विचार करते हैं। अपने सिद्धान्त के स्पष्टीकरण में वे मानसिक शक्ति की उपेक्षा कर जाते हैं।

(२) खोई शक्ति के पुनर्निर्माण का सिद्धान्त (Recreartion Theory) यह सिद्धान्त पहले सिद्धान्त का बिल्कुल उलटा है। इस सिद्धान्त के अनुसार खेल के द्वारा अतिरिक्त शक्ति का व्यय नहीं अपितु खोई हुई शक्ति का पुनर्निर्माण होता है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे पहले लार्ड किम्स (Lord Kims) ने किया। बाद में पैट्रिक (Patrick) ने इसका समर्थन किया। श्री पैट्रिक के मतानुसार वर्तमान सभ्यता में रहकर मनुष्य को ऐसे-ऐसे थका देने वाले कार्य करने पड़ते हैं कि उन में कोई शक्ति नहीं बच रहती। खेल के द्वारा मनुष्य इस खोई हुई शक्ति को फिर से प्राप्त करता है।

आलोचना—इस सिद्धान्त के समर्थकों द्वारा, इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया जाता कि छोटे-छोटे बालक जिन्हें खेल को छोड़कर और कोई काम ही नहीं, किस लिए खेलते हैं। जब शक्ति का ह्रास ही नहीं होता तो उसकी पुन प्राप्ति कैसे होगी।

(३) भावी जीवन की तैयारी का सिद्धान्त (The Anticipatory Theory)—जानवरों पर परीक्षण करने के पश्चात् कार्ल ग्रूस (Karl Groos) इस परिणाम पर पहुँचा कि खेलों के द्वारा बालक तथा बालिकाएँ भावी जीवन की तैयारी करते हैं। हम प्रायः देखा करते हैं कि लड़कियाँ मिट्टी का चकला बेलन बनाकर मिट्टी की ही रोटियाँ सेकती हैं। गुड्डे गुड़ियों के कपड़े सीती हैं तथा उनका विवाह करती हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार हम इसलिए नहीं खेलते कि हम छोटे होते हैं बल्कि हम छोटे होते हैं, इसलिए खेलते हैं। (We do not play becaues we are young, but we are young in order to play)।

आलोचना—हमारे पास ऐसा कोई कारण नहीं जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि बालक खेलते समय अपने सामने कोई उद्देश्य रखते हैं। खेल तो केवल खेल के लिए ही खेला जाता है।

(४) पुनरावृत्ति का सिद्धान्त (The Recapitulatory Theory)—इस सिद्धान्त का निर्माण स्टेनले हाल (Stanley Hall) ने किया था।

श्री हाल के मतानुसार "खेल में बालक जातीय जीवन के पुनरावृत्ति करता है ("The child in his play l again the racial experiences of the past.) । री के विचार में छिपने और खोजना (Hide and Seek), मछली मारना, पत्थर फेंकना आदि सभी बातें इसी सिद्धान्त करती हैं। प्रौढ़ों के खेलों तथा बालकों के अनेकों कार्य मीमांसा इस सिद्धान्त के द्वारा नहीं हो सकती।

(५) रेचन का सिद्धान्त (The Cathatic Theo (Catharsis) शब्द का व्यवहार सब से पहले यूनानी दा (Aristotle) ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार बा प्रवृत्तियों का दमन किया जाता है, उनका विकास तथा प्रकाश हो सकता है। इस सम्बन्ध में टी० पी० नन (T. P. कहा है :—

Men Cannot shed altogether the ancie ncy to Cruelty and Vice, but play is at once by which the mischief may be taken out of t

अर्थात मनुष्य दमन करने की पुरानी आदत को नहीं छोड़ खेल के द्वारा इस दोष को दूर किया जा सकता है।

खेल और शिक्षा —

(i) इन्द्रियों का प्रशिक्षण — जब बालक इधर-उधर दौ कूदता फाँदता फिरता है तो उसके हाथ पाँव मजबूत होते स्फूर्ति आती है। गिल्ली-डन्डा, क्रिकेट, हॉकी इत्यादि खेलों द्वा हाथ का सन्तुलन सुदृढ़ होता है तथा स्नायुओं की वृद्धि होती है।

(ii) ... विकास — खेलों के द्वारा बालकों का स ... । खेल ... अभिनय

खेलों से बालक अपनी कल्पना शक्ति का विकास कर सकता है और उसका ज्ञान का क्षेत्र बढ़ता है।

(iii) चरित्र का विकास—खेलों के द्वारा बालकों में कई सद्गुणों का आविर्भाव होता है। वे नियमों का पालन करना तथा अनुशासन में रहना सीखते हैं क्योंकि इन के बिना कोई खेल खेला ही नहीं जा सकता। खेलों के द्वारा बालकों में सामाजिकता की भावना आजाती है। वे इस बात का यत्न करते हैं कि उन से कोई ऐसा काम न हो जिससे उन के साथियों को कष्ट पहुँचे। खेलों के द्वारा बालकों में आत्म-विश्वास तथा आत्म अभिव्यक्ति की भावना बढ़ती है।

सब से पहले पहल फ्रोबेल (Froebel) ने अपनी बालोद्यान (Kindergarten) पद्धति में खेलों को महत्वपूर्ण स्थान दिया। बालोद्यान में बालक अनेकों प्रकार के सामूहिक गीत गाते हैं, सामूहिक खेल खेलते हैं अभिनय करते हैं तथा अध्यापक से कहानियाँ सुनते हैं। छोटे-छोटे बालक खेल-खेल में ही गिनती गिनना, पढ़ना-लिखना सीख लेते हैं। बालकों की उनकी रुचि के अनुसार ही खेल खिलाए जाते हैं। यदि कोई बात बालकों को याद करवानी हो तो भी सामूहिक गीतों और खेलों का सहारा लिया जाता है।

वर्तमान युग में तो सभी मनोवैज्ञानिकों और शिक्षा-विशारदों ने बालकों के प्रशिक्षण में खेलों की उपादेयता को स्वीकार कर लिया है। इसीलिए तो हम देखते हैं कि श्रीमती मांटेसरी (Montessori) ने अपनी मांटेसरी विधि (Montessori Method) में, और डिवी (Dewey) ने प्रॉजेक्ट पद्धति (Project Method) में खेल विधि अथवा मनोरंजक शिक्षण को विशेष स्थान दिया है। डाल्टन विधि (Dalton Plan), बुनियादी शिक्षा की वर्धा योजना (Wardha Scheme of Basic Education) स्काउटिंग-विद्याएं (Scouting) आदि में भी खेलों के तत्त्व प्रमुख रूप से विद्यमान हैं।

४

आदत

(Habit)

Q. 17. What are habits ? How would you seek (a) to eradicate a bad habit, and (b) to acquire a good one? [Panjab 1948]

(आदतों से आपका क्या अभिप्राय है ? आप बुरी आदतों को कैसे दूर करेंगे तथा अच्छी आदतों का निर्माण कैसे करेंगे ।) [पंजाब १९४८]

Q. 18. How are the habits formed ? What part do they play in character formation ? How can a bad habit be broken ? [Panjab 1951]

(आदतों का निर्माण किस प्रकार होता है ? चरित्र निर्माण में उनका क्या महत्व है ? बुरी आदत को कैसे तोड़ा जा सकता है ?) [पंजाब १९५१]

उत्तर—आदत क्या है ?

मनुष्य जिस काम को एक बार कर लेता है, उसे दोबारा करना चाहता है, यह उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। अपने अनुभवों की आवृत्ति में हमें आनन्द की प्राप्ति होती है। बच्चे सुनी हुई कहानी को फिर से सुनना चाहते हैं ? हम अपने प्रत्येक अनुभव को दोहराना चाहते हैं। जो अनुभव जितनी

बार दोहराया जाएगा, उसका संस्कार उतना ही सुदृढ़ होगा। जो काम हम बार-बार करेंगे, वह हमारे स्वभाव का अंग बन जाएगा। यही आदत है। विलियम जेम्स (William James) ने आदत की परिभाषा इन शब्दों में दी है :—

"Habit is a tendency of an organism to behave the same way as it has bahaved before"

अर्थात पूर्वकृत अनुभव की आवृत्ति करने की इच्छा ही हमारी समस्त आदतों का मूल है।

आदत और मूल प्रवृत्तियाँ—

मूल प्रवृत्तियों को भी हम प्राणियों की आदतें कह सकते हैं। परन्तु दोनों में पर्याप्त अन्तर है। मूल प्रवृत्तियों को हम जन्मजात (Innate) संस्कार कह सकते हैं परन्तु आदत अर्जित (Acquired) संस्कारों का ही नाम है। मूल प्रवृत्तियाँ वंशानुक्रम के अनुसार बालकों को माता-पिता से प्राप्त होती है। परन्तु आदतों का निर्माण अभ्यास द्वारा होता है। एक बार आदत पड़ जाने पर उसका स्वरूप बहुत कुछ मूल प्रवृत्ति के समान ही हो जाता है।

आदत के लक्षण (Characteristics of Habitual Actions)—

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्टाउट (Stout) ने अपने 'शिक्षा मनोविज्ञान" (Educational Psychology) में आदतों से होने वाली क्रियाओं (Habitual actions) के नीचे लिखे लक्षण दिए हैं :—

(i) समानता (Uniformity)—आदतों से होने वाले कार्यों में हमेशा समानता रहती है। जिस कार्य को हम आदत वश करते हैं, वह पहले के समान ही होता है। हमारा खाना-पीना, चलना फिरना, वेश-भूषा सब आदत बन जाता है अर्थात उन में समानता रहती है।

(ii) सुगमता (Facility)—हमें जिस काम की आदत पड़ जाती है उसे हम बड़ी सरलता से कर लेते हैं। हम जब पहली बार टाईप (Type) करना सीखते हैं तब यह काम बड़ा कठिन प्रतीत होता है। परन्तु

आदत हो जाने पर हम शीघ्रता से टाईप करते चले जाते हैं। गाल्ट और हावर्ड (Gault and Howard) ने इसी बात का समर्थन करते हुए कहा है कि आदत पड़ जाने पर हमारी शक्ति की बचत होती है।

(iii) रोचकता (Propensity)—जो कार्य हम बार-बार करते हैं वह हमारे लिए रोचक हो जाता है। इस सम्बन्ध में स्टाउट (Stout) ने कहा है :—

"We are prone to do what we are used to do."

अर्थात् जिस काम को करने का हमें अभ्यास हो गया है, उसी को करने की हमारे मन में सहज भावना होती है। बालक को जब पहली बार स्कूल भेजा जाता है तो वह घबराता है परन्तु कुछ समय के पश्चात उससे स्कूल गए बिना रहा नहीं जाता।

(iv) ध्यान स्वातन्त्र्य (Independence of Attention)—जिस काम की आदत पड़ जाती है, उस पर ध्यान देने की आवश्यकता ही नहीं रहती। टाईप करना, साईकल चलाना, चलना-फिरना, बात-चीत करना इत्यादि कितने ही ऐसे कार्य हैं जिनकी आदत पड जाने पर बिना ध्यान दिए अपने आप होते चले जाते हैं।

(v) समान परिस्थितियाँ (Similarity of Situation)—समान परिस्थिति में ही आदत का निर्माण हो सकता है। यदि प्रतिदिन परिस्थिति बदलती रहे तो आदत नहीं पड सकेगी।

आदतों से लाभ (Advantages of Habits)

(i) कार्य में शीघ्रता (Speed)—आदत पड़ जाने पर कोई भी काम शीघ्रतापूर्वक किया जा सकता है। लिखना प्रारम्भ करने पर बालक एक-एक अक्षर को लिखने में बड़ी देर लगाता है परन्तु आदत पड़ जाने पर बहुत जल्दी लिखने लगता है।

(ii) कुशलता (Accuracy)—आदत से न केवल काम को जल्दी किया जा सकता है वरन् उस में कुशलता भी आजाती है। लिखना सीखते

समय, पहले भद्दे प्रकार बनते हैं। परन्तु बाद में, आदत हो जाने पर उनमें सुन्दरता और सुडौलता आजाती है।

(iii) श्रम, समय तथा अवधान की बचत (Economy of Mental and Bodily Energy)—जीवन के छोटे मोटे साधारण परन्तु अत्यन्तावश्यक कार्य आदत की सहायता से अपने आप होते रहते हैं। इनके लिए हमें श्रम का व्यय नहीं करना पड़ता। इससे हमारा मस्तिष्क अधिक गम्भीर समस्याओं जैसे राजनीतिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाने में लगाया जा सकता है।

आदत डालने के नियम—

विलियम जेम्स (William James) ने आदत डालने के कुछ नियम निर्धारित किए हैं। वे इस प्रकार हैं —

(i) सङ्कल्प की दृढ़ता—हम बालक में जिस आदत को डालना चाहते हैं, उसके सम्बन्ध में बालक द्वारा दृढ़ सङ्कल्प करवाना चाहिए। दृढ़ प्रण लेने से पूर्व यह आवश्यक है कि बालक उस वस्तु की उपयोगिता भली भाँति समझ जाए। यह अधिक अच्छा होगा, यदि बालक कक्षा में साथियों के सामने सङ्कल्प ले ताकि अपने आत्म-गौरव की रक्षा के लिए, प्रण का पालन करना आवश्यक हो जाए।

५

स्थायीभाव और चरित्र
(Sentiment and Character)

Q. 19. What do you understand by a sentiment? How would you form sentiments among children? [Panjab 1955

(स्थायी भाव से आपका क्या तात्पर्य है ? आप बालकों में स्थायी भावों का निर्माण कैसे करोगे ?) [पंजाब १९५५

Q. 20. What do you think are the most important sentiments that can be developed in schools? What means would you adopt to inculcate them? [Panjab 1948 Suppl

(वे ऐसे कौन से स्थायी भाव हैं जिनका विकास पाठशाला में किया जाना चाहिए ? इन स्थायी भावों का विकास पाठशाला मे कैसे किया जाएगा ।) [पंजाब १९४८ सप्ली०

Q. 21. Write what you know about master sentiment, will and training of will. [Panjab 1949

(प्रमुख स्थायीभाव, इच्छा-शक्ति तथा इच्छा शक्ति के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में आप जो कुछ जानते हो लिखो ।) [पंजाब १९४९]

Q. 22. What do you understand by the formation of character? How will you ensure proper development of character in a secondary school? [Panjab 1953, Banaras 1953 Agra 1956

(चरित्र निर्माण से आपका क्या तात्पर्य है? एक माध्यमिक पाठशाला में आप चरित्र का विकास किस प्रकार करेंगे।)

[पंजाब १९५३, बनारस १९५३, आगरा १९५६]

Q. 23. Plan a programme of moral training in a school. [Panjab 1956]

(किसी पाठशाला के लिए नैतिक शिक्षा का कार्यक्रम बनाओ।)

[पंजाब १९५६]

Q. 24. How are the sentiments related to character and in what way do they differ from complexes. [Agra 1954.]

(स्थायीभावों का चरित्र से क्या सम्बन्ध है इसकी विस्तृत चर्चा करते हुए लिखो कि उनमें और भावना-ग्रन्थियों में क्या अन्तर है?)

[आगरा १९५४]

Q 25. Explain nature and formation of sentiment Discuss how moral sentiments are formed and what role they play in the formation of character in children. [Agra 1960]

(स्थायी भाव के स्वरूप और निर्माण के सम्बन्ध में प्रकाश डालो। नैतिकता सम्बन्धी स्थायी भावों का निर्माण कैसे होता है तथा बालकों के चरित्र-निर्माण में उन का क्या स्थान है—विस्तृत चर्चा करो।)

[आगरा १९६०]

उत्तर— स्थायी भाव का स्वरूप

पिछले अध्याय में इस बात की चर्चा की गई थी कि आदत एक अर्जित प्रवृत्ति है। आदत के समान ही स्थायी भाव (Sentiment) भी एक अर्जित मानसिक गठन (Acquired mental structure) है। जिस प्रकार मूल-प्रवृत्ति के साथ कोई न कोई संवेग (Emotion) रहता है। उसी प्रकार आदतों के साथ भी संवेग जुड़े होते है। जब कई संवेग किसी एक व्यक्ति, वस्तु अथवा विचार से सम्बन्धित हो जाते है तो स्थायी भाव की उत्पत्ति होती है। आदत (Habit) का सम्बन्ध क्रिया या चेष्टा (Conation)

(चरित्र निर्माण से आपका क्या तात्पर्य है ? एक माध्यमिक पाठशाला में आप चरित्र का विकास किस प्रकार करेंगे ।)

[पंजाब १९५३, बनारस १९५३, आगरा १९५६]

Q 23. Plan a programme of moral training in a school. [Panjab 1956]

(किसी पाठशाला के लिए नैतिक शिक्षा का कार्यक्रम बनाओ ।)

[पंजाब १९५६]

Q. 24 How are the sentiments related to character and in what way do they differ from complexes. [Agra 1954.]

(स्थायीभावों का चरित्र से क्या सम्बन्ध है इसकी विस्तृत चर्चा करते हुए लिखो कि उनमें और भावना-ग्रन्थियों में क्या अन्तर है ?)

[आगरा १९५४]

Q 25. Explain nature and formation of sentiment Discuss how moral sentiments are formed and what role they play in the formation of character in children. [Agra 1960]

(स्थायी भाव के स्वरूप और निर्माण के सम्बन्ध मे प्रकाश डालो । नैतिकता [illegible] भावों का निर्माण कैसे होता है तथा बालकों [illegible] क्या स्थान है—विस्तृत चर्चा करो ।)

[आगरा १९६०]

[illegible] यों कि आदत एक अर्जित
[illegible] व (Sentiment) भी एक
[illegible] al structure) है । जिस
[illegible] (Emotion) रहता है । उसी
[illegible] है । जब कई संवेग किसी एक
[illegible] हो जाते है तो स्थायी भाव का
[illegible] क्रिया का पेहरा (Conation)

ा, तथा टहलना एक आदत है परन्तु देश-प्रेम एक स्थायी

का विकास—

ालक का अनुभव बढ़ता है, उसके अनुभव के विषय, कभी उसे
ी दुःख। बालक अपनी पाठशाला में जाता है। वहाँ उसे नए-
होते हैं, वहाँ वह कई प्रकार के खेलों में सम्मिलित होता है।
ाला उसके लिए आनन्द का स्थान बन जाता है। धीरे-धीरे
प्रेम करने लगता है और उसके हृदय में पाठशाला के प्रति
भाव उत्पन्न हो जाता है।

के विकास की अवस्थाएं—साधारणतयः स्थायीभाव के विकास
एँ हैं। पहली अवस्था मे बालक किसी मूर्त तथा वास्तविक
वस्तु की ओर संवेगात्मक रूप में आकर्षित होता है। दूसरी
संवेगात्मक आकर्षण का सम्बन्ध उन सब पदार्थों से हो जाता
वस्तु के गुण पाए जाएं। तीसरी अवस्था में उन गुणों से
ी भाव का निर्माण बालक के मन मे हो जाता है। उदाहरण
क शिवाजी अथवा गुरु गोविन्द सिंह के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त
की वीरता की कहानियाँ पढ़ कर अथवा सुन कर वह उनसे
ा है। यह स्थायी भाव के विकास की पहली अवस्था है।
वह इन वीरता सम्बन्धी गुणों को जिन-जिन व्यक्तियों में
राहना करेगा। और अन्तिम अवस्था मे उसके मन में वीरता
भाव का निर्माण हो जाएगा।

यदि हम बालक मे "सच्चाई" के स्थायी भाव का निर्माण
तो बालक के सामने ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण रखने होंगे
सच्चाई से ओत-प्रोत था। इस से उनके मन मे सच्चाई के
द्धा हो जाएगी जिनका विलय बाद मे स्थायी भाव के रूप

बालक जिस प्रकार के परिवार, समाज, अथवा धर्म में रहेंगे, उसके अनुरूप ही उन में स्थायी भावों का निर्माण होगा। हिंदुओं में गऊ रक्षा का, पठानों में अतिथि सत्कार का तथा जापानियों में देश भक्ति का बड़ा प्रबल स्थायी भाव होता है।

देश भक्ति, प्रजातन्त्रवाद के प्रति प्रेम, सफाई, नियम पालन, तथा अनुशासन-प्रियता इत्यादि ऐसी बातें हैं, जिन के स्थायीभावों का निर्माण बालकों में किया जाना चाहिए।

प्रमुख स्थायी भाव (Master Sentiment)—

जिस प्रकार कई संवेग, किसी वस्तु-विशेष अथवा व्यक्ति-विशेष से संबद्ध हो कर स्थायीभाव में परिणित हो जाते हैं, उसी प्रकार अनेकों स्थायीभाव आपस में मिल कर किसी न किसी प्रमुख स्थायीभाव (Master Sentiment) को जन्म देते हैं। भिन्न-भिन्न समय भिन्न-भिन्न प्रमुख स्थायीभाव हमारे जीवन को चालित करते हैं। उस समय हमें और कोई बात सूझती ही नहीं। उदाहरण स्वरूप 'हीर और रांझा" की प्रेम कथा सभी को ज्ञात है। प्रारम्भ में रांझे के मन में हीर के प्रति कई प्रकार के स्थायीभाव थे, जैसे—उसके सौंदर्य के प्रति आकर्षण, उसके मृदु स्वभाव की सराहना, उसके सरल जीवन के प्रति प्रशंसात्मक भाव, हृदय में गुदगुदी पैदा कर देने वाली उसकी मुस्कराहट, मन को लुभाने वाला उसका भोलापन। इन सब स्थायी भावों ने मिलकर, रांझे के मन में "प्रेम" नामक प्रमुख स्थायी भाव का जन्म दिया। रांझा हीर के प्रेम में पड़ कर अपना सम्पूर्ण कार्य को भूल गया। वह एक ही काम किया करता था। उसके मन में एक ही धुन थी। हीर को प्राप्त करने के इसने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया।

आत्म-गौरव का स्थायीभाव (Sentiment of Self Regard)—

जैसे जैसे बालक [illegible] बढ़ता जाता है [illegible] [illegible] है [illegible] जैसे जैसे वह [illegible] कुछ [illegible] है [illegible] [illegible] के [illegible] आत्म-गौरव के स्थायी भाव (Sentiment of Self Regard) का निर्माण होता है। [illegible]

आदत और चरित्र—

सैमुअल स्माईल्स (Samual Smiles) ने एक स्थान पर कहा है—

"Character is a bundle of habits"

अर्थात मनुष्य का चरित्र आदतों का समुच्चय है। आदतों पर विचार करते समय यह बताया ही जा चुका है कि मूल-प्रवृत्तियों (Instincts) के समान आदतों में बड़ी प्रेरक शक्ति होती है। आदत किसी भी बात की डाली जा सकती है। यदि प्रारम्भ से ही बालकों में श्रेष्ठ आचरण की आदतें डाल दी जाए तो उनके चरित्र का विकास उचित दिशा में हो सकता है। समय की पाबन्दी, सच्चाई, बड़ों का सम्मान, ईमानदारी, सफाई आदि बातें स्वाभाविक हो जाती है और उनके लिए किसी प्रकार का भी यत्न नहीं करना पड़ता।

वातावरण और चरित्र—

पाठशाला तथा घर के वातावरण का बालक पर बड़ा प्रभाव होता है। अपनी पाठशाला के मित्र, अपने सम्बन्धी और उनका जीवन तथा अन्य परिस्थितियाँ इन सब का प्रभाव बालक के चरित्र पर पड़ता है। बालक अनुकरण तथा सहानुभूति की प्रवृत्तियों द्वारा बहुत कुछ अज्ञात रूप में सीखता है। इसलिए विकासोन्मुख बालक के चारित्रिक विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे स्वस्थ वातावरण (Healthy environment) में रखा जाए।

चरित्र और भावना ग्रंथि—

यह पहले बताया ही जा चुका है कि यदि व्यक्ति की किसी प्रवृत्ति का बाल्यावस्था में दमन (Repression) किया जाए तो वह बाद में जाकर भ्रष्ट ग्रन्थि का रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार मनुष्य जीवन के कटु अनुभव भी मानसिक ग्रन्थि (Complex) में परिणित हो सकते हैं। भावना ग्रन्थियों को हम एक प्रकार के विकृत स्थायी भाव कह सकते हैं। इन भावना ग्रन्थियों के कारण व्यक्ति कई प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। वस्तुत: ये भावना-ग्रन्थियाँ चरित्र के निर्माण में बाधक होती हैं।

अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है कि वे स्वयं कोई ऐसा अवसर न आने दें जिस से यह ग्रन्थियाँ बनें। जिन बालको में इस प्रकार की भावना ग्रन्थियाँ बन चुकी हैं उनका मनोविश्लेषण के द्वारा रेचन करवा देना चाहिए और शनैः शनैः उन में वांछित स्थायी भावों को उत्पन्न करना चाहिए।

इच्छा शक्ति और चरित्र (Will and Character)—

चरित्र के सम्यक विकास के लिए इच्छा शक्ति की दृढ़ता आवश्यक है। दुर्बल इच्छा-शक्ति वाले व्यक्ति प्रायः दुर्बल चरित्र वाले होते हैं। जो एक निश्चय करके दृढ़ नहीं रह सकता, उसे दुर्बल चरित्र वाला ही कहना चाहिए। इसलिए अध्यापकों तथा बालकों के अभिभावकों को चाहिए कि बालकों में इच्छा-शक्ति का विकास करें।

इच्छा शक्ति की दृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि पाठशाला में बालकों को इस बात के अवसर प्रदान किए जाएँ कि वे किसी बात का निश्चय स्वयं ही करें। इस से उनके चरित्र में स्थायित्व आएगा और यही स्थायित्व दृढ़ इच्छा-शक्ति का प्रतीक है। इसी दृढ़ इच्छा शक्ति से ही उनके चरित्र में भी दृढ़ता आएगी।

६

वंशानुक्रम तथा वातावरण
(Heredity and Environment)

Q. 26. Describe fully the relative importance of heredity and environment as factors in education. Which do you consider more important ? Give reasons [Panjab 1948, 1950, 1955, suppl.]

(शिक्षा की दृष्टि से वंशानुक्रम तथा वातावरण का क्या महत्व है ? इन दोनों मे से आप किसे अधिक महत्व देंगे—प्रमाण सहित उत्तर दे।) [पंजाब १९४८, १९५०, १९५५ सप्ली०]

Q. 27. Discuss the relative influence of nature and nurture upon the mental and social development of the child. Give instances where possible. [Agra 1958, 1956, Banaras 1953]

(बालक के मानसिक तथा सामाजिक विकास पर वंशानुक्रम और वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है इसकी विस्तृत चर्चा करो। जहाँ सम्भव हो अपनी बात की पुष्टि उदाहरणों द्वारा करो।)
[आगरा १९५८, १९५६ बनारस १९५३]

Q 28 Discuss the relative importance of heredity and environment as factors in the education of child. Cite evidence for heredity and environment separately as determinants of individual differences. [Agra 1960]

(बालकों की शिक्षा की दृष्टि से वंशानुक्रम तथा वातावरण के

महत्व की विस्तृत चर्चा करो। बालकों के व्यक्तिगत भेदों को साम
रखते हुए, वंशानुक्रम तथा वातावरण के पक्ष में अलग-अलग
उदाहरण दो।) [आगरा १९६०]

उत्तर—श्री टी० पी० नन (T. P. Nunn) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक
"एडूकेशन एट्स डेटा एन्ड फस्ट प्रिंसीपल्स (Education : Its Data
and First Principles) में एक स्थान पर लिखा है :—

"Circumstances of life are to man
What rocks and winds and currents are to a ship,"

अर्थात् व्यक्तियों के लिए जीवन की परिस्थितियाँ वही महत्व रखती हैं
समुद्री जहाजों के लिए चट्टानें, समुद्र की लहरें तथा तेज हवायें। कुछ
वैज्ञानिकों तथा शिक्षा शास्त्रियों का ऐसा मत है कि किसी बालक
...श परम्परा के आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि उसका
... किस सीमा तक होगा, और उसकी शिक्षा-प्राप्ति की सम्भावनाएं
...? वे बालक के वातावरण को किसी भी प्रकार का महत्व नहीं देते।
...री ओर एक एक ऐसी विचार धारा है जो वातावरण मे विश्वास
...। इस विचार धारा के समर्थकों का कहना है कि यदि कोई बालक
...दिया जाए और बहुत समय तक उनके पास रहे तो वे उ...
...द्वारा उसके व्यक्तित्व को जिधर चाहे मोड़ सकते है।

...ार शिक्षा के क्षेत्र मे यह एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। यदि
...क्तित्व के विकास मे वंश-परम्परा का महत्व अधिक है तो शिक्षक
...शिक्षण प्रदान करने के लिए उपयुक्त बालकों का चुनाव करना
...यदि शिक्षा के क्षेत्र मे वातावरण का ही महत्व अधिक है तब
...बालक प्रतिभावान (Genius) बन सकता है। बुडवर्थ
...h) ने समस्या को बड़े सुन्दर रूप मे रखा है :—

...gardener pin his hope on careful cultivation of
...election of the best seeds."

...ली धरती को उपजाऊ बनाने की ओर अधिक ध्यान दे...

अथवा उत्तम बीजो की ओर। इस बात का निश्चय करने के लिए वंशानुक्रम तथा वातावरण के सम्बन्ध मे जो परीक्षण हुए हैं, उनकी चर्चा की जाएगी।

वंशानुक्रम के सम्बन्ध में कुछ तथ्य—

पाश्चात्य विद्वानो ने वंशानुक्रम के सम्बन्ध मे जो परीक्षण किए हैं, वे इस प्रकार हैं :—

विख्यात व्यक्तियों की जीवनियाँ—फ्रांसिस गाल्टन (Francis Galton) ने ९७७ विख्यात व्यक्तियो की जीवनियों का अध्ययन किया। ये व्यक्ति मन्त्री, न्यायाधीश आदि उच्च पदो पर आसीन थे। एकत्रित तथ्यो को उसने 'हैरिडिटरी जीनियस (Hereditary Genius) नाम पुस्तक मे दिया है। दिए गए आंकडो से ज्ञात होता है कि इन प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सम्बन्धी भी प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली थे। बाद मे कार्ल पियरसन (Karl Pearson) भी इन्ही परिणामो पर पहुँचा।

ज्यूक वंश (Jukes Family)—डगडेल (Dugdale) ने ज्यूक परिवार का अध्ययन किया। ज्यूक मछली पकडने का काम करता था। उसके लडको ने कुलटा तथा निम्न जाति की स्त्रियों से विवाह किया। डगडेल ने इस वंश के २८२०व्यक्तियो का अध्ययन किया। इनमें से केवल ३५० व्यक्ति ही साधारण (Normal) थे, २९९ भिखमंगे थे, ४४० भ्रष्ट आचरण के कारण घोर रोगो के शिकार हुए १३० अदालतो से अपराधी घोषित किए गए, १० हत्यारे थे, ६० पक्के चोर थे, ५० स्त्रियो ने वेश्यावृत्ति धारण की, २८५ पागल थे तथा २७१ व्यभिचारी थे।

कालीकाक परिवार (Kallikak Family)—गोडर्ड (Goddard) का कालीकाक परिवार का अध्ययन भी उपरोक्त मत की पुष्टि करता है। मार्टिन कालीकाक (Martin Kallikak) एक सैनिक था जिस का अवैध सम्बन्ध एक हीन बुद्धि महिला (Feeble minded) से हो गया। इस स्त्री की जो वंश परम्परा चली उसमे १४३ हीन-बुद्धि, ३६ जार-सन्तान ३३ वेश्याएँ, २४ शराबी तथा ११ अपराधी थे। युद्ध के पश्चात उसने एक उच्चवंश बुद्धि की सम्मानित स्त्री से विवाह किया। इस स्त्री से जो वंश

थी, उनमें ४६६ औसत व्यक्ति थे। केवल ३ व्यक्ति ही ऐसे थे
ोई न कोई दोष पाया जाता था।

ां बच्चों और सगे भाई बहनों का अध्ययन (Study o
and Siblings)—गाल्टन (Galton) तथा अन्य विद्वानों ने
ों तथा सगे भाई बहनों का अध्ययन किया है। भिन्न-भिन
के आधार पर निम्नलिखित सह-सम्बन्ध (Co-relation)
है :—

	जुड़वाँ बच्चे (Identical Twins)	सगे भाई बहन (Siblings)	असम्बन्धित व्यक्ति (Unrelated individuals)
Height) भिन्न	·६४	५०	·००
	·६०	·५०	·००

रीक्षणो के आधार पर कहा जाता है कि बुद्धि तथा चरित्र पर वंश
ा ही प्रभाव अधिक पड़ता है।

के पक्ष में प्रमाण—

(Lock) *का मत—प्रसिद्ध यूरोपियन विद्वान लॉक का* कथन है
एक स्वच्छ स्लेट के समान है, जिस पर जो चाहे अंकित कर लो।
जिस प्रकार की शिक्षा दी जाएगी, वे वैसे ही बन जाएँगे।

ों द्वारा पाले गए बालक (Wolf children)—लखनऊ के पास
टे बालक जिन की आयु ग्यारह वर्ष और सात वर्ष थी, वे भेड़ियों
मे पाए गए। ऐसा प्रतीत होता है कि इन बच्चो को शिशु अवस्था
उठा कर ले गए थे और अब वे ही उन का पालन पोषण कर
ड़ियों के साथ रह कर इन बालको की आदतें भी वैसी ही बन गई
रो पाँवों से चलते थे तथा कच्चा माँस खाते थे। उन्हे अस्पताल
और धीरे-धीरे उनकी आदतें बदलनी शुरू हुईं।

जुड़वाँ बच्चों का अध्ययन (Study of Twins)—वातावरण में विश्वास रखने वाले विद्वानो ने भी जुड़वाँ बच्चो (Identical twins) का अध्ययन किया। वातावरण के प्रभाव की परीक्षा करने के लिए, इन्होने इन बच्चों को अलग-अलग रखा। परीक्षणो के आधार पर पता चला कि इन बालको की बुद्धि-उपलब्धि (I Q) ऊँचाई (Height), वजन (weight) तथा अन्य शारीरिक और मानसिक प्रवृत्तियो मे काफी अन्तर पड़ गया है।

वंश-परम्परा और वातावरण की तुलना तथा शिक्षा से सम्बन्ध—

कुछ मनोवैज्ञानिको ने वंशानुक्रम के प्रभाव को अधिक बताया है तथा कुछ ने वातावरण के प्रभाव को। परन्तु वास्तव मे दोनो प्रकार के प्रभाव बालक के व्यक्तित्व के विकास मे काम करते हैं। जिस प्रकार चतुर्भुज का क्षेत्र-फल चतुर्भुज के आधार तथा ऊँचाई के ऊपर निर्भर करता है उसी प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व, उसकी पैतृक सम्पति तथा वातावरण जिस में शिक्षा भी सम्मिलित है, पर निर्भर करता है।

बुद्धि मापक परीक्षणों के आधार पर पता चलता है कि बालकों की जन्मजात बौद्धिक योग्यताओं मे अन्तर रहता है। यह अन्तर किसी भी प्रकार की शिक्षा से नहीं मिटाया जा सकता। शिक्षा का कार्य इतना ही है कि बालकों की जन्मजात योग्यताओं का सदुपयोग किया जाए। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम मैकडूगल (William McDougall) का यह कथन बड़ा महत्त्वपूर्ण है—

"The most enthusiastic educator will hardly maintain th man's superiority to the gorilla is wholly due to more advanta geous environments and greatr educational opportunities. I is no less clear that men differ widely in respect of their nativ capacities."

—Mc Dougall : Energies of Man

अर्थात् शिक्षा के महत्व में चाहे किसी शिक्षक का कितना ही विश्वास क्यो न हो परन्तु यह कोई भी नहीं कहेगा कि मनुष्य गोरिल्ला से इस लिए अच्छा है, क्योकि उसे अनुकूल वातावरण मिला है तथा उसे अधिक शिक्षा की सुविधाएँ मिली है। इस प्रकार यह भी पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि भिन्न

भिन्न व्यक्तियों की योग्यताओं में जो अन्तर पाया जाता है, उसका क
सम्पति ही है ।

श्री थामसन (Thompson) ने भी अपनी प्रख्यात पुस्तक '
इन्टैलीजेन्स एण्ड कैरेक्टर (Instinctot, Intelligance and
acter) के दूसरे अध्याय में एक स्थान पर लिखा है—

"*By education* we can add an *inch or two to the st*
the child, but we cannot add a cubit."

"*अर्थात् हम शिक्षा के द्वारा बालक की ऊँचाई एक दो इंच बढ़ा*
परन्तु हम शिक्षा के द्वारा उसकी ऊँचाई एक हाथ नहीं बढ़ा सकते।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि शिक्षा के द्वारा बालकों का
हो सकता है परन्तु इस विकास की सीमा, उनकी पैतृक सम्पति नि
करती है।

उत्तर— व्यक्तित्व का अर्थ तथा स्वरूप—

व्यक्तित्व के लिए अंग्रेजी भाषा में 'पर्सनैलोटी (Personali
का प्रयोग किया जाता है जिसकी व्युत्पत्ति यूनानी की भाषा (
के 'परसोना' (Persona) शब्द से मानी जाती है। परसोना
आवरण को कहते थे जिसे यूनान के लोग रङ्गमंच पर नाटक से
पहना करते थे। रोम के लोग 'व्यक्तित्व' को एक दूसरे रूप में
रंगमंच पर कोई व्यक्ति किसी दूसरे मनुष्य का अभिनय करता है
तो वह व्यक्ति नहीं होता परन्तु दूसरों को वैसा दिखाता है।
स्वरूप कोई अभिनेता भगवान राम का अभिनय करता है। अब व
भगवान राम है नहीं परन्तु दर्शकों को तो वैसा ही दिखता है। परन्
का अभिप्राय इससे स्पष्ट नहीं होता। 'हम जैसा दूसरों को
व्यक्तित्व इस से कहीं अधिक होता है। जर्मनी के सम्राट बिस्मार्क (Bi
का नाम सुन कर लोग काँपते थे। उसने कितने ही राज्यों को
कर दिया। परन्तु उसकी पत्नि उसके सम्बन्ध में कहा करती थी
रोगी बिस्मार्क।"

जनसाधारण में व्यक्तित्व का जो अर्थ लिया जाता है, वह है
ने की शक्ति। परन्तु इन अर्थों में व्यक्ति की आन्तरिक ग
त नहीं किया जाता।

समय के दार्शनिक व्यक्तित्व के आध्यात्मिक अर्थों को
इसको नियन्त्रण करने वाली शक्ति (Power of Co
इन अर्थों में व्यक्ति के भौतिक या शारीरिक आचरण
ई है।

ार मार्टन (Morton) ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के
स्वभाव, मूलप्रवृत्तियों, भावनाओं तथा इच्छाओं
है। (Personality is the sum total of innate
ulses, tendencies and instincts of the individu
sitions and tendencies acquired by expe
रिभाषा में भी बाह्य आचरण को स्थान नहीं दिया गया

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सब से उत्तम परिभाषा एलपर्ट (Allport) की है। वे व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए लिखते हैं—

"Personality is the dynamic organization within the individual of those psycho-physical systems that determine his unique adjustment to his environment."

अर्थात् व्यक्तित्व का सम्बन्ध मनुष्य की उन शारीरिक तथा आन्तरिक वृत्तियों से है जिनके आधार पर व्यक्ति अपने वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करता है।

व्यक्तित्व की सब से बड़ी विशेषता उसकी एकता (Unity) है। व्यक्ति का बाह्य आचरण, उसकी जन्मजात (Innate) तथा अर्जित (Acquired) वृत्तियाँ, आदतें स्थायीभाव, उसके आदर्श (Ideals) तथा जीवन के मूल्य (Values of life) यह सब मिल कर एक ऐसे प्रमुख स्थायीभाव (Master Sentiment) या आदर्श 'स्व' (Ideal 'Self') को जन्म देते हैं जो मनुष्य के व्यक्तित्व का प्रमुख आधार है।

व्यक्तित्व की विशेषताएँ (Characteristics of Personality)—

(१) आत्म-चेतना—व्यक्तित्व की सब से प्रधान विशेषता आत्म चेतना (Self-Consciousness) है। हम किसी पशु अथवा छोटे बालक के सम्बन्ध में यह नहीं कह सकते कि उन का अपना व्यक्तित्व होता है क्योंकि उन्हें अपने [illegible] सम्बन्ध में बहुत कम ध्यान होता है। एक परिपक्व व्यक्ति [illegible] [illegible] के कारण ही दूसरों की प्रशंसा तथा [illegible] चित होता है और इस बात की ओर [illegible] उसको किस दृष्टि से देखते हैं।

[illegible] की दूसरी [illegible] उसकी सामाजिकता [illegible] के [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] ही हम कर सकते हैं [illegible]

(३) वातावरण के साथ सामंजस्य (Adjustment to environment)—वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करना भी व्यक्तित्व की एक विशेषता है। एक डाक्टर, दुकानदार, अध्यापक, पति अथवा पत्नि आदि के आचरण को देख कर इस बात का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है कि उन्होने वातावरण के साथ किस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया है। सामञ्जस्य का अर्थ केवल अपने आप को वातावरण के अनुसार ढालना ही नहीं अपितु वातावरण को अपने अनुकूल बना लेना भी है।

(४) ध्येय की ओर अग्रसर होना (Striving for Goals)—अपने व्यक्तित्व के द्वारा हमें सदा इस बात की प्रेरणा मिलती रहती है कि अपने जीवन के ध्येय को पूर्ण करने के लिए आगे बढ़ते रहें। किसी व्यक्ति के जीवन का ध्येय क्या है और वह इस ओर कितना सजग है, इसको देखकर ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व किस प्रकार का होगा।

(५) एकता (Unity)—व्यक्तित्व की परिभाषा में यह बताया जा चुका है कि व्यक्ति एक पूर्ण-इकाई (A Unified Whole) के रूप में ही काम करता है। किसी व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक अथवा रागात्मक क्रियाओं (Activities) को अलग-अलग लेकर हम उसके व्यक्तित्व का अध्ययन नहीं कर सकते। इन सब क्रियाओं का सामूहिक प्रभाव किसी व्यक्ति पर किस प्रकार पड़ा है, इस के आधार पर ही उसके व्यक्तित्व की जाँच हो सकती है।

व्यक्तित्व के प्रकार (Types of Personality)—

विलियम जेम्स (William James) ने व्यक्तियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया है, नर्म प्रकृति के व्यक्ति तथा सख्त प्रकृति के व्यक्ति। नर्म प्रकृति (Tender Minded) के व्यक्ति आदर्शवादी होते हैं। वे सोचते अधिक हैं तथा अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहते हैं। उनका दृष्टिकोण धार्मिकता तथा रूढ़िवादिता से परिपुष्ट होता है। दूसरी ओर सख्त प्रकृति (Tough Minded) के व्यक्ति प्रायः भौतिकवादी दृष्टिकोण रखते हैं।

स्परैंगर (Spranger) ने व्यक्तित्व की दृष्टि से लोगो का श्रेणी विभाजन इस प्रकार किया है—

(i) ज्ञानात्मक (*Cognitive*) व्यक्तित्व—ऐसे व्यक्ति ज्ञान की प्राप्ति की ओर अधिक ध्यान देते हैं और आगे जाकर दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक बनते हैं।

(ii) कलात्मक (Artists) व्यक्तित्व—ऐसे व्यक्ति सुन्दर वस्तुओ मे रुचि रखते हैं और बाद मे जाकर अच्छे कलाकार (Artists) बनते हैं।

(iii) आर्थिक (Economic) व्यक्तित्व—कुछ लोग इस बात का विशेष ध्यान रखते है कि खर्चे मे कमी किस प्रकार की जाए। इस प्रकार के व्यक्ति ही भविष्य मे विख्यात उद्योगपति तथा व्यापारी बनते हैं।

(iv) राजनीतिक (Political) व्यक्ति—इस प्रकार के व्यक्ति सत्ता को हस्तगत करने के लिए विशेष रूप से प्रयत्नशील रहते है और भविष्य मे राजनीतिज्ञ बनते है।

(v) धार्मिक (Religous) व्यक्तित्व—इस प्रकार के व्यक्तियो मे सन्त महात्मा तथा पुजारी आदि आ जाते हैं जो इहलोक का सम्बन्ध परलोक से स्थापित करते है।

(vi) सामाजिक (Social) व्यक्तित्व—यह प्रवृत्ति उन व्यक्तियो मे पाई जाती है जो समाज के, दूसरे व्यक्तियो के, हित मे विश्वास करते है। यह व्यक्ति आगे जाकर समाज सुधारक तथा सामाजिक कार्यकर्ता (Social Workers) बनते हैं।

जर्मनी के विख्यात मनोविश्लेषणवादी श्री युग (Jung) ने मानव प्रकृति को तीन प्रमुख भागो में विभाजित किया है। अन्तर्मुखी (Introvert), बहिर्मुखी (Extrovert) तथा उभयमुखी (Ambivert)।

(i) अन्तर्मुखी (Introverted) व्यक्तित्व—अन्तर्मुखी व्यक्ति अपनी यौवन शक्ति (Libido) को अपनी ओर किए रहता है। यह प्रत्येक वस्तु

ा व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से देखता है। वह लज्जाशील होता है।
: से दूर रहने में उसे शान्ति मिलती है। वह प्रदर्शन पसन्द नहीं
लोगों का ध्यान आकृष्ट करना उसे अच्छा नहीं लगता। वह विचार
ोता है। किसी काम को करने से पहले वह उस पर भली-भाँति
ता है। सहसा किसी काम को करना उसके स्वभाव में नहीं होता।
र विज्ञान में उसकी रुचि होती है। आत्म-प्रशंसा को वह पसन्द
ता।

) बहिर्मुखी (Extroverted) व्यक्तित्व—बहिर्मुखी व्यक्ति अपनी
क्ति (Libido) को बाहर की ओर प्रेरित करता है। इस प्रकार
 क्रिया प्रधान होता है। सामाजिक कार्यों में वह बड़ी प्रसन्नता से
ोता है। लोगों को संगठित करने में वह कुशल होता है और लोक-
 बन सकता है। उसकी रुचि प्रदर्शन में रहती है। सुन्दर-सुन्दर
ना उसे अच्छा लगता है। आत्म-प्रशंसा का वह भूखा होता है।
ौर मनन उसे अच्छा नहीं लगता। वह आदर्शपूर्ण तथा महत्वाकांक्षा-
त में विश्वास नहीं करता। जीवन को आनन्दपूर्वक बिताना ही
वन का ध्येय होता है।

) उभयमुखी (Ambiverted) व्यक्तित्व—जिन व्यक्तियों में
 तथा बहिर्मुखी दोनों प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, वे उभयमुखी कहलाते
र में अधिकांश व्यक्ति इसी प्रकार के होते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत कम
ी केवल अन्तर्मुखी अथवा केवल बहिर्मुखी हो।

 को मापने की विधियाँ (Methods of the Assessment
sonality)—

तत्व बड़ा गहन तत्व है। इसको मापना बहुत कठिन है। व्यक्तित्व
 के लिए कोई एक विधि प्रमाणिक नहीं मानी जा सकती। व्यक्तित्व
 के लिए कई विधियों का एक साथ प्रयोग करना होगा। भिन्न-
विज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को मापने के लिए जिन विधियों का निर्माण
 वे नीचे दी जारही हैं—

के
(B
बत
दो
बा
नि

प्रश
प्रश
है।
जाते
करन
(B
नहीं

व्यक्ति
होता
के द्वारा
आधार

(
किसी
लिए
मापों

(i) निरीक्षण पद्धति (Observational Method)—इस विधि के अनुसार प्रयोगकर्ता अथवा मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के आचरण (Behaviour) का निरीक्षण करता है। व्यक्ति का आचरण अलग-अलग वातावरण में अलग-अलग समय पर देखा जाता है। इस प्रणाली का प्रयोग छोटे-छोटे बालकों पर सफलतापूर्वक किया गया है। इस विधि में सब से बड़ा दोष यह है कि यह विधि वस्तु-निष्ठ (Objective) न होकर व्यक्ति-निष्ठ (Subjective) होती है।

(ii) भेंट या साक्षात्कार (Interview)—अध्ययन के लिए किसी संस्था मे प्रवेश पाना हो अथवा कहीं नौकरी करना हो तो विद्यार्थियों अथवा कर्मचारियों का चुनाव करते समय इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। जिन व्यक्तियों को भेंट के लिए बुलाया जाता है उनसे मौखिक प्रश्न पूछे जाते हैं। इस विधि का सफल प्रयोग करने के लिए इस कला मे प्रवीणता प्राप्त करनी होगी। सबसे कठिन होता है कि कर्मचारी के साथ ठीक-ठीक सम्बन्ध (Rapport) स्थापित रख सकना। ऐसा न होने पर सूचना ठीक-ठीक नहीं मिलेगी और व्यक्तित्व का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकेगा।

(iii) प्रश्न विधि (Questionnaire)—इस विधि के अनुसार व्यक्ति को एक प्रश्नावली दी जाती है और उसे इन प्रश्नों का उत्तर देना होता है। बहुत सी बातें जो भेंट के समय नहीं बताई जा सकतीं, इस विधि के द्वारा प्रगट की जा सकती हैं। प्रश्नों का जो उत्तर प्राप्त होता है, उसके आधार पर व्यक्ति की रुचि, क्षमता तथा योग्यता की जाँच की जाती है।

(iv) मापन रेखा (Rating Scale)—इस विधि के द्वारा व्यक्ति के किसी गुण (Trait) को मापा जाता है और जाँच के अनुसार अंक प्रदान किए जाते हैं। अंक देने के लिए रेखा (Scale) को तीन, पाँच अथवा सात भागों में बाँट लेते हैं। यहाँ पाँच भागों वाली एक रेखा दी जा रही है—

क्या तुम सत्य बोलते हो ?

१	२	३	४	५
सदा	बहुत बार	कभी-कभी	बहुत कम	कभी नहीं

यक्ति इन पाँच उत्तरों में से जो भी उत्तर देना चाहता है, उस पर
लगा देता है।

(v) प्रक्षेपण विधियाँ (Projective Techniques)—प्राज
न विधियो का प्रयोग अधिक किया जाता है। ऐसा समझा जाता है
क्ति अपनी भावनाओं को अन्य वस्तुओं पर आरोपित करता है।
लिखित प्रक्षेपण विधियो का अक्सर प्रयोग किया जाता है:—

ोशाह (Rorschach) पद्धति—इसका निर्माण स्विटजरलैण्ड निवासी
ानिक श्री रोशाह (Rorschach) ने किया था। इसमें दस कार्ड
ई जिन पर स्याही के धब्बो (Ink blots) के चित्र बने रहते हैं।
यो से पूछा जाता है कि इनमे कौन-कौन सी वस्तुएँ दिखाई देती हैं।
(Responses) के आधार उनके व्यक्तित्व की जाँच का जाती है।
धि का प्रयोग साधारण व्यक्ति नही कर सकता। इसके लिए प्रशिक्षण
ावश्यकता पड़ती है।

ी० ए० टी० (T. A. T. or Thematic Apperception
t)—इस विधि का निर्माण मार्गन और मरे (Morgan and
rraoy) ने किया। इसमें व्यक्तियों से सम्बन्धित कुछ चित्र होते हैं।
को चित्र से सम्बन्धित कहानी बनाने के लिए कहा जाता है।
ी के आधार पर व्यक्तित्व की जाँच होती है। ऐसा समझा जाता है कि
ी व्यक्ति की आत्म कथा ही होती है।

(vi) व्यक्ति-इतिहास (Case History)—इस पद्धति के अनुसार
से सम्बन्धित सभी प्रकार की सूचना एकत्रित की जाती है जैसे उसका
रिक स्वास्थ्य, संवेगात्मक स्थिरता (Emotional Stability)
जिक जीवन इत्यादि। इस सब सूचनाओं तथा बुद्धि-परीक्षण (Intelli-
ice Test) रुचि-परीक्षण (Aptitude Test) आदि के आधार पर
त के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में राय (Opinion) दी जाती है।

८

सीखने की प्र

(The Learning Pr

Q. 33. Describe the various theories of learning.
[Rajasthan

(सीखने के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों की चर्चा क
[राजस्थान १

Q. 34. Describe the nature of learning process and
various laws that govern it. (Panjab 1953

सीखने की प्रक्रिया पर विचार व्यक्त करते हुए लिखो कि
के कौन-कौन से नियम हैं।) [पंजाब १९५३ स

Q 35. What is meant by the process of learning ? D
the main types of learning and discuss fully the factor
promote it. (Agr

(सीखने की प्रक्रिया से आपका क्या अभिप्राय है ? सीखने
मुख्य प्रकारों की चर्चा करो। वे ऐसे कौन से साधन हैं जिन से
की प्रक्रिया में सहायता मिलती है।) [आगरा

उत्तर—सीखना क्या है ?—

सीखने से हमारा क्या अभिप्राय है, इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन
वैज्ञानिकों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। कुछ लोग वातावरण के साथ
बनाए रखना, इसी को ही सीखना कहते है। दूसरे कई विद्वानों के

पहल उसे पूरी सफलता नहीं मिलती। कुछ न कुछ भूल हो ही जाती है। वह फिर से प्रयास करता है और पहले वाली भूलों की आवृत्ति नहीं करता। इस प्रकार प्रत्येक प्रयास के साथ-साथ भूलों की संख्या भी कम होती जाती है। और अन्त में एक ऐसा समय भी आ जाता है जब कि वह उस कार्य को ठीक-ठीक ढंग से करने लगता है।

थार्नडाईक (Thorndike) ने एक भूखी बिल्ली को पिंजरे में बन्द कर दिया और पिंजरे के बाहर एक दूध का कटोरा रख दिया। पिंजरे के अन्दर की ओर एक साकल लगा दी जिसे खोल कर बिल्ली बाहिर आ सकती थी। दूध की सुगन्ध से बिल्ली की भूख और भी बढ गई। अब वह पिंजरे से बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगी। कभी सीखचों में अपने पञ्जे डालती, कभी अपना मुँह। इस प्रकार वह बार-बार प्रयास करती और असफल रहती। परन्तु प्रत्येक प्रयास के साथ उसकी भूलों की संख्या कम होती गई। अन्त में वह साकल खोल कर बाहर आ गई और एक दम दूध पी गई।

मनुष्य भी बहुत सी बातें इसी ढंग से सीखता है। परन्तु उसका सभी आचरण इसी सिद्धान्त से परिचालित नहीं होता।

(२) सूझ के द्वारा सीखना (Learning through Insight and Understanding)—सब से उच्च कोटि का सीखना सूझ के द्वारा सीखना है। इस प्रकार के सीखने में समझ तथा सूक्ष्मता की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार के सीखने में मनुष्य अपनी कल्पना शक्ति से काम लेता है। जब कि प्रयास और भूल के सिद्धान्त में शारीरिक चेष्टाएँ ही मुख्य रहती हैं। यहाँ सीखने की प्रक्रिया पूर्ण इकाई के रूप में ही ग्रहण की जाती है। इस सिद्धान्त का निर्माता गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt Psychology) का प्रसिद्ध विद्वान कोह्लर (Kohler) है। उसने इस सम्बन्ध में चिंपाजियों पर कई परीक्षण किए। उनमें से एक परीक्षण इस प्रकार है—

एक चिंपाजी को पिंजरे में बन्द कर दिया गया। बाहर कुछ दूर पर केले टाँग दिए गए। चिंपाजी (Chimpanzee) को केले बहुत अच्छे लगते हैं। चिंपाजी के हाथ केले तक नहीं पहुँच सकते थे। पिंजरे में दो बाँस डाल दिए

ोई भी बांस अकेला उन केलों तक नहीं पहुँच सकता था। परन्तु उन्हें
रे में इधर-उधर यहां मनमाना जा सकता था। और यह बड़ा बाँस केलों
म पाता था। पहले तो वह एक-एक बाँस को लेकर केलों तक पहुँचने
त करता रहा। परन्तु असफल रहने पर उसने प्रयत्न करना बन्द कर
ौर बाँस के टुकड़ों से खेलने लगा। एकदम उस के मन में को
आया और उसने उन बाँसों को जोड़ा और केले ले कर खा लिए।

ॉर्नडाईक (Thorndike) इस सिद्धान्त को प्रयास और भूल का ह
कसित रूप मानता है। उसके मतानुसार यहाँ मानसिक प्रयास किय
। यह सिद्धान्त पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों पर ही सफलतापूर्वक ला
ा सकता है।

यापक का कर्त्तव्य है कि वह बालकों की कल्पना तथा विचार शक्ति
सित करे, ताकि वे सूझ के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति कर सकें।

) अनुकरण द्वारा सीखना (Learning by Imitation)—
मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बालकों में अनुकरण (Imitation
त्ति पाई जाती है, इस लिए कुछ मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि सीखने
ा अनुकरण के द्वारा ही सम्भव हो सकती है। इस सम्बन्ध मे
(Hagarty) का एक परीक्षण दिया जाता है—

हे की एक पोली नली में एक केला ठूँस दिया गया। एक भूखे बन्दर
कमरे में बन्द करके उस लोहे की नली को उसके सामने डाल दिया
न्दर ने नली में केले को देखा तो उसे पटक-पटक कर निकालने का
ने लगा, परन्तु असफल रहा। अन्त में कुछ समय बाद उसने पास
डण्डे को उठाया और उसे नली में घुसेड़ दिया। दूसरे सिरे से केला
ाया। पहले बन्दर की इन चेष्टाओं को एक अन्य बन्दर भी देख रहा
र उसके सामने भी केले से भरी एक नली डाली गई तो उसने एक
ी देरी भी न की और झटपट डण्डे को नली में डाल कर केले को
लिया। इस प्रकार दूसरे बन्दर ने पहले का अनुकरण करके नए काम
ा शीघ्र ही सीख लिया।

क्योंकि इस सिद्धान्त का प्रयोग सभी प्रकार के पशुओं पर नहीं किया जा सकता, इसलिए थार्नडाईक (Thorndike) इस सिद्धान्त की कड़ी आलोचना करता है।

सीखने का नियम (The Laws of Learning)—

अमेरिका के प्रख्यात मनोवैज्ञानिक थार्नडाईक (Thorndike) ने सीखने के तीन नियम खोज निकाले हैं। अन्य मनोवैज्ञानिक भी यह स्वीकार करते हैं कि ये तीनों नियम सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। अतएव प्रत्येक अध्यापक को इन नियमों की जानकारी होना आवश्यक है।

(१) अभ्यास का नियम (The Law of Exercise or Frequency)—जिस क्रिया की जितनी आवृत्ति की जाएगी, वह उतनी ही सरल हो जायगी और उसे हम अधिक कुशलता तथा शीघ्रता के साथ कर सकेंगे। यही सीखना है। सीखने में अभ्यास की बड़ी आवश्यकता होती है बिना अभ्यास के कुछ भी नहीं सीखा जा सकता। टाइप करना साईकिल चलाना, गणित के प्रश्न करना, क्रिकेट तथा हॉकी आदि खेल, इन सब में जितना हमारा अभ्यास होगा, उतने ही हम अधिक निपुण होंगे। अभ्यास न रहने पर निपुणता जाती रहेगी। यदि बालकों में नई आदतें डालनी हों तो इसी नियम का सहारा लेना पड़ता है।

उसे करना वह नहीं चाहेगा। इस प्रकार दण्ड और पुरस्कार द्वारा बालक में नई आदतें डाली जा सकती हैं।

(३) तत्परता का नियम (The Law of Readiness)—इस नियम के अनुसार जिस काम को करने के लिए हम पहले से ही तैयार हैं अर्थात् जिस काम मे हमारी रुचि है, उसे हम सरलता से सीख लेते हैं। इसके विपरीत जिस काम के लिए हम तैयार नहीं अथवा जिसे हम करना नहीं चाहते, उसे हम प्रायः नहीं सीख सकते।

प्रशिक्षण की नई विधियों मे इसी नियम का ही प्रयोग किया जाता है। पाठ का प्रारम्भ करने से पूर्व बालकों की रुचि और जिज्ञासा को जागृत किया जाता है।

सीखने के साधन (Factors Leading to Efficiency in Learning)—

(१) सीखने का समय—बालक किसी विषय पर अधिक देर तक अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकते। उन की यह शक्ति परिमित रहती है, इसलिए उन्हें एक ही काम पर अधिक देर तक नहीं लगाया रखना चाहिए। थके हुए बालक का ध्यान इधर-उधर जाने लगता है।

(२) सीखने की आयु—आयु का सीखने से घनिष्ट सम्बन्ध है। छोटे बालक को यदि संगीत सिखाया जाए तो वह जल्दी सीख जाएगा परन्तु प्रौढ़ व्यक्ति के लिए यह कार्य प्रायः असम्भव सा ही होगा। कहावत भी है "बूढ़े तोते भी कभी पढ़े हैं।"

(३) सीखने का वातावरण—सीखने की उन्नति वातावरण पर भी निर्भर रहती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में सीखने का कार्य सुगमता से नहीं हो सकता। साफ़, खुली हवा में पढ़ना सरल है परन्तु अत्याधिक गर्मी या सर्दी में पढ़ना कठिन काम है। जहाँ अधिक शोर रहता है, वहाँ भी पढ़ना कठिन होता है।

(४) शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य—शारीरिक और मानसिक

स्वास्थ्य ठीक न रहने पर बालक की पढाई मे रुचि नही रहेगी। वह जल्दी थक जाएगा। इसलिए इस ग्रोर ध्यान देना ग्रावश्यक है।

(५) सीखने की इच्छा—सीखना व्यक्ति की इच्छा ग्रौर रुचि पर निर्भर करता है। जिस बालक को जिस विषय को सीखने की इच्छा नही है, उसे वह नहीं सीख सकता। घोड़े को पानी के तालाब तक तो ले जाया जा सकता है परन्तु उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे पानी नही पिलाया जा सकता। इसलिए पढ़ाने से पूर्व बालक की इच्छा ग्रौर रुचि जाग्रत करना ग्रावश्यक है।

(६) सीखने के लिए ग्रभ्यास—यह पहले बताया ही जा चुका है कि जिस क्रिया का जितना ग्रधिक ग्रभ्यास होगा उसे हम उतनी ही जल्दी सीखेंगे।

(७) प्रतियोगिता—इस बात का ग्रनुभव तो प्रत्येक ग्रध्यापक को होगा। कि प्रतियोगिता की भावना से प्रेरित हो कर बालक बहुत जल्दी सीखते हैं। इसीलिए तो परीक्षा के दिनो मे इतना परिश्रम करते हैं। खेलो मे बालक प्रतियोगिता की भावना से ही ग्रधिक महनत करते हैं।

(८) पुरस्कार ग्रौर निन्दा—पहले परिणाम (Effect) के नियम में यह बताया ही जा चुका है कि किस प्रकार सीखने की प्रक्रिया मे पुरस्कार ग्रौर निन्दा से सहायता ली जा सकती है।

(९) लगन की वृद्धि—जो काम भी लगान के साथ किया जाएगा उसका सीखना बहुत सुलभ हो जाएगा। बहुत समय तक किसी काम को करते रहने की ग्रपेक्षा यह कहीं ग्रधिक ग्रच्छा होगा यदि बालक एकाग्रचित्त होकर थोड़ी देर ही काम करे।

(१०) सफलता का ज्ञान—यदि बालक को ज्ञान होगा कि उसे कार्य मे सफलता मिल रही है तो उसका उत्साह बढ़ेगा ग्रौर वह उस कार्य को जल्दी सीख लेगा।

(११) ज्ञान ग्रौर क्रिया में सम्बन्ध—यदि बालक के ज्ञान का सम्बन्ध क्रिया के साथ रहेगा तो वह जल्दी सीख लेगा। बुनियादी शिक्षा में भी इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। वहाँ पर बालक जो कुछ भी सीखते हैं, कर के

Q. 36. What is plateau in learning ? What are its Discuss the steps which should be adopted to co plateau stage.

(सीखने की प्रक्रिया में पठार किसे कहते हैं ? इसके में कारण हैं। पठारों पर नियन्त्रण रखने के लिए हमें चाहिए ?)

Q. 37. Write a note on "Plateau in learning" (Agr

("सीखने की प्रक्रिया में पठार," इस विषय पर एक लिखो।) [आगरा

उत्तर—पठार क्या है ?—

विद्यार्थी जब किसी क्रिया को सीखते हैं तो ऐसा देखा जाता है समय तक तो उस क्रिया में पर्याप्त सफलता मिल रही है परन्तु बाद प्रतीत होने लगता है कि गति रुक सी गई है और श्रम का उचित नहीं मिल रहा। कुछ समय तक यही दशा रहती है। इसके पश्चात्, समान ही तथा कभी-कभी उस से भी अधिक गति के साथ उन्न लगती है। उन्नति के इस रुक जाने को ही पठार (Plateau) भौगोलिक शब्दावली में पठार एक ऊँचा-नीचा या विषम-स्थल है प्रकार ऐसा स्थान व्यक्ति की गति को मन्द अथवा अवरुद्ध कर देता ही यह पठार सीखने की गति में अवरोधक सिद्ध होते हैं। इन पठ आना आवश्यक न होते हुए भी स्वाभाविक है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हालिंगवर्थ (Hallingworth) ने अपने ग्रन्थ शिक्षा मनोविज्ञान (Educational Psychology लिखा है—

> "पठारों के कई अर्थ हो सकते हैं। उनका एक अर्थ यह सकता है कि विद्यार्थी ने इस समय उचित श्रम करना बंद कर दि अथवा उसने एक ऐसी प्रणाली को अपनाया है जिस के द्वारा और उन्नति नहीं की जा सकती। उसकी प्रगति के लिए नवीन प्रणा

अपनाया जाना आवश्यक है। बिना उसके उन्नति सम्भव नहीं। पठारों का यह भी अर्थ हो सकता है कि छात्र का उत्साह कम हो गया है अथवा उसकी प्रेरणा की तीव्रता में कमी आगई है। उनका यह अर्थ भी हो सकता है कि उन्नति हो तो रही है, परन्तु कुछ इस प्रकार से हो रही है कि उसको स्पष्ट रूप से मापा नहीं जा सकता।"

इन पठारो के कारण विद्यार्थी उत्साह हीन हो जाते हैं कभी-कभी अध्यापक तथा विद्यार्थियो के माता-पिता भी घबरा जाते हैं। परन्तु इस प्रकार, घबराने की कोई आवश्यकता नही। इन पठारो के द्वारा पूर्वार्जित ज्ञान को हजम (Consolidate) किया जा सकता है। यदि पूर्वार्जित ज्ञान को बिना हजम किए आगे बढ़ेंगे तो बिना पचा ज्ञान आगे चल कर गड़बड़ पैदा कर सकता है। इतना होने पर भी पठारों की पूर्ण उपेक्षा की दृष्टि से देखना उचित नही। अध्यापक को उनके कारणो की खोज-बीन करनी चाहिए।

पठारों के कारण—

इन पठारो के कई कारण हो सकते है। इन मे से कुछ नीचे दिए जा रहे है—

(१) ज्ञानावरोध (Knowledge Limit) ज्ञानावरोध सीखने की वह सीमा है जिस तक कोई व्यक्ति, किसी विशेष प्रणाली का अनुसरण करके पहुँच सकता है। मान लीजिए एक व्यक्ति अक्षरो को देख-देख कर टाइप करता है। एक सीमा तक पहुँच कर उसकी गति रुक जाती क्योंकि वह प्रचलित पद्धति की अधिकतम कुशलता प्राप्त कर चुका है।

(२) क्रिया की जटिलता (Complexity of the Activity)— प्रारम्भ में जो कोई क्रिया सरल होती है परन्तु बाद में वह जटिल तथा कठिन होती जाती है। एक व्यक्ति तार देना (Telegraphy) सीखता है। पहले-पहल तो वह शब्द विन्यास (Spelling) पद्धति को अपनाता है परन्तु बाद में उसे वाक्यांश (Phrase Pattern) पद्धति का प्रयोग करना पड़ता है इसलिए उसकी प्रगति धीमी पड़ जाती है।

(३) उत्साहवरोध (Motivation Limit)—किसी भी क्रिया (Activity) के सम्पादन में उत्साह, प्रयास तथा रुचि की आवश्यकता पड़ती है। जब किसी कारणवश उत्साह कम पड़ जाता है और प्रगति की कोई प्रबल प्रेरणा नहीं रहती तो उन्नति रुक जाती है। प्रारम्भ में तो प्रत्येक कार्य में उत्साह रहता है परन्तु कुछ समय के पश्चात् यदि उत्साह का अभाव हो गया तो प्रगति में अवरोध अवश्य आएगा।

(४) शारीरिक क्षमतावरोध (Physiological Limit)—सीखने में प्रगति की एक ऐसी सीमा भी है जिसका अतिक्रमण उत्साह के बावजूद भी नहीं किया जा सकता। हम में कितना ही उत्साह क्यों न हो, सीखने की श्रेष्ठतम पद्धतियों का अवलम्बन ही क्यों न किया जाए, हम अपनी शारीरिक क्षमता से अधिक उन्नति नहीं कर सकते।

पठारों का नियन्त्रण—

शिक्षक को इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि कब बालकों के सीखने की प्रक्रिया में पठारों का प्रारम्भ हुआ है। पठारों के अतिक्रमण के लिए अध्यापक को नीचे लिखी बातों की ओर ध्यान देना होगा—

(१) प्रेरणा (Motivation)—प्रदान करना प्रारम्भिक जिज्ञासा (Initial curiosity) की समाप्ति पर, इस बात का यत्न किया जाये कि क्रिया (Activity) फिर से रोचक बन जाए।

(२) नई पद्धतियों का प्रयोग—प्रत्येक पद्धति की अपनी एक सीमा होती है। उस सीमा के अनुसार ही सीखने की प्रक्रिया की प्रगति होगी। पठार की अवस्था आजाने के पश्चात् कई बार नई पद्धति का अवलम्बन कर लेने पर सीखने की प्रक्रिया में फिर से उन्नति होने लगती है।

(३) बीच-बीच में आराम—सीखने की प्रक्रिया में, बीच-बीच में आराम (Rest) की व्यवस्था भी होनी चाहिए ताकि विद्यार्थी ने जो कुछ सीखा है, उसे वह पचा सके।

(४) क्रिया में क्रम का होना—(Graded Activity) इस बात का ... कि सीखने की प्रक्रिया में कोई न कोई क्रम अवश्य

हो। किसी भी क्रिया की जटिलताएँ धीरे-धीरे बालकों के सामने लाई जानी चाहिए।

(५) व्यक्तिगत भेदों का ध्यान—व्यक्तिगत भेदों के अनुसार इस बात का निश्चय किया जाना चाहिए कि विद्यार्थी किसी क्रिया के सीखने में प्रतिदिन कितना समय लगाएँ।

Q 38 What do you understand by conditioned learning? How far can this interpretation of learning be useful to a teacher in providing conditions for learning school subjects by children. [Panjab 1956 suppl]

(सम्बन्ध प्रत्यावर्तन द्वारा सीखना—इसका क्या अभिप्राय है? पाठशाला में भिन्न-भिन्न विषयों के अध्यापन में इस विधि का प्रयोग कैसे किया जा सकता है।) [पंजाब १९५६ सप्ली०]

उत्तर—सम्बन्धीकरण क्या है ?—

बार उसने देखा कि भोजन माने से कुछ समय पूर्व ही कुत्ता लार (Saliva) टपकाने लगा। वह यह बात देखकर हैरान हो गया। इस बात की और परीक्षा करने के लिए उसने एक काम और किया। जिस समय कुत्ते को भोजन दिया जाता उस समय घण्टी भी बजायी जाती थी। भोजन और घन्टी दोनों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कुत्ता लार टपकाता था। इस परीक्षण को कई दिन तक दोहराया गया। बाद में देखा गया कि केवल घन्टी की आवाज सुनकर ही कुत्ता लार टपकाने लगता था। घन्टी का बजना और लार का टपकना इनमे परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो गया था। सम्बन्धीकरण (Conditioning) के इस सिद्धान्त को इस प्रकार भी प्रकट किया जा सकता है—

भोजन (उत्तेजक, १)	प्रतिक्रिया लार टपकना
भोजन (उत्तेजक, १) घण्टी बजना (उत्तेजक २)	" " "
घन्टी बजना (उत्तेजक २)	" " "

बालको मे भय, घृणा प्रेम तथा इसी प्रकार की बहुत सी आदतों का कारण यह सम्बन्धीकरण (Conditioning) ही है। इस सम्बन्ध मे आर० एस० वुडवर्थ (R. S Woodworth) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मनोविज्ञान" (Psychology) मे एक परीक्षण (Experiment) दिया है जिससे यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जायगी। एक साल के एक बालक को खरगोश दिखाया गया। खरगोश देखकर बालक बहुत प्रसन्न हुआ और उसे पकड़ने के लिए लपका। जैसे ही वह खरगोश के पास पहुंचा एक जोर का धमाका किया गया। बालक डर कर पीछे हट गया। इस प्रयोग की आवृत्ति कई बार की गई। अन्त मे बालक बिना धमाके की आवाज के भी, खरगोश से डरने लगा।

सम्बन्धीकरण और मानव आचरण—

मनुष्य के आचरण का यदि ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया जाए तो स्पष्ट हो जायगा कि उसके मूल मे सम्बद्ध सहज क्रिया (Conditioned reflex-action) का ही प्रमुख हाथ है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियो के अन्दर पाई जाने

बालों आदतों का निर्माण भी इस सम्बन्धीकरण (Conditioning) के द्वारा ही होता है।

सम्बन्धीकरण और शिक्षा (Conditioned Learning and Education)—

बालकों की शिक्षा में सम्बन्धीकरण की क्रिया के द्वारा काफी लाभ उठाया जा सकता है। शिक्षा में भिन्न-भिन्न विषयों के अध्यापन में जो दृश्य श्रव्य साधनों (Audio Visual aids) का प्रयोग किया जाता है वह भी इसीलिए कि इन साधनों और भिन्न-भिन्न विषयों में सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। सम्बन्धी करण के द्वारा बालकों में अच्छी आदतों का विकास किया जा सकता है, अच्छा अनुशासन स्थापित किया जा सकता है, तथा पाठशाला में अच्छे वातावरण की सृष्टि की जा सकती है।

असम्बन्धीकरण (Deconditioning)—

पैवलाव (Pavlov) ने अपने परीक्षण में इस बात का निरीक्षण किया कि यदि घण्टी बजने पर कुत्ते को भोजन न दिया जाए तो कुछ दिन के बाद उसकी लार टपकनी बन्द हो जाएगी तथा घण्टी का बजना और लार का टपकना इनके जो सम्बन्ध स्थापित हुआ है, वह कमजोर पड़ जाएगा। इस क्रिया को असम्बन्धी करण (Deconditioning) कहा जाता है। असम्बन्धीकरण के द्वारा बालकों की बुरी आदतों को तोड़ा जा सकता है।

शिक्षा का संक्रमण
(Transfer of Training)

39. What is your view of regarding the theory of trans-
aining ? Explain clearly what elements can be transferred
at conditions are favourable for transfer.

[Punjab 1952, 1953 Suppl., Agra 1956, 1960]

क्षा के संक्रमण के सम्बन्ध मे आपके क्या विचार है ? स्पष्ट
किन तत्वों का संक्रमण होता है और कौन सी परिस्थितियाँ
के लिए सुविधाजनक हैं।)

[पंजाब १९५२, १९५३ सप्ली०, आगरा १९५५, १९६०]

) Discuss the educational implications of the experim
ding of transfer of training.

[Calcutta 1953, Banaras 1954, Punjab 1955 Suppl]

शिक्षा-संक्रमण सम्बन्धी जो परीक्षण हुए हैं, उनका उल्लेख
(स्पष्ट करो कि इस का शिक्षा सम्बन्धी महत्व क्या है ?)

[कलकत्ता १९५३, बनारस १९५४, पंजाब १९५५ सप्ली०]

शिक्षा-संक्रमण क्या है ?—

ा संक्रमण (Transfer of Training) का अर्थ है कि हम एक
में जो कुछ सीखते हैं उसका उपयोग अन्य परिस्थितियों में भी
। बालक पाठशाला में अर्जित करते हैं। बाद में उन्हें किसी दूसरा

पर कुछ खरीदने के लिए भेजा जाता है। अब वे पाठशाला मे पढ़े हुए गणित का उपयोग दुकान पर वस्तुएँ खरीदते समय भी करते हैं। इसी प्रकार हम देखते हैं कि जिस व्यक्ति ने अंग्रेजी टाइप राईटर (Typewriter) पर टाइप करना सीख लिया है, वह हिन्दी टाईप राईटर पर टाइप करना जल्दी सीख लेगा। इन सब बातो से पता चलता है कि किसी न किसी रूप मे शिक्षा सक्रमित हुआ करती है।

शिक्षा-संक्रमण के सिद्धान्त का जन्म—

शिक्षा-संक्रमण के सिद्धान्त के उद्भव का श्रेय शक्ति मनोविज्ञान (Faculty Psychology) के विद्वानो को दिया जा सकता है। उनके विचारानुसार मानव मन तर्क, इच्छा, अवधान, स्मृति, कल्पना इत्यादि कई स्वतन्त्र शक्तियो का समूह मात्र है। इन शक्तियो का आपस मे कोई सम्बन्ध नही। ऐसा कहा गया कि जिस व्यक्ति की स्मृति एक विषय मे तेज है, उस की स्मृति दूसरे विषयो मे भी तेज ही होगी। इस सिद्धान्त के आधार पर शक्ति मनोविज्ञान के विद्वानो ने भिन्न-भिन्न विषयो की उपयोगिता घोषित कर दी और कहा कि इन विषयों से कुछ विशिष्ट शक्तियो का विकास हो सकता है। उदाहरणस्वरूप यह कहा गया कि गणित से तर्क शक्ति बढ़ती है, साहित्य से कल्पना का विकास होता है तथा पुरानी भाषाओ (Classical Languages) जैसे सस्कृत, ग्रीक लेटिन इत्यादि से स्मृति तीव्र होती है। यदि इन विषयो के अध्ययन से व्यक्ति की ये शक्तियाँ परिपुष्ट हो जाएँगी तो इन का उपयोग अन्य स्थानो पर भी हो सकेगा।

शिक्षा संक्रमण के प्रकार—

शिक्षा संक्रमण तीन प्रकार का होता है—

(i) अनुकूल सक्रमण (Positive Transfer)

(ii) प्रतिकूल संक्रमण (Negative Transfer)

(iii) द्विपार्श्व संक्रमण (Bilateral Transfer)

(१) अनुकूल संक्रमण (Positive Transfer)—जब किसी एक क्रिया का अभ्यास किया जाता है तब उसका लाभ अन्य क्रियाओं में भी होता

है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि यदि कोई व्यक्ति अंग्रेजी राईटर पर अच्छी प्रकार से टाइप करना सीख लेता है तो वह हिन्दी के राईटर पर टाइप करना जल्दी सीख लेगा। इस प्रकार के संक्रमण अनुकूल संक्रमण (Positive Transfer) कहा जाता है।

अनुकूल संक्रमण सम्बन्धी परीक्षण—

स्लेट (Slate) ने स्मृति (Memory) सम्बन्धी एक परी (Experiment) किया। उसने कुछ महिलाओं को चार टोलियों में प्रकार विभक्त किया—

(i) प्रथम टोली नियन्त्रण टोली (Control Group) थी— किसी प्रकार का अभ्यास नहीं दिया गया।

(ii) दूसरी टोली—इसे ३० मिनट प्रतिदिन कविता कंठाग्र करने अभ्यास १२ दिन तक कराया गया।

(iii) तीसरी टोली—इसे ३० मिनट प्रतिदिन अंकों की तालिकाएँ दिन तक याद करने के लिए दी गईं।

(iv) चौथी टोली—यह ३० मिनट प्रतिदिन के हिसाब से १२ दिन वैज्ञानिक, एतिहासिक तथा वर्णनात्मक गद्य सुन-सुन कर याद करती रही

परिणाम (Results)—नियन्त्रण टोली (Control Group) तीनों अभ्यास टोलियों (Experimental groups) की तुलना की ग जिसके नीचे लिखे परिणाम निकले—

(i) प्रत्येक टोली ने संक्रमण दिखाया परन्तु यह संक्रमण केवल उस दिशा में हुआ जिसमें उन्होंने अभ्यास किया।

(ii) एक विषय के अभ्यास का दूसरे विषय के सीखने में संक्रमण कभी अनुकूल सिद्ध हुआ, कभी प्रतिकूल।

(iii) कविता याद करने का अभ्यास तालिकाओं को अविकल याद करने में थोड़ा सहायक सिद्ध हुआ।

(२) प्रतिकूल संक्रमण (Negative Transfer) जब एक क्रिया का अभ्यास दूसरी क्रिया के अभ्यास में बाधक सिद्ध होता है तो ऐसा कहा जाता

है कि शिक्षा का प्रभाव प्रतिकूल दिशा में हो रहा है। इसे मनोवैज्ञानिक शब्दावली मे प्रतिकूल संक्रमण (Negative Transfer) कहा जाएगा।

प्रतिकूल संक्रमण सम्बन्धी परीक्षण—

अंकों मे छपा हुआ एक कागज कुछ बालकों को दिया गया। फिर उनसे कहा गया कि इसमें जहाँ-जहाँ ३ और ४ अंक हैं, उन्हें पेन्सिल से काटते जाओ। काफी अभ्यास के बाद ७ और ८ को काटने की परीक्षा ली गई।

परिणाम (Result)—अभ्यास टोली (Experimental Group) की गति नियन्त्रण टोली (Control Group) से कम हो गई। यद्यपि अभ्यास करने से पूर्व दोनों की गति प्रायः समान थी।

(१) द्विपार्श्व संक्रमण (Biluteral Transfer)—जब हम अपने शरीर के किसी अंग से किसी क्रिया को करने का अभ्यास करते हैं और शरीर के किसी दूसरे भाग से भी, बिना किसी विशेष अभ्यास के होने लगती है तो उसे द्विपार्श्व संक्रमण (Biluteral Transfer) कहते हैं।

प्राय. ऐसा देखा जाता है कि यदि हम दाहिने हाथ से किसी क्रिया का अभ्यास करते हैं तो अक्सर बायें हाथ से भी उस क्रिया को बिना किसी अभ्यास के करने लगते हैं। दर्पण में देख कर ड्राइंग बनाना (Mirror Drawing), मेज पर जल्दी-जल्दी थपकी देना आदि इसी प्रकार की क्रियाएँ हैं जहाँ द्विपार्श्व संक्रमण पाया जाता है। कभी-कभी संक्रमण की मात्रा बहुत कम होती है परन्तु कभी-कभी यह ५० प्रतिशत तक भी पहुँच जाती है।

शिक्षा संक्रमण के सिद्धान्त (Theories of Transfer of Training)—

अध्यापक के लिए यह जानना आवश्यक है कि संक्रमण किस प्रकार होता है। इस सम्बन्ध में कुछ मुख्य मुख्य सिद्धान्त नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) समान तत्त्व सिद्धान्त (Theory of Identical Elements)—इस सिद्धान्त के निर्माता थार्नडाईक (Thorndike) थे। हम अपने दैनिक जीवन में इस बात का अनुभव करते हैं कि जब दो कार्यों में कुछ समानता होती है तब एक कार्य के ज्ञान दूसरे कार्य में संक्रमित हो

जाता है। यदि एक व्यक्ति मोटर चलाना जानता है तो वह ट्रैक्टर चलाने में भी निपुणता प्राप्त कर लेगा क्योंकि दोनों कार्यों में समानता है।

(२) स्पीयरमैन का सामान्य तथा विशिष्ट अंश का सिद्धान्त (Spearman's two Factor Theory)—स्पीयरमैन ने बुद्धि को दो भागों में बांटा है। पहला सामान्य (G) तथा दूसरा विशिष्ट (S)। प्रत्येक कार्य में दोनों प्रकार की बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। सामान्य बुद्धि (General intelligence) का प्रयोग जीवन के प्रत्येक कार्य में होता है परन्तु विशिष्ट (Specific) बुद्धि का प्रयोग किसी विशेष कार्य के लिए ही होता है। इतिहास, भूगोल आदि विषयों का सम्बन्ध सामान्य योग्यता से है परन्तु संगीत, चित्रकला आदि विषयों का सम्बन्ध विशेष योग्यता से है। स्पीयरमैन (Spearmen) के मतानुसार सामान्य योग्यता ('G' factor) का संक्रमण तो एक विषय से दूसरे विषय में हो जाता है परन्तु विशिष्ट योग्यता ('S' factor) का नहीं।

(३) जड का सामान्य का सिद्धान्त (Judd's Theory of Generalization)—जड (Judd) के मत के अनुसार जब हम किसी कार्य के सिद्धान्तों को भली-भान्ति समझ जाते हैं और सामान्य सिद्धान्त बना लेते हैं, तभी हम एक कार्य में प्राप्त अनुभवों को दूसरे कार्यों में भी संक्रमित कर लेते हैं। जड के विचार में बालकों की शिक्षा में पाठ्य-विषय का इतना महत्व नहीं जितना इस बात का कि उन्हे सिद्धान्त का ज्ञान कराया जाए।

शिक्षा संक्रमण और अध्यापक—

अध्यापक को इस बात का यत्न करना चाहिए कि बालकों को शिक्षा इस प्रकार से दी जाए कि एक क्रिया (Activity) द्वारा प्राप्त ज्ञान का लाभ दूसरी क्रियाओं में भी उठाया जा सके। उसके लिए इन बातों का ध्यान होगा—

(१) जो भी पढ़ाया जाए उसे सुस्पष्ट कर दिया जाए।
(२) पढ़ाते समय सिद्धान्त निरूपण (Generalization) कराते रहिए।

(३) समवायी पद्धति (Correlation) द्वारा शिक्षा दी जाए।

(४) एक क्रिया की दूसरी क्रिया के साथ तुलना की जाए।

(५) पढ़ाते समय शिक्षा के दृश्य-श्रव्य (Audio Visual Aids) साधनों का प्रयोग किया जाए।

(६) पाठ्य वस्तु के प्रति बालकों की रुचि उत्पन्न की जाए।

Q. 45. What are the most economical methods of memorizing ? How can a teacher make their use effective in learning of the children ? [Agra 1951 Punjab 1956 supply Bararas 1959]

(स्मरण करने के सबसे सरल उपाय कौन से हैं ? बालकों के प्रशिक्षण में अध्यापक उनका प्रयोग किस ढंग से कर सकता है ?)

[आगरा १९५१, पंजाब १९५६ सप्लीο, बनारस १९५९]

उत्तर—स्मृति क्या है ?—

हमारे मन मे अनुभवो को संचित कर रखने की शक्ति होती है। सम्पूर्ण अनुभव अपने वास्तविक रूप में संचित नही रह सकते। उनका संस्कार मात्र ही शेष रह जाता है। नन (Nunn) के मतानुसार हमारे मन मे अनुभवो को संचित कर रखने वाली यह शक्ति जब चेतना से युक्त होती है तब हम उसे स्मृति कहते हैं। वुडवर्थ (Woodworth) के अनुसार स्मृति मन की वह शक्ति है जिसके द्वारा हम पहले सीखी हुई बात का स्मरण करते हैं और उसे अपने अन्दर धारण करते हैं। स्टाउट (Stout) का कथन है कि स्मृति पुराने विचारो को फिर से जागृत करने, सजीव करने तथा स्मरण करने की एक मानसिक क्रिया (Mental Disposition) है।

स्मृति के अंग (Factors of Memory)

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों के अनुसार स्मृति के चार प्रमुख अंग माने जा सकते हैं—

(i) याद करना (Memorizing or Remembering)
(ii) संचय (Retention)
(iii) स्मरण (Recall)
(iv) पहचान (Recognition)

(i) याद करना—किसी बात को याद रखने के लिए विशेष मानसिक परिस्थिति और ढंग की आवश्यकता होती है। याद करने के लिए ध्यान की एकाग्रता की आवश्यकता होती है। ध्यान की एकाग्रता के लिए हमें निम्नलिखित बातों पर विचार करना होगा—

(ग) अनुभवों में रोचकता का होना (Interest)

(घ) भिन्न अनुभवों का सम्बन्धित होना (Association)

(iii) स्मरण (Recall)—बालक के मन पर जो संस्कार अंकित हो जाते हैं, उन्हें फिर से चेतना में लाना स्मरण (Recall) कहलाता है। संस्कारों को ग्रहण करने की शक्ति बालकों में पर्याप्त मात्रा में होती है, परन्तु उनके स्मरण करने की शक्ति परिमित होती है। बालक के मन पर जो बातें अंकित हो जाती हैं, हो सकता है कि वे उसे तुरन्त याद न आवें परन्तु कालान्तर में वे उसे याद आ सकती हैं। संस्कारों का स्मरण उनकी उत्तेजना पर निर्भर करता है। जिन अनुभवों का सम्बन्ध बालकों ने अपने पुराने अनुभवों के साथ कर लिया है, वे सरलता से उत्तेजित किए जा सकते हैं।

(iv) पहचान (Recognition)—यह स्मृति का चौथा अंग है। इसका आधार भी पुराने संस्कारों का मन में स्थिर रहना है। जिस व्यक्ति को हमने दो तीन बार देखा होता है, उसे तुरन्त पहचान लेते हैं। कई बार अध्यापक अपने विद्यार्थियों को देखने पर पहचान तो लेते हैं परन्तु उनके नामों को स्मरण नहीं कर पाते। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि बालकों की पहचानने की शक्ति उनकी स्मरण शक्ति से अधिक होती है। पहचानने की शक्ति और स्मरण शक्ति इनका परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है। प्रयोगों के अनुसार दोनों में ८८ प्रतिशत का सह-सम्बन्ध (Correlation) होता है।

अच्छी स्मृति की विशेषताएँ—

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए अच्छी स्मृति का होना आवश्यक है। विद्वानों के मतानुसार अच्छी स्मृति की चार विशेषताएँ हैं—

(क) जल्दी याद हो जाना।

(ख) देर तक मस्तिष्क में ठहरना।

(ग) समय पर स्मरण हो जाना।

(घ) व्यर्थ की बातों को भूल जाना।

... के सहारे जल्दी ही ... नए पाठ को याद कर लेते हैं। ... में कोई ... नहीं ठहर सकती। इसलिए किसी भी ... पढ़ाना उचित है।

) आवृत्ति करना—जिस बात की आवृत्ति जित... ने गहरे संस्कार मस्तिष्क पर पड़ेंगे। बालकों ... ध्यान रखा जाए कि पाठ की मुख्य बातें उन... जाएं।

विषय को रोचक बनाना—जो बात बालक को रुचिकर लगगा, ... जल्दी ही याद कर लेगा। इसलिए पाठ में रुचि बढ़ाने के लिए सभी ... काम मे लाना चाहिए।

क्रिया से सम्बन्ध स्थापित करना—जब सीखी जाने वाली बात ... किसी न किसी क्रिया (Activity) से कर दिया जाता है तो ... बात को बहुत जल्दी सीख जाता है। बुनियादी शिक्षा की वार्धा ... (Wardha Scheme) मे इस बात का विशेष ध्यान रखा ...

संचय (Retention)—मन की उस शक्ति को हम संचय कह... सके कारण कोई भी संस्कार मन मे ठहरते हैं। यह जन्मजात शक्ति ... मे कोई परिवर्तन नही किया जा सकता। संचय शक्ति की वृद्धि ... अवस्था की वृद्धि के साथ-साथ होती है। यह शक्ति बारह वर्ष ... तक धीरे-धीरे बढ़ती है। बारह से सोलह वर्ष तक, इस शक्ति ... वेग बहुत बढ़ जाता है। सोलह से पच्चीस वर्ष की अवस्था तक ... कर धीरे-धीरे बढ़ती है। इस अवस्था के पश्चात इसमें कोई ... होती। किसी भी संस्कार को ... ना आवश्यक है—

... नुभवों का सभी

... नुभवों का

सके। याद करने की यह क्रिया बिना समझे बूझे ही की जाती है। इस प्रकार के विद्यार्थी जब बोलते-बोलते अथवा लिखते-लिखते सन्देह, घबराहट अथवा किसी और कारण से रुक जाते हैं, तो उनके विचारों का क्रम टूट जाता है और वे आगे कुछ भी नहीं सोच पाते। रटी हुई बात का कोई स्थायी महत्व नहीं क्योंकि यह जल्दी ही भूल जाती है। यह सीखने की अच्छी विधि नहीं है। स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। कई बार विद्यार्थी, अध्यापक के भय से किसी बात को, बिना समझे बूझे ही रट लेते हैं। जो बात बिना समझे याद की जाएगी वह संस्कार रूप में मस्तिष्क पर अंकित नहीं हो सकती इसलिए पाठशालाओं में इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि शिक्षार्थी किसी बात को रटने की बजाए समझ कर याद करने का प्रयास करें।

स्मरण-शक्ति में व्यक्तिगत भेद—

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न बालकों का रूप रंग आदि अलग-अलग होता है उसी प्रकार उनकी स्मरण-शक्ति में भी अन्तर होता है। इन व्यक्तिगत भेदों के मूल में निम्नलिखित बातें होती हैं—

(i) वंशानुक्रम (ii) स्वास्थ्य (iii) आयु
(iv) स्वभाव इत्यादि

बालकों और व्यस्कों की स्मरण शक्ति में बहुत अन्तर होता है। आधुनिक प्रयोगों के आधार पर कहा जा सकता है कि स्मरण शक्ति २५ वर्ष की अवस्था तक बढ़ती है। वृद्ध अवस्था में तो यह शक्ति बहुत कम हो जाती है। इसके कई कारण हो सकते हैं पहला कारण यह है कि बालकों के मस्तिष्क में ताजगी (Freshness) होने के कारण वे किसी बात को जल्दी ग्रहण कर सकते हैं। दूसरा प्रमुख कारण यह है कि बालकों का स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अच्छा होता है। और अन्तिम कारण के रूप में हम कह सकते हैं कि जैसे-जैसे व्यक्ति परिपक्व अवस्था की ओर बढ़ता है, वैसे-वैसे उसकी रुचियाँ भिन्न-भिन्न विषयों की ओर बढ़ती जाती हैं और वह बालक के समान किसी एक विषय पर एकाग्र चित्त होकर ध्यान नहीं दे सकता।

ती है, वह किसी भी बात को बहुत जल्दी याद कर लेता है। जिस
कोई बात बार-बार भूल जाती है, वह जीवन मे कोई बहुत उपयोगी
कर सकता। संस्कृति साहित्य में ऐसी कितनी कथाएँ मिलती हैं
ुसार कई व्यक्ति किसी कविता या छन्द को एक बार सुनकर ही
लेते थे।

क मस्तिष्क में ठहरना (Length of Time)—अच्छी स्मृति
सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कोई भी बात देर तक याद रहती
ानिको के मतानुसार किसी बात का देर तक मस्तिष्क मे रहना
र निर्भर करता है एक व्यक्ति की मानसिक बनावट तथा दूसरे
ो बार बार सोचना। जिस बात के विषय में हम जितना अधिक
नी अधिक वह याद रहेगी।

पर स्मरण होना (Promptness)—प्रायः ऐसा देखा जाता है
परीक्षा से पहले बहुत सी बातें याद करते हैं परन्तु परीक्षा भवन
उत्तर देते समय, उन्हें भूल जाते हैं। यह अच्छी स्मृति का
। अच्छी स्मृति के लिए यह आवश्यक है कि हमें ठीक समय पर
हो जाएँ।

ी बातों को भूलना—जीवन मे हमें अनेको अनुभव होते हैं।
के आधार पर हम कई बातें सीखते हैं। जीवन मे सफलता प्राप्त
ह जहाँ उपयोगी बातो को याद रखना आवश्यक है, वहाँ
तों को भूल जाना भी। मानसिक रोगियो के सम्बन्ध मे यह प्रायः
ह कि वे अप्रिय बातो को बार-बार याद करते हैं, इससे उनकी
भी बढ़ जाती है। और मन मे और कोई बात टिकती ही नहीं।
ित बातों को भूल जाना ही अच्छा है।

करना (Cramming)—
ाद करने में विद्यार्थी कुछ तथ्यों को बार-बार बोलकर याद
न करते हैं ताकि निश्चित समय पर उनका स्मरण किया जा

सके। याद करने की यह क्रिया बिना समझे बूझे ही की जाती है। इस प्रकार के विद्यार्थी जब बोलते-बोलते अथवा लिखते-लिखते सन्देह, घबराहट अथवा किसी और कारण से रुक जाते हैं, तो उनके विचारों का क्रम टूट जाता है और वे आगे कुछ भी नहीं सोच पाते। रटी हुई बात का कोई स्थायी महत्व नहीं क्योंकि यह जल्दी ही भूल जाती है। यह सीखने की अच्छी विधि नहीं है। स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। कई बार विद्यार्थी, अध्यापक के भय से किसी बात को, बिना समझे बूझे ही रट लेते हैं। जो बात बिना समझे याद की जाएगी वह संस्कार रूप में मस्तिष्क पर अंकित नहीं हो सकती इसलिए पाठशालाओं में इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि विद्यार्थी किसी बात को रटने की बजाए समझ कर याद करने का प्रयास करें।

स्मरण-शक्ति में व्यक्तिगत भेद—

जिस प्रकार भिन्न-भिन्न बालकों का रूप रंग आदि अलग-अलग होता है उसी प्रकार उनकी स्मरण-शक्ति में भी अन्तर होता है। इन व्यक्तिगत भेदों के मूल में निम्नलिखित बातें होती हैं—

(i) वंशानुक्रम (ii) स्वास्थ्य (iii) आयु

(iv) स्वभाव इत्यादि

बालकों और व्यस्कों की स्मरण शक्ति में बहुत अन्तर होता है। आधुनिक प्रयोगों के आधार पर कहा जा सकता है कि स्मरण शक्ति २५ वर्ष की अवस्था तक बढ़ती है। वृद्ध अवस्था में तो यह शक्ति बहुत कम हो जाती है। इसके कई कारण हो सकते हैं पहला कारण यह है कि बच्चों के मस्तिष्क में ताजगी (Freshness) होने के कारण वे किसी [illegible] यह है कि [illegible] कारण [illegible]

पाठ याद करने की विधियाँ (Methods of Memorizing)—

(१) खण्ड तथा समग्र विधि (Part verses whole Metho
किसी भी पाठ को याद करने की दो विधियाँ हैं—(i) उसको अलग-अ
भागों में विभाजित करके याद करना (ii) सम्पूर्ण पाठ को एक साथ या
करना। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध करने
यास किया है कि किसी पाठ को याद करने के लिए समग्र विधि अधि
पयोगी है। परन्तु वुडवर्थ (Woodworth) ने परीक्षणों के आधा
र सिद्ध किया है कि खण्ड विधि अधिक सरल तथा सुविधाजनक है। वास्त
दोनों विधियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। जहाँ पाठ बहुत लम्बा न
वहाँ समग्र विधि का प्रयोग करना चाहिए परन्तु जहाँ पाठ बहुत लम्बा
वहाँ दोनों विधियों का प्रयोग होना चाहिए।

(२) बीच-बीच में विश्राम लेकर याद करना (Spaced Repetit-
)—भिन्न-भिन्न परीक्षणों के आधार पर कहा जा सकता है कि सीखी हुई
को याद करने के लिए बीच-बीच में विश्राम ले लेने से वह बा
क में और अच्छी प्रकार से बैठ जाएगी। यदि किसी कविता को
द करना है तो एक दिन में आठ बार पढ़ने की बजाए यह अधिक अच्छा
कि उसे आठ दिन में एक-एक बार पढ़ा जाए।

३) मुख्य बातों से सम्बन्ध जोड़कर याद करना (Association of
)—बालकों द्वारा पाठ पढ़ लेने के पश्चात् अध्यापक को चाहिए कि
त्रों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करे कि वे पाठ के मुख्य प्रसंग
निकालें और पाठ की अन्य बातों का सम्बन्ध, उन मुख्य प्रसंग से
उनके याद करने में सुविधा तथा सरलता होगी।

) क्रिया द्वारा ज्ञानार्जन (Learning by Doing)—जब बालक
तु को किसी न किसी क्रिया द्वारा (Activity) सीखते हैं तो
की ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं, इसलिए वह बात उनके मस्तिष्क में
र से बैठ जाती है।

जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, हम किसी सीखी हुई बात को भूलते जाते हैं जैसा कि समय बीतने पर धीरे-धीरे घाव भरते जाते हैं। परन्तु वास्तविक कारण यह नहीं है। जब कोई नई बात सीखते हैं तो धीरे-धीरे पुराने संस्कार शिथिल पड़ते जाते हैं और यह स्वाभाविक भी है अन्यथा कोई नई बात सीख ही न सकेंगे।

(२) संवेगात्मक असन्तुलन (Emotional Disturbance)—कभी कभी संवेगात्मक सन्तुलन के न होने पर भी हम भूलने लगते हैं। अधिक भय, चिन्ता, शर्मीलापन (Shyness) क्रोध, घबराहट (Nervousness) इत्यादि कई ऐसी बातें हैं जो हमारा मानसिक सन्तुलन बिगाड़ देती हैं और हम पग-पग पर भूलने लगते हैं।

(३) थकावट (Fatigue)—प्रायः देखा जाता है कि बहुत थकावट की हालत मे हम शक्ति (Energy) की कमी का अनुभव करते हैं। इस का प्रभाव हमारे मन पर भी पड़ता है। ऐसी स्थिति मे भूलना स्वाभाविक ही है।

साधारण तथा असाधारण विस्मृति (Normal and Abnormal Forgetting)—

साधारण विस्मृति—मनोवैज्ञानिकों ने साधारण तथा असाधारण दो प्रकार की विस्मृति का उल्लेख किया है। ऊपर जो विस्मृति के अनेकों कारण दिए गए हैं वे साधारण विस्मृति के अन्तर्गत ही आते हैं। यहां पर व्यक्ति भूलना नहीं चाहता परन्तु फिर भी भूल जाता है।

असाधारण विस्मृति—मनोविश्लेषणवादियों ने एक अन्य प्रकार की विस्मृति का उल्लेख किया है जिसे असाधारण विस्मृति (Morbid Forgetfulness) का नाम दिया गया है। कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि व्यक्ति अपने जीवन मे घटित दुखद अनुभवों को भूल जाना चाहता है। इसीलिए तो फ्रायड (Freud) ने एक स्थान पर कहा है—

> "Forgetting is a tendency to ward off from memory that which is unpleasant."

११

अवधान और रुचि

(Attention and Interest)

Q 49. What do you understand by attention ? What is its relationship with interest ? What steps should the teacher take to ensure attention in the classroom ?

[Agra 1960, L. T. 1951 Punjab 1953, 1954]

(अवधान से आपका क्या तात्पर्य है ? अवधान और रुचि, इन का आपस में क्या सम्बन्ध है ? कक्षा-गृह में बालकों का अवधान स्थिर रखने के लिए, अध्यापक को कौन-कौन से उपाय काम में लाने चाहिए ?)

[आगरा १९६०, एल० टी०, १९५१, पंजाब १९५३, १९५४]

Q 50. What are the favourable condtions for securing and maintaining interestı and attention in the class ? How would you deal with a child who finds no interest in school subjects.

[Punjab 1948, 1951]

(कक्षा में अवधान और रुचि बनाए रखने के लिए कौन सी परिस्थितियाँ सहायक सिद्ध होंगी ? जिस बालक की रुचि पाठ्य-विषयों में नहीं, उसके साथ आप कैसा व्यवहार करेंगे ?)

[पंजाब १९४८, १९५१]

Q 51. What are the various causes of inattention ?

[Agra 1951, Sagar 1952]

११

अवधान और रुचि

(Attention and Interest)

Q 49. What do you understand by attention ? What is its relationship with interest ? What steps should the teacher take to ensure attention in the classroom ?

[Agra 1960, L. T. 1951 Punjab 1953, 1954]

(अवधान से आपका क्या तात्पर्य है ? अवधान और रुचि, इन का आपस में क्या सम्बन्ध है ? कक्षा-गृह में बालकों का अवधान स्थिर रखने के लिए, अध्यापक को कौन-कौन से उपाय काम में लाने चाहिए ?)

[आगरा १९६०, एल० टी०, १९५१, पंजाब १९५३, १९५४]

Q 50 What are the favourable condtions for securing and maintaining interesti and attention in the class ? How would you deal with a child who finds no interest in school subjects.

[Punjab 1948, 1951]

(कक्षा में अवधान और रुचि बनाए रखने के लिए कौन सी परिस्थितियाँ सहायक सिद्ध होंगी ? जिस बालक की रुचि पाठ्य-विषयों में नहीं, उसके साथ आप कैसा व्यवहार करेंगे ?)

[पंजाब १९४८, १९५१]

Q 51. What are the various causes of inattention ?

[Agra 1951, Sagar 1952]

अवधान मे विघ्न पड़ने के कारणों की चर्चा करो ?)

[आगरा १६५१, सागर १६५२]

2. Describe briefly some of the methods of developing s power of attention and show how far you consider chologically satisfactory. [Rajasthan 1953, Agra 1.
ऐसे उपायों का वर्णन करो जिन के द्वारा बालकों के अवध
ा विकास हो सके। इस बात की भी चर्चा करो कि
वैज्ञानिक दृष्टि से कहाँ तक उचित हैं।)

न क्या है ?— (राजस्थान १६५२, आगरा १६

र ध्यान को केन्द्रित करने वाली जो शक्ति रहती है,
tention) कहते हैं। शक्ति-मनोविज्ञान (Facult
) मे विश्वास करने वाले मन को विभिन्न स्वतन्त्र मानसिक
य माना करते थे। वे अवधान को भी एक मानसिक शक्ति
उनके मतानुसार हम अवधान की शक्ति का किसी भी
सकते हैं। जिस प्रकार अपने पास धन होने पर उसका
तु के लिए किया जा सकता है। इसी प्रकार अवधान को
आदि विषयो, हॉकी, फुटबाल आदि खेलो अथवा किन्ही
जा सकता है। यदि किसी विषय की ओर हमारा
उसके लिए उत्तरदायी भी हम ही हैं। परन्तु आधुनिक
की इस व्याख्या को स्वीकार नही करते। मैकडूगल
शब्दो में "अवधान केवल उस इच्छा या चेष्टा
ते हैं जिसका प्रभाव हमारी ज्ञान-प्रक्रिया (Cogni-
ड़ता है।" दूसरे शब्दो मे क्रिया अथवा चेष्टा का
कहलाता है।

ब्दों का प्रयोग संकुचित अर्थों में किया जाता है।
रूप मे लेते हैं। यह ठीक है कि जिस वस्तु मे

हमारी रुचि होती है, वह हमें अच्छी भी लगती है परन्तु सर्वदा ऐसा नहीं होता हमारा एक घनिष्ट मित्र है, वह बीमार पड जाता है। हमारी उसमे रुचि है। हम उसका हाल जानना चाहते हैं। वहाँ हमारा मनोरंजन से कोई सम्बन्ध नही। यहाँ रुचि शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थों मे किया गया है। किसी विषय अथवा वस्तु से अपने को सम्बन्धित करना, उस मे रुचि रखना कहलाता है।

रुचि दो प्रकार की होती है—पहली जन्मजात तथा दूसरी अर्जित। जन्मजात रुचि में हमारी मूल प्रवृत्तियाँ तथा अन्य सामान्य प्रवृत्तियाँ आती हैं, जो कुछ विशेष वस्तुओ मे हमारी रुचि उत्पन्न कर देती हैं। अर्जित रुचि का सम्बन्ध कुछ विशिष्ट उत्तेजनाओ से है जो ध्यान को आकर्षित करती हैं।

अवधान और रुचि का सम्बन्ध—

जिन वस्तुओ मे हमारी रुचि होती है, उन्ही मे अवधान स्थिर होता है। अन्य बातो की ओर हमारा थोड़ा सा भी ध्यान नहीं जाता। ऐसी वस्तुएँ प्राय: उपेक्षा का विषय बन जाती हैं। इसलिए हम जिन वस्तुओ पर बालको का ध्यान आकर्षित करना चाहे, उन्हें उनके सामने इस रूप में रखा जाए कि वे उनकी जन्मजात अथवा अर्जित रुचियों का अंग बन जाएँ। मूल-प्रवृत्तियो, आदतों तथा स्थायी-भावों आदि के द्वारा बालको की रुचियो का विकास होता है और अवधान के मूल मे इन रुचियो का बहुत बड़ा हाथ है।

अवधान के उपकरण—

अवधान के उपकरण दो प्रकार के होते हैं—पहले बाहरी तथा दूसरे आन्तरिक (External and Internal)। ऊपर रुचि की चर्चा करते समय मूल-प्रवृत्तियो, स्थायीभावो तथा आदतो आदि जिन उपकरणों का उल्लेख किया गया है, वे सब आन्तरिक (Internal) उपकरणों के अन्तर्गत आते हैं। अवधान के बाहरी (External) उपकरण नीचे दिए जा रहे है—

(१) उत्तेजना की प्रबलता (Intensity of Stimulus)—जो वस्तुएं हमारी ज्ञानेन्द्रियों को जितना अधिक उत्तेजित करेंगी, वे हमारे अवधान को भी उतना अधिक आकर्षित करेंगी। उदाहरण स्वरूप ज़ोर का धमाका, चमकता हुआ प्रकाश, रंग-बिरंगी वस्तु, इन की ओर हमारा ध्यान झट चला जाएगा। धीमी आवाज़, हल्का रंग, मन्द प्रकाश इन की ओर हमारा ध्यान जल्दी से नहीं जाएगा। अध्यापक को कक्षा में पढ़ाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह जो कुछ भी बोले, ऊँचे स्वर में बोले तथा प्रदर्शन सामग्री में रंगीन चित्रों का ही अधिक प्रयोग करे।

(२) परिवर्तन शीलता (Change)—स्टाउट (Stout) के अनु-ार, उत्तेजना की प्रबलता से भी अधिक ध्यान को आकर्षित करने वाली स्तु, उत्तेजना में घटित होने वाला परिवर्तन है। यदि कोई व्यक्ति ज़ोर-ज़ोर चिल्ला रहा है और फिर एकाएक धीमे स्वर में कुछ कहना शुरू कर दे ो यह धीमी आवाज हमारे ध्यान को आकृष्ट कर लेगी। अध्यापक को ाहिए कि वह एक विषय को कई प्रकार से पढ़ावे जैसे कभी बोल कर, कभी लखकर कभी प्रश्न पूछ कर तथा कभी दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग करके।

(३) नवीनता (Novelty)—नए-नए पदार्थ हमारे ध्यान को जल्दी ाकर्षित करते हैं। पहले जब कोई धमाका सुनते हैं तो हमारा ध्यान उधर ला जाता है परन्तु बार-बार धमाका होने पर हमारा ध्यान उधर नहीं एगा। बालकों को पढ़ाते समय इस बात का ध्यान रखा जाए कि अध्यापक ठ को इस ढंग से पढ़ाए कि बालकों को उस में कुछ न कुछ नवीनता तीत हो।

(४) विस्तार (Size)—उत्तेजना का विस्तार या बड़ा होना भी वधान को आकर्षित करता है। एक बृहदाकार वस्तु हमारे ध्यान को झट कर्षित कर लेती है। स्टाउट (Stout) के शब्दों में एक छोटा मोटा ा भले ही हमारा ध्यान आकर्षित न करे परन्तु समुद्र को बिना देखे हम ी रह सकते। इसलिए कहा गया है कि बालकों को जो प्रदर्शन सामग्री खाई जाए, उसका आकार बड़ा होना चाहिए।

(५) विपरीतता (Contrast)—वैपरीत्य भी हमारा ध्यान झट आकर्षित करता है। पाठशाला में नया अध्यापक, काले हबशियों में सफेद रंग का यूरोपीय, श्यामपट पर सफेद खड़िया से लिखने के पश्चात, नीली खड़िया से लिखा कोई शब्द, हमारा ध्यान झट आकर्षित कर लेगा। इस नियम को ध्यान में रखते हुए अध्यापक को पढ़ाते समय दो विषयों की तुलना करते जाना चाहिए।

(६) गतिशीलता (Movement)—स्थिर वस्तुओं की अपेक्षा गतिशील चित्रों (Motion Pictures) का निर्माण भी, इसी सिद्धान्त के अनुसार हुआ है। यदि अध्यापक कक्षा में बने बनाए मान चित्र के स्थान पर स्वयं मानचित्र बनाएगा, तो बालकों का अवधान अधिक स्थिर रहेगा।

अवधान के प्रकार—

अवधान को साधारणतया दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) प्रयत्न रहित अथवा निष्क्रिय अवधान (Involuntary or passive attention)

(ii) सप्रयत्न अथवा सक्रिय अवधान (Voluntary or active attention)

पहले प्रकार के अवधान में, अवधान को स्थिर रखने के लिए किसी प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता, वह सहज प्रयत्न होता है। यदि किसी विषय में हमारी रुचि होगी तो उस में ध्यान लगाने के लिए हमें किसी भी प्रकार का कोई यत्न नहीं करना पड़ेगा।

दूसरे प्रकार के अवधान में, अवधान को स्थिर रखने के लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता होती है। हम अपनी इच्छा-शक्ति से बलपूर्वक ध्यान को किसी विषय पर केन्द्रित करते हैं। ऐसी बात उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में होती है जिनमें हमारी रुचि नहीं होती।

इनके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपने प्रकृति-भेद के कारण, भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने अवधान को केन्द्रित करते हैं। कई व्यक्ति किसी विषय पर गम्भीरता से मनन करते हैं। दूसरे प्रकार के लोग अपने ध्यान को अनेकों विषयों पर विकीर्ण करते हैं।

पाठशाला के प्रधानाध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह समय-विभाग-चक्र की व्यवस्था इस ढंग से करें कि बालकों को बीच-बीच में विश्राम भी मिलता रहे।

पाठ को रोचक बनाने की विधि—

(१) बालकों को पढ़ाते समय स्थूल दृश्य-श्रव्य साधनों का प्रयोग किया जाए।

(२) इस बात का प्रयास किया जाए कि पाठ्य-वस्तु का सम्बन्ध उन बातों से किया जाए जिन में बालक रुचि रखते हैं।

(३) बालकों को जो नवीन ज्ञान देना हो उस का सम्बन्ध उनके पूर्व-ज्ञान से किया जाए।

(४) बालकों का ध्यान पाठ में आकर्षित करने के लिए उनकी जिज्ञासा की मनोवृत्ति को जागृत करना चाहिए।

(५) यदि पाठ का सम्बन्ध किसी न किसी क्रिया (Activity) से किया जाए तो पाठ रोचक बन जाएगा।

१२

थकान
(Fatigue)

Q. 53. What do you mean by the term "Fatigue"? What arrangements would you make in the school time table to avoid excessive fatigue?

(थकान से आपका क्या तात्पर्य है? थकान को कम करने के लिए पाठशाला के समय-विभाग-चक्र की व्यवस्था किस ढंग से की जाए?)

उत्तर—थकान—

जब कोई व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक कार्य अपनी शक्ति से अधिक करता है तो उसे थकावट आ जाती है। थकावट महसूस होने पर पहले उस कार्य में रुचि नहीं रहती, फिर वह कार्य अच्छा नहीं लगता और इसके बाद उस कार्य से दूर भागने की इच्छा होती है। इतना होने पर भी यदि कार्य को जारी रखा जाए तो सिर अथवा शरीर के अन्य भागों में दर्द होने लगेगा। शारीरिक थकावट, शारीरिक परिश्रम करने से आती है तथा मानसिक थकावट, शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के परिश्रम से पैदा होती है।

थकावट क्यों होती है—

(*i*) ताजी हवा की कमी—जलने वाले दीपक को यदि इस प्रकार ढक दिया जाए कि उसे ताजी हवा बिल्कुल न मिले तो वह बुझ जायगा। इसी प्रकार यदि मनुष्य को भी ताजी हवा न मिले तो वह थक जाएगा।

(ii) सञ्चित शक्ति का ह्रास—जब मनुष्य काम करता है तो उस की संचित शक्ति का व्यय होता रहता है जब मनुष्य की संचित शक्ति खर्च हो जाती है तो वह थक जाता है और किसी भी कार्य को नही कर पाता ।

(iii) विषैले पदार्थों का पाया जाना—शरीर मे विषैले पदार्थों के होने से भी थकावट आ जाती है। अधिक परिश्रम करने पर शारीरिक तन्तुओं का क्षय हो जाता है। यह मरे हुए प्राण—तन्तु विष बन कर जीवित प्राण तन्तुओं का क्षय करते हैं। इन पर मरे हुए प्राण तन्तुओं से शरीर मे टाक्सिन (Toxin) नामक विष की उत्पत्ति हो जाती है। शरीर मे इस विष के विद्यमान रहने पर जल्दी-जल्दी थकावट आ जाती है। ठीक रूप से कार्य करने के लिए शरीर मे इस विष का निकाला जाना आवश्यक है।

थकावट के लक्षण—

(क) शारीरिक शिथिलता—थकान के कारण शरीर मे शिथिलता आ जाती है। जब बालक थक जाता है तो सीधा खड़ा नही हो सकता। उसकी रीढ़ की हड्डी भी सीधी नही रहती। वह प्राय. अंगड़ाई या जमाई लेने लगता है। उसके प्रत्येक कार्य मे ढीलापन दिखाई देगा। सब स्फूर्ति नष्ट हो जाएगी।

(ख) ध्यान की एकाग्रता नष्ट होना—थकावट की अवस्था में बालक का अवधान स्थिर नही रहता। उसका मन इधर-उधर दौड़ने लगता है। लिस्टर (Lyster) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "हाईजिन ऑफ दि स्कूल" (Hygiene of the School) मे एक स्थान पर कहा है—

"Inattention is Nature's sovereign remedy against fatigue."

अर्थात् ध्यान का विचलित होना प्रकृति द्वारा थकान मिटाने का एक अपूर्व साधन है।

(ग) काम में गलतियों का होना—थार्नडाईक (Thorndike) तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने अपने परीक्षणों के आधार पर इस बात का निर्णय बताया है कि थकावट की अवस्था में बालक अधिक अशुद्धियाँ करेंगे।

विभिन्न विषयों में थकान—

श्री वेगनर ने थकान के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रयोग किए हैं। वेगनर ने थकान के लिए गणित को इकाई माना है। उनके मतानुसार भिन्न-भिन्न विषयों की थकान इस प्रकार है—

विषय	थकान का माप (अकों में)
गणित	१००
लेटिन	६१
शारीरिक व्यायाम	६०
इतिहास—भूगोल	८५
जर्मन—फ्रेंच	८२
प्राकृतिक इतिहास	८०
चित्र-कला	७०
धर्म	७०

डी० एन० सेन के मतानुसार भिन्न-भिन्न विषयों की थकान, बालकों की रुचि पर निर्भर करती है।

थकान कैसे दूर की जाए—

(१) विश्राम (Rest)—यदि बालकों को पर्याप्त विश्राम दिया जाए तो उनकी थकावट का निवारण हो सकता है। विश्राम के समय टाकसिन नामक विष का बनना रुक जाता है। बालकों में एक नई स्फुर्ति आ जाती है और वे फिर से काम पर जुट जाते हैं।

(२) काम का बदलना (Change of Occupation)—यदि किए जाने वाले कार्य को बदल दिया जाए तो थकावट दूर हो जायगी। नैपोलियन के मतानुसार काम को बदलना ही विश्राम का दूसरा रूप है। बालकों को पढ़ाते समय पाठ्य-विषय बदलते रहना चाहिए तथा मानसिक और हाथ का काम भी उनसे बारी-बारी से कराना चाहिए।

(३) खेल (Play)—जब पढ़ते-पढ़ते बालकों का मन थक जाए तो

उन्हें खेल में लगा देना चाहिए। खेलने से बालकों के मस्तिष्क में स्फूर्ति पैदा होती है।

(४) निद्रा (Sleep)—निद्रा की अवस्था में बालकों को पर्याप्त विश्राम मिलता है तथा वे नई शक्ति प्राप्त करते हैं। निद्रा का समय बालकों की अवस्था के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिए।

(५) सन्तुलित भोजन (Nourishing Food)—सन्तुलित भोजन के द्वारा भी थकान को दूर किया जा सकता है। सन्तुलित भोजन में हम दूध, फल, हरी सब्जियाँ आदि को ले सकते हैं। चाय तथा काफी (Coffee) आदि से भी थकावट दूर हो सकती है परन्तु इन का प्रभाव तात्कालिक होता है। श्री लिस्टर (Lyster) ने एक स्थान पर कहा है—

दूध पीने से बालकों का स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है। उन के मुख पर कान्ति आ जाती है। वे स्फूर्ति से भर जाते हैं। बिस्कुट खाने वालों की अपेक्षा, दूध पीने वाले बालकों में स्फूर्ति अधिक होती है।"

(६) अभ्यास द्वारा अच्छी आदतों का विकास—यदि अभ्यास द्वारा अच्छी आदतों का विकास कर लिया जाता है तो ध्यान को एकाग्र करने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। इसलिए थकावट भी शीघ्रता से नहीं आती।

(७) रुचि—अभ्यास के साथ साथ, रुचि भी थकान के दूर करने में सहायक होती है। जिस काम में हमारी रुचि होती है उसमें अधिक काम करने पर भी थकावट मालूम नहीं होती।

थकान और पाठशाला की समय-सारिणी—

बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि समय-सारिणी बनाई जाय उसके ऊपर किसी प्रकार थकान को ध्यान में रखना चाहिए। कठिन विषय जैसे गणित, व्याकरण, इत्यादि प्रारम्भिक घण्टों में रखे जायें। दो कठिन विषयों को एक के बाद एक के बाद में न रखा जाय। एक कठिन एक सरल इस क्रम से विषयों की व्यवस्था की जाय। इस प्रकार मध्यान्ह [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible], इस को भी [illegible] [illegible] के [illegible] चाहिए।

पढ़ाई के घण्टे बालकों की अवस्था के अनुसार रखे जाएँ। प्राइमरी स्कूल के घण्टे छोटे-छोटे रखे जाएँ क्योंकि वहाँ बालक अपने अवधान को अधिक देर तक स्थिर नहीं रख सकते। श्री लिस्टर (Lyster) ने बालकों के ध्यान की एकाग्रता की अवधि इस प्रकार बताई है—

बालकों की अवस्था	ध्यान-की एकाग्रता की अवधि
६ वर्ष	१५ मिनट
७ से १० वर्ष	२० ,,
१० से १२ वर्ष	२५ ,,
१२ से १६ वर्ष	३० ,,

इसके अनुसार प्राइमरी स्कूल के घण्टे १५–२० मिनट के रखे जाएँ, तथा अन्य विद्यार्थियों के लिए घण्टे की अवधि ३०–३५ मिनट रखी जाए।

भिन्न-भिन्न कक्षाओं की समय-सारिणी में खेल के घण्टे भी रखे जाएँ।

समय-विभाग-चक्र में इन बातों पर ध्यान देने से हम थकान की समस्या का बहुत सीमा तक हल कर सकते हैं।

१३

कल्पना
(Imagination)

Q. 54 What is imagination? Give its classification What part does it play in educationd?

(कल्पना किसे कहते हैं? इस का वर्गीकरण करो। शिक्षा की प्रक्रिया में कल्पना में का क्या महत्व है?)

उत्तर—कल्पना का स्वरूप—

विलियम जेम्स (William James) ने कल्पना की परिभाषा इन शब्दों में की है—

"Sensations once experienced, modify the nervous organism, so that copies of them arise again in the mind after the original outward stimulus is gone"

—W. James, "Principles of Psychology" vol. II pp 44.

अर्थात् जब हमें कोई इन्द्रियानुभव होता है, तो हमारे मस्तिष्क के स्नायु इस प्रकार प्रभावित हो जाते हैं कि हम बाहरी उत्तेजना के पश्चात् भी, अपने मन में उस वस्तु का चित्र देखने लगते हैं।

वैसे तो सभी प्रत्ययात्मक (Conceptual) विचार अनुभवमूलक ही बन जाते हैं परन्तु जब हम अपने अतीत के अनुभव का स्मरण उसके वास्तविक रूप में करते हैं तो उसे स्मृति (Memory) कहते हैं। जब हम अपने ज्ञान के आधार पर कोई नवीन रचना करते हैं अथवा अपने ज्ञान को व्यवस्थित

nagination) कहते हैं। स्मृति में पुनरावृत्ति (Re-pro...
प्रधानता है तथा कल्पना में सृजन (Creation) की प्रमुखता है।

...न्त में हम कह सकते हैं कि किसी भी अनुभव का फिर से मानस-पटल
...चित्रित होना कल्पना कहा जाता है। कल्पना शब्द के व्यापक स्वरूप में
... और रचनात्मक कल्पना दोनों का समावेश हो जाता है परन्तु इसके
...त रूप में कल्पना शब्द से उसी क्रिया का संकेत मिलता है जो पुराने
...व के आधार पर नूतन मानसिक रचना के रूप में की जाती है।

...सिक प्रतिमाएँ (Mental Images) और कल्पना—

...ालकों के वास्तविक जीवन के अनुभव, मानस प्रतिमाओं के रूप में
... मन में संचित रहते हैं। व्यक्तियों के मन में जिस प्रकार की प्रतिमाएँ
... हैं, उनका काल्पनिक जगत भी उसी प्रकार का होता है। मानव
...एँ कई प्रकार की होती हैं, जैसे—

(१) दृष्टि प्रतिमा (Visual image)
(२) श्रोत्र प्रतिमा (Auditory image)
(३) घ्राण प्रतिमा (Olfactory image)
(४) रस प्रतिमा (Gastic image)
(५) स्पर्श प्रतिमा (Tactile image)

...दि हमारी दृष्टि प्रतिमा (Visual Image) प्रबल है तो हम देखी
...तु का अच्छी प्रकार से स्मरण कर सकेंगे। दृष्टि प्रतिमा में प्रवीण बालक
...ा, प्रकृति निरीक्षण आदि कार्यों में सदा आगे रहेंगे। जो बालक
...तिमा (Auditory Image) में प्रवीण होगा वह सुनी हुई बात को
...प्रकार से याद रख सकेगा। इसीलिए यह कहा जाता है कि बालकों को
...मय उनकी भिन्न-भिन्न ज्ञान इन्द्रियों का प्रयोग होना चाहिए। यदि
...क बोल कर पढ़ाता है तो बालक अपनी श्रोत्र इन्द्रियों से काम लेते हैं।
...ध्यापक श्यामपट का प्रयोग करता है तो बालक अपनी नेत्र इन्द्रियों
...ग किया करते हैं।

बालकों और व्यस्कों की प्रतिमाओं में अन्तर—बालकों की मानसिक प्रतिमाएँ व्यस्कों की अपेक्षा अधिक सजीव होती हैं। विशेष रूप से उनकी दृष्टि प्रतिमाएँ बड़ी प्रबल होती हैं। व्यस्कों की शब्द-प्रतिमाएँ बड़ी सजग होती हैं। वे शब्द प्रतिमाओं के सहारे ही सोचते हैं। बालकों में शब्दों के सहारे सोचने की शक्ति का विकास धीरे-धीरे होता है।

कल्पना के प्रकार—

मक्डूगल (Mc Dougall) तथा ड्रेवर (Drever) ने कल्पना को जितने भागों में विभाजित किया है उस की तालिका इस प्रकार बनाई जा सकती है—
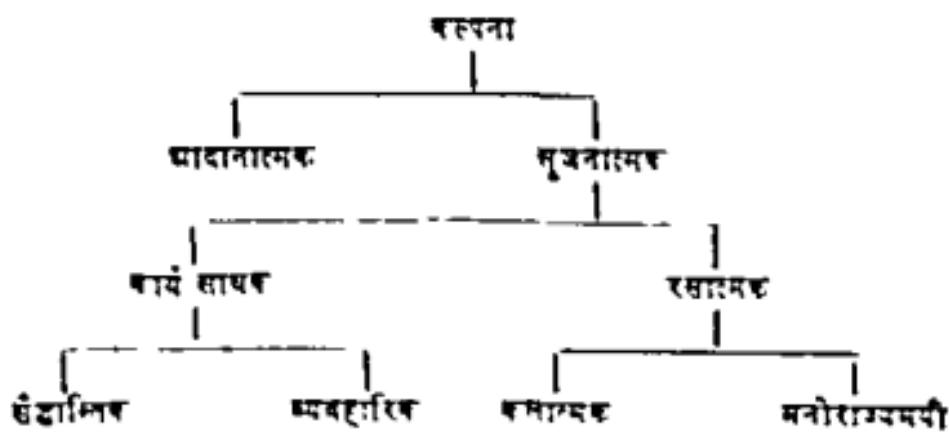
आदानात्मक कल्पना (Receptive Imagination)—आदानात्मक कल्पना का प्रयोग हम किसी ऐसी वस्तु को समझने में करते हैं, जिसे हम पहले नहीं जानते थे। बालकों में कल्पना का उदय पहले पहल आदानात्मक रूप में ही होता है। जब हम बालक को कहानी सुनाते हैं तो वह हमारे कहे हुए शब्दों के आधार पर, उस कहानी से सम्बन्धित प्रतिमाएँ अपने मानस पटल पर अंकित करता है। आदानात्मक कल्पना में विचार दूसरे का रहता है, पर उस विचार के आधार पर व्यक्ति एक नई वस्तु की कल्पना करता है। नए पदार्थ की कल्पना करने के कारण ही इसे आदानात्मक कल्पना की संज्ञा दी गई है। मैकडूगल (Mc Dougall) ने इस कल्पना को पुनरुत्पादनात्मक (Reproductive) कल्पना कहा है।

फर अथवा फिर से संगठित करके, एक नया रूप दे
(Imagination) कहते हैं। स्मृति मे पन
की प्रधानता है तथा कल्पना मे सृजन (

अन्त मे हम कह सकते हैं कि किसी
पर चित्रित होना कल्पना कहा जाता है।
स्मृति और रचनात्मक कल्पना दोनों का
संकुचित रूप में कल्पना शब्द से उसी क्रिया व
अनुभव के आधार पर नूतन मानसिक रचना के

मानसिक प्रतिमाएँ (Mental Images) द

बालकों के वास्तविक जीवन के अनुभव, म
उनके मन मे सचित रहते हैं। व्यक्तियों के मन मे
होती हैं, उनका काल्पनिक जगत भी उसी प्रका
प्रतिमाएँ कई प्रकार की होती हैं, जैसे—

(१) दृष्टि प्रतिमा (Visual image)
(२) श्रोत्र प्रतिमा (Auditory image)
(३) घ्राण प्रतिमा (Olfactory image)
(४) रस प्रतिमा (Gastic image)
(५) स्पर्श प्रतिमा (Tactile image)

यदि हमारी दृष्टि प्रतिमा (Visual Image) प्रबल
हुई वस्तु का अच्छी प्रकार से स्मरण कर सकेंगे। दृष्टि प्रतिमा
चित्रकला, प्रकृति निरीक्षण आदि कार्यों में सदा आगे रहे
श्रोत्र प्रतिमा (Auditory Image) मे प्रवीण होगा वह सु
अच्छी प्रकार से याद रख सकेगा। इसीलिए यह कहा जाता है
पढ़ाते समय उनकी भिन्न-भिन्न ज्ञान इन्द्रियों का प्रयोग होना
अध्यापक बोल कर पढ़ाता है तो बालक अपनी श्रोत्र इन्द्रियों से
यदि अध्यापक श्यामपट का प्रयोग करता है तो
का प्रयोग किया करते हैं।

नहीं। कवि अपनी रचना में अपने हृदय का उद्गार व्यक्त करता है। हृदय के इस उद्गार को व्यक्त करते समय उसे देश, काल का ध्यान नहीं रहता। कवि, लेखक अथवा कलाकार जब स्वाभाविकता तथा सबद्धता आदि को मान कर चलता है तब उसकी कल्पना को कलात्मक कल्पना (Artistic Imagination) कहते हैं। परन्तु जब कलाकार स्वाभाविकता की सीमा का उल्लघन कर के अपने मन की तरगों मे गोते लगाता है तो उसकी कल्पना को मनोराज्यमयी (Fantastic) कल्पना कहते हैं।

बालकों में कल्पना का विकास कैसे किया जाए ?—

(१) भाषा ज्ञान को बढ़ाना—जैसे-जैसे बालको को भाषा का ज्ञान होता जाता है, उनकी कल्पना का विकास होने लगता है। भाषा और कल्पना का बड़ा निकटतम सम्बन्ध है। पशुओ में भाषा का ज्ञान न के बराबर होने से उनकी कल्पना-शक्ति भी परिमित होती है। बालक जब कोई कहानी सुनता है तो वह हमारे शब्दों को सुनकर उन से सम्बन्धित वस्तुओं की कल्पना कहानी सुनने के साथ ही साथ करता जाता है। बालक का भाषा ज्ञान जब बढ़ जाता है, तब शब्दो के बल पर अनेको घटनाओ को सोचने लगता है।

(२) कहानियों का उपयोग—बालकों के कल्पना-विकास मे कहानियाँ बड़ी सहायक सिद्ध हो सकती हैं। अध्यापकगण इस बात का विशेष ध्यान रखें कि बालकों के सामने जब कोई कहानी कही जाए तो पूरे हाव-भाव के साथ तथा शारीरिक चेष्टाओ के साथ कही जाये और बालको को भी इसी प्रकार अपनी कहानियो को कहने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

कभी बालको को पहले से सुनी हुई कहानियो को दोबारा सुनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

पाठशालाओ मे भिन्न-भिन्न कक्षाओं के लिए यदि हस्तलिखित पत्रिका का आयोजन हो तो बालक अपनी छोटी-छोटी कहानियाँ उस पत्रिका के लिए भी लिख सकते हैं।

अभिनय के द्वारा—अभिनय का सामाजिक जीवन में बड़ा महत्व है। अभिनय के [illegible] का अस्पष्ट ज्ञान स्पष्ट बनता है तथा उस मे आत्म-

सृजनात्मक कल्पना (Creative Imagination)—हम प्राप्
को केवल ग्रहण ही नही करते अपितु स्वयं भी कुछ निर्माण करते हैं
कहानी लिख सकते हैं, बिना देखे ही किसी दृश्य का चित्र बना सकते हैं
किसी जटिल समस्या का हल कर सकते हैं। ड्रेवर (Drever) के मतानु
यह आदानात्मक कल्पना से श्रेष्ठ है तथा इस का सम्बन्ध सदा भविष्य
रहता है। मनोवैज्ञानिको ने इसके दो भाग किए हैं—(क) कार्य साधक
कल्पना तथा (ख) रसात्मक कल्पना।

कार्यसाधक कल्पना (Pragmatic Imagination)—यह कार्य-
साधक कल्पना ही है जो हमारे जीवन के उपयोगी कार्यों मे सहायक सिद्ध हो
सकती है। इसी कल्पना की सहायता से ज्ञान का विकास होता है, वैज्ञानि
अन्वेषण होते हैं तथा जटिल समस्याओ को हल किया जाता है। आज रे
तार, जलयान, वायुयान आदि जिन वस्तुओ का निर्माण हो रहा है, यह इस
कल्पना के द्वारा। कार्यसाधक कल्पना को भी दो भागो मे विभाजित किया
जा सकता है—(क) सैद्धान्तिक कल्पना तथा (ख) व्यावहारिक कल्पना।

सैद्धान्तिक कल्पना (Theoretical Imagination)—इस कल्पना
द्वारा हम सिद्धान्तों का निर्माण करते हैं। इस के अनुसार
देखता है कि यदि दूर तक सन्देश भेजना हो तो किन सिद्धा
साधन तैयार किया जाएगा। सिद्धान्तो की खोज सैद्धान्तिक
जाती है।

व्यावहारिक कल्पना (Practical Imagination)—
ो के आधार पर पुल बनाना, टेलीविजन सेट बनाना,
र निर्भर करता है। अपने भविष्य का कार्यक्रम व्यवहारि
र पर ही स्थिर किया जाता है।

रसात्मक कल्पना (Aesthetic Imagination)—इस प्र
किसी भी प्रकार का बाहरी नियन्त्रण नही होता।
 दम स्वतन्त्र रहता है। चित्रकार जब कल्पना के आधार
ों से युक्त आकृति को चित्रित करता है तो उसे इस बा
रहती कि वास्तविक संसार में इस की सम्भावना है भी

नही। कवि अपनी रचना में अपने हृदय का उद्‌गार व्यक्त करता है। हृदय के इस उद्‌गार को व्यक्त करते समय उसे देश, काल का ध्यान नही रहता। कवि, लेखक अथवा कलाकार जब स्वाभाविकता तथा सबद्धता आदि को मान कर चलता है तब उसकी कल्पना को कलात्मक कल्पना (Artistic Imagination) कहते हैं। परन्तु जब कलाकार स्वाभाविकता की सीमा का उल्लघन कर के अपने मन की तरगो मे गोते लगाता है तो उसकी कल्पना को मनोराज्यमयी (Fantastic) कल्पना कहते हैं।

बालकों में कल्पना का विकास कैसे किया जाए ?—

(१) भाषा ज्ञान को बढ़ाना—जैसे-जैसे बालको को भाषा का ज्ञान होता जाता है, उनकी कल्पना का विकास होने लगता है। भाषा और कल्पना का बडा निकटतम सम्बन्ध है। पशुओ मे भाषा का ज्ञान न के बराबर होने से उनकी कल्पना-शक्ति भी परिमित होती है। बालक जब कोई कहानी सुनता है तो वह हमारे शब्दों को सुनकर उन से सम्बन्धित वस्तुओं की कल्पना कहानी सुनने के साथ ही साथ करता जाता है। बालक का भाषा ज्ञान जब बढ़ जाता है, तब शब्दों के बल पर अनेकों घटनाओ को सोचने लगता है।

(२) कहानियों का उपयोग—बालकों के कल्पना-विकास मे कहानियाँ बडी सहायक सिद्ध हो सकती हैं। अध्यापकगण इस बात का विशेष ध्यान रखें कि बालकों के सामने जब कोई कहानी कही जाए तो पूरे हाव-भाव के साथ तथा शारीरिक चेष्टाओं के साथ कही जाये और बालको को भी इसी प्रकार अपनी कहानियो को कहने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

कभी बालको को पहले से सुनी हुई कहानियो को दोबारा सुनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

पाठशालाओ मे भिन्न-भिन्न कक्षाओं के लिए यदि हस्तलिखित पत्रिका का आयोजन हो तो बालक अपनी छोटी-छोटी कहानियाँ उस पत्रिका के लिए भी लिख सकते हैं।

अभिनय के द्वारा—अभिनय का सामाजिक जीवन में बड़ा महत्व है। अभिनय के द्वारा बालक का अस्पष्ट ज्ञान स्पष्ट बनता है तथा उस में आत्म-

विश्वास की मात्रा बढ़ती है। उसे इस बात का ज्ञान हो जाता
वास्तविक जगत तथा काल्पनिक जगत में क्या अन्तर है किसी चरि
अभिनय करते समय वह जानता है कि यह वास्तविक घटना नही।
लालजी राम शुक्ल के शब्दों में हम कह सकते हैं कि "बालक की रचनात्
कल्पनाएँ जब बाह्य-क्रिया का रूप धारण करती हैं तो अभिनय का आविर्भा
होता है।"

कविता, संगीत तथा चित्रकला आदि का प्रयोग—कलात्मक कला के
विकास के लिए बालको को साहित्य, कविता, संगीत तथा चित्रकला आदि के
विषय मे प्रेम उत्पन्न कराना चाहिए। इसी बात को ध्यान में रख कर शिक्षा
के पाठ्यक्रम मे इन रसात्मक कलाओ का समावेश किया गया है। सहानुभूति
या निर्देश के आधार पर बालकों को किसी कलात्मक विषय का रसास्वादन
राया जा सकता है।

१४

चिन्तन और तर्क
(Thinking and Reasoning)

Q. 55. What are the various steps in a complete act of thought ? How can the children be trained to think efficiently ?

(विचार-प्रक्रिया के कौन-कौन से अंग हैं ? बालको मे विचार विकास किस प्रकार किया जाएगा ?)

Q. 56. How do cocepts arise in mind ? What is the significance of concepts in education ? How can the teacher help the child in forming concepts ? [L T. 1948]

(मन में प्रयत्नों का निर्माण किस प्रकार होता ? प्रात्यों का शिक्षा की दृष्टि से क्या महत्व है ? अध्यापक बालकों में प्रत्ययज्ञान की वृद्धि किस प्रकार से करेगा ?) [एल० टी० १९४८]

Q. 57. What processes are used in reasning ?

(तर्क शक्ति में किन प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है ?)

Q. 58. State and explain the fundamentals of the process of thinking. How does thinking differ from reasoning ? [Agra 1960]

(विचार-प्रक्रिया की मुख्य-मुख्य विशेषताओं की चर्चा करते हुए बि० चिन्तन और तर्क में क्या अन्तर है ?)

[आगरा १९६०]

चार—विचार की प्रक्रिया—

विचार करने का उद्देश्य नूतन बातों का चिन्तन करना होता है। हमारे सामने जब कोई नई परिस्थिति आजाती है तो अपने पुराने अनुभव के आधार पर ही हम किसी समस्या को हल करते हैं। हमारे विचार करने का मुख्य लक्ष्य होता है नूतन परिस्थिति में अपने आप को सफल बनाना। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि विचार मन की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अपने पुराने अनुभवों की सहायता से किसी नए निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

चार-प्रक्रिया के अंग—

वुडवर्थ (Woodworth) के मतानुसार विचार-प्रक्रिया के नीचे लिखे अंग हो सकते हैं—

(क) लक्ष्य प्राप्ति का उदय होना।
(ख) लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रारम्भिक चेष्टा।
(ग) पुराने अनुभव का स्मरण।
(घ) पुराने अनुभव का नई परिस्थिति में प्रयोग करना।
(ङ) अन्दर की आवाज।

-प्रक्रिया के इन भिन्न-भिन्न अंगों को एक उदाहरण द्वारा स्प
।

जिए मेरा एक मित्र है। वह प्रात:काल सैर करने जाता है। है तो देखता है कि, उसका ताला टूटा पड़ा है और एक ट्रंक है। अब उसके सामने एक समस्या उपस्थित होगई कि उसके गया है। अब वह चिन्तन के द्वारा इस समस्या को हल करने । यह विचार-प्रक्रिया की पहली अवस्था है। समस्या को मित्र का लक्ष्य होगा।

की दूसरी अवस्था मे, मेरा मित्र यह सोचेगा कि इस ट्रंक क्या, इसके लिए पड़ौसियो से पूछा जाए कि उसकी कमरे की ओर कौन-कौन से व्यक्ति आए थे। परन्तु फिर

वह सोचता है कि उस समय पड़ोसी लोग तो अपने-अपने काम पर गए थे। अब इस विचार को छोड़ कर दूसरा विचार मन मे आता है।

इसके पश्चात् मेरा मित्र अपने पुराने अनुभवो का स्मरण करता है। उसकी चेतना मे कई पुराने अनुभव आते हैं। एक फकीर अक्सर इस बस्ती मे घूमा करता है। कई लोग उसको सन्देह की दृष्टि से देखा करते हैं। कहीं यह काम उसी का तो नही। परीक्षा की समाप्ति के पश्चात् कॉलिजो के कई बदमाश छात्र भिन्न-भिन्न मुहल्लो मे आवारागर्दी करते रहते हैं। कही यह उन्ही की करतूत तो नही। पुराने अनुभवो का स्मरण करना—यह विचार-प्रक्रिया की तीसरी अवस्था है।

विचार-प्रक्रिया की चौथी अवस्था के अनुसार हम अपने पुराने अनुभवो मे किसी एक को चुन लेते हैं और उसके अनुसार ही समस्या को हल करने की चेष्टा करते हैं। अपने पुराने अनुभवो के आधार पर मेरा मित्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि हो न हो, उस फकीर ने यह चोरी की अथवा करवाई है जो इस बस्ती मे आया जाया करता है। अब मेरे मित्र की अन्य चेष्टाएँ इसी निष्कर्ष के अनुसार ही होगी।

जब हमारे मन मे इस प्रकार की उथल-पुथल मची होती है तो साथ ही साथ हमारे अन्दर से एक ऐसी आवाज होती है जो हमे अपने निष्कर्ष पर पहुँचने मे सहायता देती है। जैसे-जैसे हम विचार की अन्तिम अवस्था पर पहुँचते है, यह अन्दर की आवाज और भी अधिक स्पष्ट होती जाती है ?

प्रयत्न किसे कहते हैं—

विचार करना एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है और इस का उपयोग केवल मनुष्यो द्वारा ही सम्भव हो सकता है। क्योकि यह मनुष्य ही है जो अपने पुराने अनुभवों के आधार पर, किसी बात के सम्बन्ध मे सूक्ष्म रूप से विचार करके किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाता है। इस प्रकार से विचार करना प्रत्ययात्मक चिन्तन कहलाता है। प्रत्ययात्मक विचार सूक्ष्म विचार है। प्रत्ययात्मक विचार करने की शक्ति बालकों मे धीरे-धीरे आती है। प्रत्ययों का निर्माण, भाषा-ज्ञान के विकास के साथ-साथ होता है। शब्द और प्रत्यय

इन का परस्पर सम्बन्ध इतने निकट का है कि वे एक दूसरे से अलग नहीं किए जासकते। एक ही प्रकार की कई वस्तुओं तथा उनके विशेष गुणो की जानकारी जिन विशेष शब्दो से होती है, उन्हे प्रत्यय कहते हैं। जब हम 'शेर' शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमारा प्रयोजन किसी पशु विशेष से न होकर समस्त शेर-जाति तथा उसके वीरता आदि गुणो से होता है। बालक पहले-पहल शेर का सम्बन्ध पशु विशेष से ही जोड़ता है परन्तु धीरे-धीरे वह इस शब्द का प्रयोग जाति अथवा वीरता आदि गुणो के रूप मे भी करने लगता है।

प्रत्यय के प्रकार—

प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के प्रत्यय वह होते हैं जो उन पदार्थों का बोध कराते हैं जिनका सम्बन्ध हमारी ज्ञानेन्द्रियो से है। शेर. बकरी, हाथी इत्यादि। यह प्रत्यय जिन पदार्थों की ओर संकेत करते उन्हें जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। दूसरे प्रकार के प्रत्यय वे होते हैं जिन द्वारा बौद्धिक पदार्थों की ओर निदश किया जाता है। इन पदार्थों अथव शब्दो को हम भाववाचक सज्ञा कहते है। भाववाचक संज्ञाओं का प्रत्यय बालकों को शीघ्र ही नही होता। कठोर पत्थर का प्रत्यय बालक कर लेता है परन्तु कठोरता का प्रत्यय करना, उसके लिए कठिन प्रतीत होता है। नार्सवर्दी तथा विहटले का कथन है कि पहले कुछ वर्षों मे बालक न्याय, दया, सच्चाई आदि भाववाचक सज्ञाओं का प्रत्यय नही कर पाता। आयु और अनुभव के विकास से उसके प्रत्यय की सीमा का भी विकास होता है।

बालकों में प्रत्यय ज्ञान का विकास कैसे किया जाए ?—

बालकों में प्रत्यय ज्ञान के विकास के लिए, नीचे लिखी चार बातो का ा आवश्यक है—

(i) वस्तु-ज्ञान।

(ii) वस्तुओं के गुणों का परिचय।

(iii) वस्तुओं के अन्तर का ज्ञान।

(iv) वस्तुओं के लिए नाम की व्यवस्था।

(i) वस्तुओं का ज्ञान—केवल कुछ शब्दो की जानकारी होने से ही यह नहीं समझ लेना चाहिए कि बालको को प्रत्यय ज्ञान हो गया। प्रत्यय ज्ञान के लिए शब्दो के अर्थ का ज्ञान होना आवश्यक है और किसी शब्द के अर्थ की जानकारी के लिए अनुभव की आवश्यकता पडती है। जिस बालक ने कबूतर देखा ही नही, वह कबूतर शब्द के अर्थ को कैसे बता सकेगा। इसी प्रकार यदि बालको ने चित्र मे नील गाय को नही देखा तो वे इस सम्बन्ध मे किस प्रकार कल्पना कर सकेंगे। अपने अनेको अनुभवो का बोध कराने वाले शब्दो की जानकारी से ही प्रत्यय ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

(ii) वस्तुओं के गुणों का परिचय—हर एक वस्तु का कोई न कोई गुण अवश्य होता है। पहले-पहल बालक किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करता है। बाद मे धीरे-धीरे उस वस्तु के गुणो की ओर उसका ध्यान जाता है। पहले-पहल जब बालक किसी खरगोश को देखता है तो उसका ध्यान उसकी आकृति की ओर ही होता है, गुणो की ओर नही। कुछ समय के पश्चात् जब वह बहुत से खरगोशो को देख लेता है तब खरगोश के गुणो की ओर भी उसका ध्यान जाने लगता है। बालक को खरगोश की सभी विशेषताएँ मालूम हो जाती हैं और उसका खरगोश सम्बन्धी ज्ञान और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

(iii) वस्तुओं के अन्तर को जानना—वस्तुओं के गुणों पर विचार करना एक विश्लेषणात्मक क्रिया है। जिन वस्तुओ के गुणो में समानता पाई जाती है, उन्हें बालक एक दूसरे से सम्बन्धित कर लेते हैं। इस प्रकार बालक उन पदार्थों को भी अलग-अलग कर लेते हैं जिनके गुणों में भिन्नता पाई जाती है। जो बालक भिन्न-भिन्न वस्तुओ के गुणों पर जितना अधिक विचार करता है, उतना ही अच्छा वह उनका वर्गीकरण करके, उनके अन्तर को समझ जाता है। जैसे-जैसे उसे वस्तुओं के अन्तर का ज्ञान होता है, वैसे-वैसे उसका प्रत्यय ज्ञान भी बढ़ता है।

(iv) वस्तुओं के लिए नाम की व्यवस्था—जब व्यक्तियों को भिन्न वस्तुओं की जानकारी हो जाती है, उन वस्तुओं के गुणो का परिचय मिल जाता है तथा उन गुणों के आधार उन का अन्तर स्पष्ट हो जाता है तब एक ही क्रिया

१६

नाड़ी मण्डल और ग्रन्थियाँ
(Nervous System and Glands)

Q. 59. Give the brief description of the nervous system. Discuss its role in education. [Rajasthan 1950]

(नाड़ी मण्डल की संक्षिप्त चर्चा करते हुए लिखो कि इसका शिक्षा की दृष्टि से क्या महत्व है?) [राजस्थान १६५०]

Q. 60. Give the different divisions of the nervons system. State the chief function of each. [Punjab 1952]

(नाड़ी मण्डल को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है? प्रत्येक भाग का जो जो कार्य है, उसकी चर्चा करो।) [पंजाब १६५२]

उत्तर—नाड़ी मण्डल का स्वरूप—

मन और शरीर का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानसिक क्रियाओं को समझने के लिए, यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि उनकी उत्पत्ति कहाँ होती है। इसी प्रकार शारीरिक क्रियाओं को समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि इन क्रियाओं का नियन्त्रण कहाँ होता है। हमारी मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओं का सम्बन्ध मुख्य रूप से हमारे शरीर में स्थित नाड़ी मण्डल से है। अतएव इन को समझने के लिए नाड़ी मण्डल का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

नाड़ी मण्डल तारों के जाल के समान हमारे सारे शरीर में फैला हुआ

मस्तिष्क की ओर न जाकर, सीधी शारीरिक प्रतिक्रियाओं में परिणित हो जाती हैं और कुछ मस्तिष्क की ओर जाती हैं। जिन क्रियाओं का संचालन सीधे मेरु दण्ड से होता है तथा जिन का मस्तिष्क से कोई सम्बन्ध नहीं होता, ऐसी क्रियाओं को सहज-क्रियाएँ कहते हैं। तेज प्रकाश में हमारी आँखें एकाएक बन्द हो जाती हैं। त्वक प्रदेश से ज्ञानवाही नाड़ियाँ उत्तेजना को मेरु दण्ड तक ले गईं। वहाँ से उन्होंने सीधे गतिवाही नाड़ियों को उत्तेजित कर दिया और प्रतिक्रिया हो गई।

(ii) केन्द्रीय नाड़ी मण्डल—

इस को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) मेरु दण्ड (Spinal Cord)

(ii) मस्तिष्क (Brain)। मस्तिष्क को तीन भागों में बाँटा गया है—

(क) बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum)

(ख) लघु मस्तिष्क (Cerebellum)

(ग) सेतु (Pons)

मेरु दण्ड (Spinal Cord)—ऊपर यह बताया ही जा चुका है कि ज्ञानवाही (Afferent) नाड़ियाँ, हर समय विभिन्न प्रकार की उत्तेजना को मेरु दण्ड में भेजा करती हैं। कई उत्तेजनाओं की प्रतिक्रिया मेरुदण्ड से ही हो जाती है। उत्तेजना को मस्तिष्क तक पहुँचने में कुछ समय तो लगता ही है। परन्तु कई बार जीवन रक्षा की दृष्टि से प्रतिक्रिया में विलम्ब करना ठीक नहीं होता। सहज-क्रियाओं का नियन्त्रण तो मेरु दण्ड के द्वारा होता ही है, आदतों का नियन्त्रण भी वहीं से होता है। आदत जब तक पुष्ट नहीं हो जाती तब तक मस्तिष्क को काम करना पड़ता है। जब संस्कार पुष्ट हो जाता है तो सहज क्रियाओं के समान ही, आदतों का संचालन भी मेरु दण्ड से होने लगता है।

मेरु दण्ड का ऊपरी भाग, जहाँ से उस का सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है मेरु दण्ड शीर्ष (Medulla Oblongata) कहलाता है। मस्तिष्क की

उत्तेजनाएँ यही से मेरू दण्ड में पहुँचती हैं। साँस लेना, रक्त
अनेकों क्रियाओं का उद्गम स्थल भी यही है।

मस्तिष्क (Brain)—जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है
तीन भागों मे बाँटा जा सकता है—वृहत् मस्तिष्क (Cere
मस्तिष्क (Cerebellum) तथा सेतु (Pons)।

वृहत मस्तिष्क (Cerebrum)—वृहत मस्तिष्क ही ज्ञा
क्रिया का संचालन करता है। यदि चोट लगने अथवा अन्य
मस्तिष्क (Brain) तथा मेरू दण्ड (Spinal Cord)
जाए तो हम अपने शरीर मे कोई भी क्रिया उत्पन्न नही कर
दशा मे त्वक नाड़ी मण्डल मे होने वाली उत्तेजनाओं का ज्ञा
सकेगा। वृहत मस्तिष्क खोपड़ी के नीचे रहता है।

लघु मस्तिष्क (Cerbellum)—यह वृहत् मस्तिष्क के
लघु मस्तिष्क एक ओर नाडी तन्तुओं से मेरू दण्ड शीर्ष से जुड़ा
दूसरी ओर सेतु के द्वारा इस का सम्बन्ध वृहत् मस्तिष्क से
मस्तिष्क का विशेष कार्य विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं मे सम
करना तथा शारीरिक गतियों को समता प्रदान करना है। श
अथवा किसी तीव्र संवेग की दशा मे लघु मस्तिष्क अपना काम
है। इसलिए उस समय शरीर की गति सन्तुलित दशा मे नही र
लड़खड़ाने लगते हैं।

सेतु (Pons)—सेतु का मुख्य कार्य मस्तिष्क के विभि
सम्बन्ध स्थापित करना है, किसी स्वतन्त्र क्रिया को उत्तेजित क
वृहत् मस्तिष्क के नाडी तन्तु यही से होकर बाहर जाते हैं तथा
के दोनों भागों में भी यही सम्बन्ध स्थापित होता है।

(iii) स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल—

यह नाड़ी तन्तु मेरू दण्ड के दाहिनी तथा बायीं ओर
हुए हैं। इन नाड़ियों का सम्बन्ध हृदय तथा फेफड़ों से भी रहता
दबाना, घुटना इत्यादि क्रियाएँ इन्हीं के द्वारा नियन्त्रित होती

नाडी मण्डल का निचला भाग काम उद्दीपन, मल मूत्र त्याग आदि क्रियाओं का संचालन करता है। स्वतन्त्र नाडी मण्डल का प्रमुख कार्य है उद्वेगों को उत्तेजित करना। स्वतन्त्र नाडी मण्डल मे स्थित कई ग्रन्थियाँ ऐसे रस पैदा करती हैं। कि उन से उद्वेग प्रबल हो जाते हैं और व्यक्ति के शरीर मे विशेष शक्ति का संचार हो जाता है। जो काम व्यक्ति साधारण रूप मे नहीं कर सकता, वह इन उद्वेगो की अवस्था मे बड़ी सरलता से कर लेता है।

नाड़ी मण्डल का शिक्षा की दृष्टि से महत्व—

शिक्षक के लिए नाडी मण्डल का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। नाड़ी मण्डल का अध्ययन करने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

(i) शिक्षक का प्रमुख कार्य है, बालक का सर्वांगीण विकास करना और उसके आचरण को प्रभावित करना। यह दोनों बातें मानसिक क्रियाओ से सम्बन्ध रखती हैं। यह ऊपर बताया ही जा चुका है कि हमारी शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओ का नियन्त्रण नाडी मण्डल के द्वारा ही होता है।

(ii) बालको मे अच्छी आदतों का निर्माण करना भी शिक्षा का एक प्रमुख ध्येय है। आदतो का नाड़ी मण्डल से जो सम्बन्ध है, उसका दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है।

(iii) बालको के व्यक्तित्व के निर्माण मे ग्रन्थियो (Glands) का बहुत बड़ा हाथ रहता है। ग्रन्थियो और नाड़ी मण्डल दोनो मे बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

इन्ही सब कारणो से शिक्षको द्वारा नाडी मण्डल के अध्ययन की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

Q. 61. What is the importance of the ductless glands in the personality development and how is their study important for the teacher? [Punjab 1956]

(प्रणाली विहीन ग्रन्थियों का, व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से क्या महत्व है? अध्यापक को इन ग्रन्थियों का अध्ययन क्यों करना चाहिए?) [पंजाब १९५६]

Q. 62. Give an account of any three of the ductless glands in the human body. Briefly describe their influence on the personality of the individual. [Punjab 1951]

(मनुष्य के शरीर में, प्रणाली विहीन किन्हीं तीन ग्रन्थियों का विस्तार से वर्णन करो, तथा इस बात की चर्चा करो कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को वे किस प्रकार प्रभावित करती हैं।) [पंजाब १९५१]

Q. 63. Describe the influence of growth on (i) The thyroid gland and (ii) The pituitary gland. [Punjab 1952, Suppl.]

(थाईरायड तथा पिट्यूटरी ग्रन्थियों का व्यक्ति के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी विस्तार से चर्चा करो। [पंजाब १९५२ सप्ली०]

Q. 64. *What are the findings of research, as regards the influence of glands on personality development?* [Punjab 1954 Suppl.]

(वर्तमान अन्वेषणों के आधार पर इस बात की चर्चा करो कि ग्रन्थियाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व को किस प्रकार प्रभावित करती है?) [पंजाब १९५४ सप्ली०]

उत्तर—ग्रन्थियाँ (Glands)—

ग्रन्थियाँ या गिल्टियाँ हमारे सारे शरीर में फैली हुई हैं। यह स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल (Autonomic Nervous System) से सम्बन्धित रहती है। यह ग्रन्थियाँ शरीर में होने वाली कई क्रियाओं का नियन्त्रण तथा संचालन करती हैं। भोजन का पचना, मल-मूत्र आदि का बाहर निकलना, हृदय की धड़कन, इस प्रकार के कई काम यह ग्रन्थियाँ करती हैं। कई गिल्टियाँ शारीरिक विकास तथा स्वास्थ्य के लिए बड़ी उपयोगी हैं। कई ग्रन्थियों का सम्बन्ध हमारे मनोभावों से भी रहता है।

ग्रन्थियों के प्रकार—

ग्रन्थियाँ दो प्रकार की होती हैं—

(i) प्रणाली युक्त ग्रन्थियाँ (Glands with ducts)

(ii) प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ (Ductless glands)

(i) प्रणाली युक्त ग्रन्थियाँ (Glands with ducts)—इन ग्रन्थियों के द्वारा जो रस उत्पन्न होता है वह हमारे शरीर की कई प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। प्रणाली युक्त गिल्टियों का रस प्रणाली में बहकर वहाँ पहुँचता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है। भोजन को पचाने के लिए एक विशेष प्रकार के रस की आवश्यकता पड़ती है। एक विशेष प्रकार की प्रणाली युक्त गिल्टी उस रस का निर्माण करती है और एक प्रणाली (Duct) के द्वारा उस रस को आमाशय तक पहुँचाती है। इसी प्रकार कई दूसरी गिल्टियाँ भी अपने-अपने रसों का निर्माण करके हमारे शरीर की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं।

(ii) प्रणाली विहीन गिल्टियाँ (Ductless Glands)—प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ शरीर विज्ञान (Physiology) की एक नवीन खोज है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन गिल्टियों या ग्रन्थियों का बड़ा महत्व है। यह गिल्टियाँ अपने रस को सीधे ही रक्त में मिला देती हैं और रक्त के द्वारा सम्पूर्ण शरीर में उसे भेज देती हैं। अतएव यह गिल्टियाँ कई प्रकार से शरीर को प्रभावित करती हैं। शरीर को स्वस्थ रखने में तथा शरीर के सम्यक विकास में इन ग्रन्थियों का प्रमुख हाथ रहता है। प्रणाली की सहायता के बिना काम करने के कारण इन ग्रन्थियों को प्रणाली-विहीन ग्रन्थियाँ कहा जाता है। अब तक अनेकों प्रणाली-विहीन ग्रन्थियों का पता लग चुका है जिनमें कुछ प्रमुख ग्रन्थियों के नाम नीचे दिए जा रहे हैं—

(i) थाईरायड (Thyroid)
(ii) पिट्यूटरी (Pitutary)
(iii) एड्रीनल्स (Adrinals)

(i) थाईरायड ग्रन्थि (Thyroid Gland)—यह ग्रन्थि गले की घण्टी के पास स्थित है। यह गिल्टी जिस रस का उत्पादन करती है, उसे 'थाईरॉक्सिन' (Thyroxin) का नाम दिया गया है। थाईरॉक्सिन एक

Q. 62. Give an account of any three of the ductless glands in the human body. Briefly describe their influence on the personality of the individual. [Punjab 1951]

(मनुष्य के शरीर में, प्रणाली विहीन किन्हीं तीन ग्रन्थियों का विस्तार से वर्णन करो, तथा इस बात की चर्चा करो कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को ये किस प्रकार प्रभावित करती हैं।) [पंजाब १९५१]

Q. 63. Describe the influence of growth on (i) The thyroid gland and (ii) The pituitary gland. [Punjab 1952, Suppl]

(थाईरायड तथा पिट्यूटरी ग्रन्थियों का व्यक्ति के विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी विस्तार से चर्चा करो। [पंजाब १९५२ सप्ली०]

Q. 64. What are the findings of research, as regards the influence of glands on personality development? [Punjab 1954 Suppl.]

(वर्तमान अन्वेषणों के आधार पर इस बात की चर्चा करो कि ग्रन्थियाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व को किस प्रकार प्रभावित करती हैं?) [पंजाब १९५४ सप्ली०]

उत्तर—ग्रन्थियाँ (Glands)—

ग्रन्थियाँ या गिल्टियाँ हमारे सारे शरीर मे फैली हुई हैं। यह स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल (Autonomic Nervous System) से सम्बन्धित रहती हैं। यह ग्रन्थियाँ शरीर मे होने वाली कई क्रियाओ का नियन्त्रण तथा संचालन करती है। भोजन का पचना, मल-मूत्र आदि का बाहर निकलना, हृदय की धड़कन, इस प्रकार के कई काम यह ग्रन्थियाँ करती हैं। कई गिल्टियाँ शारीरिक विकास तथा स्वास्थ्य के लिए बड़ी उपयोगी हैं। कई ग्रन्थियो का सम्बन्ध हमारे मनोभावो से भी रहता है।

ग्रन्थियों के प्रकार—

ग्रन्थियाँ दो प्रकार की होती हैं—

(i) प्रणाली युक्त ग्रन्थियाँ (Glands with ducts)

(ii) प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ (Ductless glands)

(i) प्रणाली युक्त ग्रन्थियाँ (Glands with ducts)—इन ग्रन्थियो के द्वारा जो रस उत्पन्न होता है वह हमारे शरीर की कई प्रकार की आवश्यकताओ की पूर्ति करता है। प्रणाली युक्त गिल्टियो का रस प्रणाली में बहकर वहाँ पहुँचता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है। भोजन को पचाने के लिए एक विशेष प्रकार के रस की आवश्यकता पडता है। एक विशेष प्रकार की प्रणाली युक्त गिल्टी उस रस का निर्माण करती है और एक प्रणाली (Duct) के द्वारा उस रस को आमाशय तक पहुँचाती है। इसी प्रकार कई दूसरी गिल्टियाँ भी अपने-अपने रसो का निर्माण करके हमारे शरीर की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं।

(ii) प्रणाली विहीन गिल्टियाँ (Ductless Glands)—प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ शरीर विज्ञान (Physiology) की एक नवीन खोज है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन गिल्टियों या ग्रन्थियो का बडा महत्व है। यह गिल्टियाँ अपने रस को सीधे ही रक्त में मिला देती हैं और रक्त के द्वारा सम्पूर्ण शरीर मे उसे भेज देती हैं। अतएव यह गिल्टियाँ कई प्रकार से शरीर को प्रभावित करती हैं। शरीर को स्वस्थ रखने मे तथा शरीर के सम्यक विकास मे इन ग्रन्थियों का प्रमुख हाथ रहता है। प्रणाली की सहायता के बिना काम करने के कारण इन ग्रन्थियो को प्रणाली-विहीन ग्रन्थियाँ कहा जाता है। अब तक अनेकों प्रणाली-विहीन ग्रन्थियों का पता लग चुका है जिनमे कुछ प्रमुख ग्रन्थियो के नाम नीचे दिए जा रहे हैं—

(i) थाईरायड (Thyroid)

(ii) पिट्यूटरी (Pitutary)

(iii) एड्रीनल्स (Adrinals)

(i) थाईरायड ग्रन्थि (Thyroid Gland)—यह ग्रन्थि गले की घण्टी के पास स्थित है। यह गिल्टी, जिस रस का उत्पादन करती है, उसे 'थाईरॉक्सिन' (Thyroxin) का नाम दिया गया है। थाईरॉक्सिन एक

प्रकार का अमृत रस है इसी रस के द्वारा हमारा शारीरिक तथा मानसिक विकास उचित रूप मे होता है। यदि इस गिल्टी में कोई दोष आ जाए। इसमें से थाईरेक्सिन नामक रस स्रवित होना बन्द हो जाए और वह बालक को उचित मात्रा मे प्राप्त न हो सके तो उसका विकास रुक जाएगा। बालक का शरीर अशक्त रह जाएगा, बुद्धि मन्द पड़ जाएगी तथा कद ठिगना रह जाएगा।

परीक्षणो के आधार पर पता चला है कि क्रोध, भय आदि संवेगों की दशा मे थाईरायड गिल्टी उचित मात्रा मे थाईरेक्सिन नामक रस उत्पन्न नही कर सकती। इसलिए जो व्यक्ति इन मनोवृत्तियों का शिकार होते हैं उनका स्वास्थ्य ठीक नही रहता। सिर दर्द, अपच, हृदय की धड़कन आदि रोग बढ़ जाते हैं। शरीर की स्फूर्ति और तेज चला जाता है।

हर्ष, उत्साह, प्रेम आदि की अवस्था में, इस गिल्टी से निकलने वाले थाईरेक्सिन नामक रस की वृद्धि हो जाती है। शरीर का विकास तीव्र गति से होने लगता है, रोग दूर हो जाते हैं, चेहरे पर कान्ति आ जाती है, बुद्धि तीव्र हो जाती है, तथा व्यक्ति का स्वास्थ्य सभी दृष्टियो से उन्नत हो जाता है।

(ii) पिट्यूटरी ग्रन्थि (Pitutary Gland)—यह गिल्टी मस्तिष्क के नीचे वाले भाग मे लटकती रहती है। इसके दो भाग हैं। दोनों से विभिन्न प्रकार के रस निकलते रहते हैं। इस ग्रन्थि से निकलने वाला रस साधारण रूप मे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है। इस रस का विशेष कार्य है हड्डियो (Bones) तथा मांसपेशियों (Muscles) का उचित रूप से विकास करना। इस ग्रन्थि से निकलने वाला रस यदि आवश्यता से अधिक बालक को मिलेगा तो उसका शरीर राक्षसो जैसा बड़ा हो जाएगा। यदि यह रस कम मिलेगा तो बालक का विकास रुक जाएगा और उसकी काम वृत्ति (Sex) [illegible] भी ठीक ढंग से नहीं होगा।

[illegible] (Adrinal glands)—एड्रीनल नाम की दो [illegible] पर स्थित है। इनसे एड्रीनलीन [illegible]

(Adrenalin) नाम का रस बहा करता है। क्रोध, भय आदि सवेगो की दशा में, यह ग्रन्थियाँ प्रबल वेग से रस का उत्पादन करती हैं। इससे रक्त मे शक्कर (Sugar) की मात्रा बढ़ जाती है, खून जमने लगता है और ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि व्यक्ति की शक्ति बढ़ गई है। जब शरीर मे एड्रीनलीन की मात्रा काफी परिमाण मे हो तो व्यक्ति असाधारण शक्ति के काम भी कर लेता है। एक छोटा सा बालक, क्रोध की अवस्था मे, बड़ो के सम्भाले भी नहीं सम्भलता। भय की अवस्था में व्यक्ति बड़ा तेज भाग लेता है और ऊँची-ऊँची दीवालो को लाँघ जाता है जिसे वह साधारण अवस्था मे कभी भी न कर सकता। युद्ध मे भाग लेने वाले सैनिक तथा फुटबॉल आदि खेलों मे भाग लेने वाले खिलाडी, चोट खाकर भी जो पीड़ा का अनुभव नही करते वह इसी एड्रीनलीन नामक रस के बल पर ही ऐसा करते हैं। शान्त होने पर जब एड्रीनलीन स्वाभाविक रूप से स्रवित होता है तब एकाएक पीड़ा मालूम होती है। परन्तु शरीर मे एड्रीनलीन की मात्रा अधिक होने से पाचन-क्रिया ठीक प्रकार से होती है।

शिक्षा की दृष्टि से गिल्टियों का महत्व—

उपरोक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि शारीरिक तथा मानसिक विकास की दृष्टि से इन ग्रन्थियों का क्या महत्व है।

भोजन के पचने तथा मल-मूल त्याग के कार्यों मे भी इन ग्रन्थियो का य रहता है। भय तथा क्रोध का हमारे स्वास्थ्य पर क्या दुष्परिणाम पड़ता मका दिग्दर्शन भी हमे गिल्टियों के अध्यापन से ही होता है।

ि मुस्त है, स्फूर्तिहीन अथवा मन्द बुद्धि का है तो उसका । है कि इन ग्रन्थियो से उचित मात्रा में रस का

ि य॰ . कि वह इन ग्रन्थियों के
मे ।। तथा उनके अभिभावकों
त

१६

संवेदना, प्रत्यक्षीकरण तथा पूर्वानुवर्ती ज्ञान
(Sensation, Perception and Apperception)

Q. 65. Distinguish between sensation and perception. Compare the perception of children with those of adults.

(सम्वेदना और प्रत्यक्षीकरण में क्या अन्तर है? बालकों और ...स्कों के प्रत्यक्षीकरण की तुलना करो।)

Q. 66. Distinguish between perception and observation. ...ow can observation be made more effective.

(प्रत्यक्षीकरण और निरीक्षण के भेद को स्पष्ट करो। निरीक्षण ...ी क्रिया को किस प्रकार से प्रभावशाली बनाया जा सकता है?)

Q. 67. What is the meaning and value of sense-training? ...iscuss the place of sense traning in the system of Madame ...ontessori. [Rajasthan 1952]

(शिक्षा की दृष्टि से ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा का क्या महत्व है? उस ... स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए इस बात की चर्चा करो कि मॉंटेसरी ...द्धति में ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण का क्या स्थान है?)

[राजस्थान १९५२]

उत्तर—पिछले अध्याय मे इस बात की विस्तृत रूप मे चर्चा की जा ...ी है कि हमारे समस्त शरीर में, बिजली के तारो के समान, नाड़ियो

का समूह फैला हुआ है। नाड़ियाँ दो प्रकार की होती हैं—ज्ञानवाही (Afferent) और गतिवाही (Efferent)। यह ज्ञानवाही नाड़ियाँ ही हमारे समस्त ज्ञान का आधार हैं। यदि वे न हो अथवा किसी कारण से वे अपना काम बन्द कर दें तो हमे किसी भी प्रकार का ज्ञान नही हो सकेगा। वाह्य जगत मे होने वाली उत्तेजिना को यह नाड़ियाँ मस्तिष्क मे ले जाती हैं और तब हमे उसका ज्ञान होता है।

संवेदना और प्रत्यक्ष ज्ञान (Sensation and Perception)—

जो ज्ञान हमे भिन्न-भिन्न ज्ञानेद्रियो की सहायता से होता है, उसे हम संवेदना कहते हैं। सवेदना ज्ञान की सबसे सरल अवस्था है। कुछ उदाहरणो से अब सवेदना और प्रत्यक्ष ज्ञान को स्पष्ट किया जाएगा। मान लीजिए, कुछ दूरी पर मैं कोई नीली सी वस्तु देखता हूँ। अब उस वस्तु के नीलेपन का ज्ञान शुद्ध सवेदना मात्र कहा जाएगा। इस ज्ञान के होने पर यह नही स्पष्ट होगा कि वह वस्तु क्या है, जिसका नीलापन हमे दिखाई दे रहा है। हम प्रात.काल उठते हैं। हमें कही पास से ही कोई ध्वनि सुनाई देती है। परन्तु हम यह नही कह सकते कि यह ध्वनि किस वस्तु की है? ध्वनि के सम्बन्ध मे हमारा यह ज्ञान शुद्ध सवेदना मात्र ही कहा जाएगा।

जब इन्द्रिय ज्ञान के उत्पन्न होने पर हमारे मन मे उस विषय की कल्पना हो जाती है, जिससे वह ज्ञान सम्बन्ध रखता है, तब इस प्रकार के ज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहेंगे। यह ज्ञान की दूसरी सीढ़ी है। कुछ दूरी पर हमे जो वस्तु नीली नीली दिखाई दे रही है यदि उसके सम्बन्ध में हमारी यह कल्पना हो जाए कि वह मोटर है तो यह ज्ञान प्रत्यक्ष-ज्ञान कहलाएगा। उसी प्रकार यदि पास से आने वाली ध्वनि के सम्बन्ध में हम यह कह सकें कि वह सितार नामक वाद्य की ध्वनि है तो हमारा यह ज्ञान भी प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाएगा।

अनेकों मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि यथार्थ मे मनुष्य को केवल इन्द्रिय ज्ञान नहीं होता। जब कभी उसे इन्द्रिय ज्ञान होता है तो साथ ही साथ उसे उस वस्तु का भी ज्ञान हो जाता है, जिसके सम्बन्ध मे प्रथम सवेदना हुई। इसी दृष्टि से संवेदनात्मक ज्ञान को केवल कल्पना मात्र ही कहा जा सकता

है । साधारण जीवन में भी हम देखते हैं कि सामान्य लोगों को संवेदना का ज्ञान नहीं होता । नवजात शिशु को भले ही संवेदनात्मक ज्ञान हो । ऐसे प्रकार की इन्द्रिय उत्तेजना के साथ-साथ मनुष्य के मन में उसके बारे कल्पना उठ नहीं होती है ।

संवेदनात्मक ज्ञान के सम्बन्ध में एक समस्या यह है कि बालक को जो ज्ञान होता है, वह सभी संवेदनाओं का एक साथ होता है अथवा एक-एक इन्द्रिय का ज्ञान उसे होता है और फिर मन विभिन्न प्रकार के इन्द्रिय ज्ञान का संगठन करके, उसे वस्तु ज्ञान में परिणित कर देता है । इस सम्बन्ध में आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि बालक के सामने किसी वस्तु के आते ही, उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ एक-एक करके उत्तेजित नहीं होतीं । अपितु एक साथ ही अनेकों ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तेजित हो उठती है । इस दृष्टि से बालक पहले सम्पूर्ण पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करता है । बाद में वह उसका विश्लेषण करके, उस वस्तु के गुणों की जानकारी प्राप्त करता है ।

संवेदना के प्रकार—

संवेदनाएँ कई प्रकार की होती हैं । एक दृष्टि से हम इसका वर्गीकरण इस ढंग से कर सकते हैं :—

(i) दृष्टि सम्बन्धी संवेदना (Visual Sensation)
(ii) ध्वनि सम्बन्धी संवेदना (Auditory Sensation)
(iii) घ्राण सम्बन्धी संवेदना (Olfactory Sensation)
(iv) स्वाद सम्बन्धी संवेदना (Taste Sensation)
(v) स्पर्श सम्बन्धी संवेदना (Tactual Sensation)

नेत्रों के द्वारा हम किसी वस्तु के तीन प्रकार के गुणों को ग्रहण करते हैं अर्थात् वह छोटी है अथवा बड़ी (उसका आकार), वह वस्तु चौकोर है अथवा गोल (उसकी आकृति), वह वस्तु नीली है या गुलाबी (उस वस्तु का रूप) । कान से ध्वनि संवेदन होता है अर्थात् ध्वनि मधुर है अथवा कर्कश, ऊँची है अथवा धीमी । स्पर्श के द्वारा किसी वस्तु का भार, आकार अथवा खुरदरापन जाना जाता है ।

संवेदना के हम दो भेद और भी कर सकते हैं—

(i) गुण भेद (Difference in Quality)

(ii) शक्ति भेद (Difference in Intensity)

नेत्र के द्वारा हम रंगो का ज्ञान प्राप्त करते हैं। नाक के द्वारा हम किसी वस्तु की गन्ध को सूँघते हैं। इसी प्रकार रंगो मे नीला अथवा लाल, इस प्रकार के भेद भी किए जा सकते हैं। यह सभी भेद गुण-भेद की श्रेणी मे आएगे। गुण-भेद के बिना हम संवेदना को संवेदना ही नही कह सकते। तोप की आवाज, बन्दूक की आवाज तथा पटाखे, की आवाज मे अन्तर होता है। इसे हम संवेदना के शक्ति भेद के अन्तर्गत लेंगे।

संवेदना में व्यक्तिगत भेद—

भिन्न-भिन्न व्यक्तियो की संवेदना शक्ति मे अन्तर होता है। पशुओं के सम्बन्ध मे तो यह अन्तर और भी स्पष्ट है। कुत्ते की घ्राण शक्ति बड़ी तीव्र होती है। उसके बल पर वह चोरो का पता लगा लेता है। गीध की आँखें बड़ी तेज होती हैं। वह दूर की वस्तु को भी बड़ी सरलता मे देख सकता है। खरगोश के कान बड़े संवेदनशील होते हैं। थोड़ी सी आहट पाकर ही वह चौकन्ने हो उठते है। ... मे भी पाई जाती है। किसी की दृष्टि ... ध्वनि सम्बन्धी। मनुष्यों मे संवेदन ... इन्हें जन्मजात माना जाता है। ... का कथन है कि हम जिस शक्ति ... जिस शक्ति का

...ber

ने ...

... तथा तीव्रता के ...bner) ने भी अपने ... वेबर तथा फेचनर ... एक अधिनियम दिया

ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण से पूर्व बालकों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। यदि बालक की सुनने की शक्ति कमजोर हुई अथवा उसकी दृष्टि में कोई दोष हुआ तो अध्यापक का प्रयत्न निष्फल हो सकता है।

ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा और श्रीमती मांटेसरी—

फ्रोबेल (Froebel) तथा श्रीमती मांटेसरी (Montessori) दोनों ही ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा पर विशेष बल दिया है। इस सम्बन्ध में श्रीमती मांटेसरी का नाम तो विशेष रूप से प्रसिद्ध है। मांटेसरी शिक्षण-पद्धति (Montessori Method) बैलजियम के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सिगमण्ड (Sigmond) की खोजों पर आधारित है। श्री सिगमण्ड के मतानुसार मन्द बुद्धि के बालकों को, जिन की अवस्था दस से बीस वर्ष तक होती है, मूर्त वस्तुओं के द्वारा सूक्ष्म गुणों का तथा गणित का ज्ञान कराया जाता है। श्रीमती मांटेसरी ने इस शिक्षण पद्धति का प्रयोग छोटी अवस्था के बालकों की शिक्षा में किया। मांटेसरी पद्धति की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(i) जहाँ तक हो सके प्रत्येक इन्द्रिय की शिक्षा, दूसरी इन्द्रिय की शिक्षा से अलग होनी चाहिए।

(ii) बालकों को इन्द्रिय ज्ञान की शिक्षा, स्थूल पदार्थों से सम्बन्धित करके देनी चाहिए।

(iii) इन्द्रिय ज्ञान की शिक्षा के लिए ऐसे उपकरण का निर्माण करना चाहिए जिस पर काम करके बालक अपनी भूल को स्वयं सुधार ले।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए श्रीमती मांटेसरी ने एक ऐसे ही शिक्षोपकरण (Didactic Apparatus) का निर्माण किया जिसके द्वारा बालकों की विभिन्न प्रकार की इन्द्रियों को अलग-अलग करके शिक्षा दी जा सकती है।

मांटेसरी शिक्षण पद्धति की आलोचना—

मनोवैज्ञानिक विलियम स्टर्न (William Stern) ... साईकालोजी आफ़ अर्ली चाईल्ड हुड" (Psycho-

logy of Early Childhood) में, तथा अमेरिका के प्रसिद्ध शिक्षा-विशेषज्ञ विलियम किलपैट्रिक (William Kilpatrick) ने अपनी प्रख्यात पुस्तक "मांटेसरी इक्ज़ैमिण्ड" (Montessori Examined) में, मांटेसरी शिक्षण पद्धति की बड़ी आलोचना की है। उनकी आलोचना का आधार निम्नलिखित है—

(i) श्रीमती मांटेसरी का इन्द्रियों को अलग-अलग करके शिक्षा देने का सिद्धान्त अमनोवैज्ञानिक है। इससे इन्द्रियों के ज्ञान के समुचित विकास में बाधा पड़ती है।

(ii) शिक्षोपकरणों के द्वारा शिक्षा देना बड़ा ही कृत्रिम है। इस से बालक के बौद्धिक विकास में बाधा पड़ती है।

(ii) बालकों की भिन्न-भिन्न मानसिक शक्तियों की शिक्षा का सिद्धान्त (Faculty Psychology) मनोविज्ञान की दृष्टि से गलत है इस प्रकार की शिक्षा से मानसिक विकास नहीं हो सकता।

(iv) इन्द्रिय ज्ञान तथा बौद्धिक ज्ञान की प्रवीणता में कोई आवश्यक समता नहीं है। इन्द्रिय ज्ञान की शिक्षा में अधिक समय लगाना बौद्धिक विकास में रुकावट डालना है।

(v) श्रीमती मांटेसरी की इन्द्रिय ज्ञान की शिक्षा पद्धति वास्तव में निरीक्षण की योग्यता की शिक्षा पद्धति है। इसे इन्द्रिय ज्ञान की शिक्षा पद्धति कहना एक भूल है।

प्रत्यक्ष-ज्ञान किसे कहते हैं—

प्रत्यक्ष ज्ञान (Perception) के सम्बन्ध में पहले कुछ चर्चा की जा चुकी है। जो ज्ञान इन्द्रियों के आधार पर होता है उसे हम संवेदना कहते हैं। परन्तु संवेदना (Sensation) से हमें किसी वस्तु का पूरा ज्ञान नहीं होता। हम पदार्थ को देखते हैं, सूंघते हैं, चखते हैं, स्पर्श करते हैं सुनते हैं। परन्तु निश्चय नहीं कर पाते कि वह पदार्थ कौन सा है। जब हम पदार्थ के सम्बन्ध में किसी निश्चय पर पहुँच जाएँ तो उसे प्रत्यक्षीकरण या प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। यहाँ इस बात का ध्यान रखना होगा कि प्रत्यक्ष ज्ञान का आधार

बालक की क्रियाशीलता—जिस बालक में चंचलता का अंश अधि होगा उसका बाह्य-पदार्थों का ज्ञान भी अधिक विस्तृत होगा। भिन्न-भि वस्तुओं को हाथ में लेना, उन को तोड़ना फोड़ना, इन बातों से बालक पद के गुणों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए अध्यापकों तथा अभिभावकों यह कर्त्तव्य है कि वे बालकों की क्रियाशीलता को सदा प्रोत्साहित करते रं

बालक का भाषा ज्ञान—यह बालकों के प्रत्यक्ष ज्ञान का दूसरा सा है। जो बालक किसी पदार्थ के नाम को नहीं जानता वह उसके गुणों का भी बहुत देर तक स्मरण नहीं रख सकता। दैनिक जीवन में हम देखते हैं कि किसी पदार्थ का नाम सुनते ही, हमें उस पदार्थ के गुणों की याद आजाती है। इसलिए बालकों के प्रत्यक्षीकरण की क्षमता को बढ़ाने के लिए, उनके सामने रखे हुए किसी पदार्थ का, उनसे वर्णन करवाना चाहिए।

बालकों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्रौढ व्यक्तियों से भिन्न होता है। इसका प्रमुख कारण है उनमें अवधान की एकाग्रता की कमी। बालक जैसे-जैसे आयु में बढ़ता है, वैसे-वैसे उस में अवधान को एकाग्र करने की शक्ति भी बढ़ती जाती है। और अवधान की एकाग्रता बढ़ जाने पर उसका प्रत्यक्ष ज्ञान भी बढ़ जाता है।

बालक प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा संवेगों तथा उद्वेगों से अधिक प्रभावित होते हैं। उनका प्रत्यक्ष ज्ञान संवेगों के कारण विकृत हो जाता है। यदि बालक भय की अवस्था में है तो वह प्रत्यक्ष वस्तु को कुछ और ही समझ लेगा। रात्रि में कमरे में पड़ी हुई अलमारी को चोर या भूत समझ कर उससे डरने लगेगा।

निरीक्षण—

निरीक्षण (Observation) से हमारा तात्पर्य है किसी प्रत्यक्ष वस्तु को भली भाँति देखना, उसके गुणों तथा विशेषताओं को समझना तथा अन्य पदार्थों के साथ उसका तुलनात्मक विवेचन करना। निरीक्षण का प्रमुख आधार तो प्रत्यक्ष ज्ञान ही है। परन्तु यहाँ पर हम साथ ही साथ, स्मृति, कल्पना और तर्क शक्ति से भी सहायता लेते हैं। निरीक्षण की क्रिया में अवधान की

एकाग्रता तथा बुद्धि की परिपक्वता पर्याप्त मात्रा मे होनी चाहिए। बालको मे व्यस्कों की अपेक्षा निरीक्षण शक्ति बहुत कम होती है क्योंकि उन का ज्ञान सीमित होता है तथा उनका अवधान भी अधिक समय तक स्थिर नही रह सकता।

निरीक्षण तथा प्रत्यक्ष ज्ञान—निरीक्षण तथा प्रत्यक्षीकरण मे बड़े निकट का सम्बन्ध है। प्रत्यक्ष ज्ञान का प्रमुख आधार संवेदना है। संवेदना के अतिरिक्त स्मृति तथा कल्पना आदि का अंश भी रहता है। जब स्मृति और कल्पना की प्रबलता हो जाती है और हम अच्छी प्रकार से सोच विचार कर किस पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान करते हैं, तब इस प्रकार के ज्ञान को निरीक्षण कहा जा सकता है। निरीक्षण की योग्यता मनुष्य के पूर्ण ज्ञान पर निर्भर करती है।

निरीक्षण के प्रकार—

न्यूमैन (Newman) ने निरीक्षण को तीन भागो में बाँटा है—

(क) हेतुपूर्ण निरीक्षण

(ख) परिस्थितिजन्य निरीक्षण

(ग) प्रयोजनात्मक निरीक्षण

(i) हेतुपूर्ण निरीक्षण (Purposeful Observation)—इस प्रकार के निरीक्षण का कारण है किसी विषय से सम्बन्धित अपनी उत्सुकता को शान्त करना अथवा किसी समस्या का हल करना। यदि हम किसी संग्रहालय मे इस उद्देश्य से जाते है कि राजपूतो और मुगलो की स्थापत्य कला के भेदों को अच्छी प्रकार से समझ सके, उनकी विशेषताओ का ज्ञान प्राप्त कर सकें, तो ऐसी स्थिति मे हमारा निरीक्षण हेतुपूर्ण ही कहलाएगा।

(ii) परिस्थितिजन्य निरीक्षण (Circumstancial Observation)—यह दूसरे प्रकार का निरीक्षण है जो वातावरण अथवा परिस्थिति [illegible] होता है। [illegible] हम अपने घर के आंगन मे बैठे हुए [illegible] दूर से बाज-बाज की आवाज आती है। [illegible] और जब तक हम उस आवाज के कारण

का पता नही लगा लेते,तब तक हमें चैन नही आता। इस प्रकार का नि
भी बड़ा उपयोगी है। यह हमे, जीवन में, कई संकटों से बचा लेता

(iii) प्रयोजनात्मक निरीक्षण (Purposive Observatio
इस प्रकार के निरीक्षण मे न तो हम किसी समस्या को हल करना च
और न ही अपनी किसी जिज्ञासा को ही शान्त करना चाहते हैं। यहाँ
नई परिस्थिति में भी वातावरण का सूक्ष्म अध्ययन करके समस्त बातें
लेना चाहता है। मान लीजिए कि हम जर्मनी या फ्रांस मे जाते हैं। व
भ्रमण करते समय, मन मे कोई विशेष समस्या अथवा जिज्ञासा न हो
भी हम वहाँ के रीति रिवाजो, बोल चाल तथा रहने के ढंग का बडी
से निरीक्षण करते हैं और इन दोनो राष्ट्रों की विशेषताओ को सम
हैं। इस प्रकार का निरीक्षण प्रयोजनात्मक निरीक्षण कहलाएगा।

बालकों को निरीक्षण की शिक्षा—

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि यदि हम बाल
प्रत्यक्ष ज्ञान का समुचित विकास करना चाहते हैं तो हमे उन की नि
शक्ति को बढ़ाना होगा। हस्त-कला सम्बन्धी क्रियाएँ तथा मानचित्र इ
बनवाना, इन सब बातों से बालको की निरीक्षण शक्ति बढ़ेगी। शिक्षा कें
नवीन पद्धतियाँ हैं, जैसे डाल्टन योजना (Dalton Plan) प्रॉजैक्ट प
(Project Method) इत्यादि, वे सब बालको की निरीक्षण शक्ति
पुष्ट करने का प्रयास करती हैं।

पूर्वानुवर्ती ज्ञान—

हम जो प्रत्यक्ष-ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह पूर्व ज्ञान के आधार पर
हमें कुछ ज्ञान तो इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष होता है। और कुछ ज्ञान
अपने पूर्व अनुभव के आधार पर, स्मृति और कल्पना की सहायता से उ
जोड़ लेते हैं। आम को देख कर ही, उसकी मीठेपन से सम्बद्ध कर मे
बर्फ को देखते ही, उसे ठण्डा समझ लेना, यह सब पूर्व ज्ञान के आधार पर
सम्भव होता है। कहावत भी है 'दूध का जला छाछ को फूंक फूंक कर पी

है।' अतएव अध्यापकों को चाहिए कि बालकों को नया ज्ञान, उनके पूर्व ज्ञान के आधार पर ही दिया जाए। इसी मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री हरबार्ट (Herbart) ने पूर्वानुवर्ती ज्ञान (Apperception) का नाम दिया है। उसके पञ्च सोपानों (Five Formal Steps) में पूर्वानुवर्ती ज्ञान को ही प्रमुखता प्रदान की गई है।

१७

समूह मनोविज्ञान
(Group Psychology)

Q. 68. *What do you mean by "group psychology"? Give its characteristics and types. How can a teacher create group mind in the School?* [Agra 1953, 1951]

("समूह मनोविज्ञान" से आपका क्या तात्पर्य है? उसकी विशेषताओं और भिन्न-भिन्न भेदों पर प्रकाश डालो। अध्यापक पाठशाला मे बालकों के सामाजिक मन का विकास किस प्रकार से कर सकता है?) [आगरा १९५३, १९५१]

Q. 69. *What do you understand by "group mind"? Indicate some of the conditions in the formation of a group mind such as may conver your schools into miniature communites.* [Agra 1960]

["सामाजिक मन" का आप क्या अर्थ समझते है? कुछ ऐसी परिस्थितियों का उल्लेख करो जो सामाजिक मन के विकास में सहायक हों तथा जिन के आधार पर पाठशालाएँ, समाज के लघु रूप मे परिणित हो जाएँ।) [आगरा १९६०]

Q. 70. *How does a crowd differ form a community? How would you build a well organized school community?*

(भीड़ और समाज के अन्तर को आप कैसे स्पष्ट करेंगे? पाठशाला के सामाजिक जीवन की व्यवस्था आप कैसे करेंगे?)

उत्तर—समूह—

बालक अपने जन्म से ही किसी न किसी समूह का सदस्य होता है। पहले पहल उसका सम्बन्ध अपने परिवार (Family) के साथ होता है। कुछ समय के पश्चात् जब वह चलना सीखता है तो उसे अपनी अवस्था के बालक मिल जाते हैं। इस समय वह परिवार के साथ ही साथ अपनी मित्र-मण्डली (Peer group) का भी सदस्य होता है। बाद मे वह पाठशाला मे जाने लगता है पाठशाला भी एक सामाजिक समुदाय (Social group) है जहाँ बालक को अनेकों नए साथी मिलते हैं। इन सब बातो से यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के बिना अकेला नही रह सकता।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो यह बात हमारे सामने आएगी कि मनुष्य मे कितनी ही मूल-प्रवृत्तियाँ (Instincts) ऐसी हैं, जिन की तृप्ति समाज मे रह कर सम्भव हो सकती है। उदाहरण के रूप मे आत्म गौरव (Self Assertion) की प्रवृत्ति को लिया जा सकता है। अब इसकी तुष्टि वही सम्भव हो सकती है जहाँ दूसरे लोग भी हो। हम अपनी शक्ति, धन, मान-मर्यादा, सौन्दर्य, विद्या, बुद्धि का प्रदर्शन वही कर सकते हैं जहाँ लोग हो तथा जिन को हम अपनी इन बातो से प्रभावित कर सकें। इसी प्रकार मनुष्य में दीनता की प्रवृत्ति (Submission) होती है। इस प्रवृत्ति के अनुसार हम दूसरो की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। परन्तु यह भी वही सम्भव हो सकता है जहाँ समुदाय अथवा समूह हो। इसी प्रकार दूसरी कई प्रवृत्तियाँ जैसे अनुकरण (Imitation), निर्देश (Suggestion) तथा सहानुभूति (Sympathy) आदि के लिए भी समाज या समुदाय की आवश्यकता पड़ेगी। यदि हम अकेले रहते है, तो किस का अनुकरण करेंगे, किससे निर्देश ग्रहण करेंगे तथा किस के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करेंगे।

समूह-मन (Group Mind)—

उपरोक्त विवरण से यह बात साफ हो गई होगी कि मनुष्य का विकास समाज मे रह कर ही सम्भव हो सकता है। व्यक्ति की अपेक्षा समाज अधिक

महान है। समाज की शक्ति और मान-मर्यादा भी व्यक्ति से कहीं प्रबल है। इसलिए व्यक्ति समाज के निर्देश को झट पट ग्रहण कर लेता है। किसी समुदाय के बीच मे व्यक्ति दूसरो के समान सोचता और कार्य करता है। वह अपने व्यक्तित्व को समुदाय के व्यक्तित्व में लीन कर देता है। उसका मन समूह मन बन जाता है। ऐसी स्थिति मे कोई भी व्यक्ति समूह-मन के प्रकाशन का एक साधन-मात्र रह जाता है। सामूहिक मन से जो कार्य होते हैं, वे उन कार्यों से भिन्न होते हैं, जिन्हें कोई मनुष्य अपने व्यक्तिगत रूप मे करता है। साधारण रूप से शान्त स्वभाव का व्यक्ति भी समुदाय मे आकर, सदैव में बह जाता है। इसलिए तो दंगो इत्यादि में बड़े कोमल-हृदय व्यक्ति भी बड़े क्रूर कर्म कर उठते हैं। निडर व्यक्ति भी जब अपने आस-पास के लोगों को भय से कांपता देखता है, तो अपनी सारी हिम्मत खो बैठता है। बहुत से अच्छे कार्य भी लोग इसलिए करते हैं कि वे समूह या समुदाय को अच्छे लगते हैं।

यदि समूह में निम्न योग्यता के या अनपढ़ व्यक्ति हैं तो सामूहिक मन का स्तर नीचा होगा। परन्तु यदि समूह मे योग्य व्यक्ति हैं तो सामूहिक मन का स्तर ऊँचा होगा। इतना होने पर भी यह कहा जा सकता है कि साधारण रूप से समूह उतना अच्छा नही हो सकता जितना कि कोई व्यक्ति। भीड़ के असभ्य आचरण से तो सभी लोग परिचित हैं ही। वैसे तो हम जो काम करते हैं, सोच समझ कर ही करते हैं। परन्तु लोग जब भीड़ मे होते हैं तो बिल्कुल नही सोचते। सोचने की आवश्यकता भी नहीं समझते। भीड़ जो कुछ कर रही है उसका अन्धाधुन्ध अनुकरण करने लगते हैं। बरात के लोग, इसी भीड़ भावना से प्रेरित हो कर ही कितना उत्पात मचाने लगते हैं। जो विद्यार्थी अपने व्यक्तिगत जीवन में बड़े शिष्ट एवं सभ्य रहते हैं, उन सब का आचरण मेलों तथा अन्य मनोरंजन के केन्द्रों मे कितना निन्दनीय हो जाता है। उनकी व्यक्तिगत विशेषताएँ दब जाती हैं तथा समूह मन प्रबल हो उठता है। मनुष्य में जो बर्बरता, तथा पाशविकता है, उनको भीड़ में फिर से उभरने का मौका मिल जाता है।

समूहों का वर्गीकरण (Classification of Groups)—

मैकडूगल (Mc Dougall) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "ग्रुप माइण्ड" (Group Mind) में समूहों को दो भागों में विभाजित किया है—

(i) स्वाभाविक

(ii) कृत्रिम

स्वाभाविक वर्ग के उसने दो और भाग किए हैं—रक्त सम्बन्धी तथा भौगोलिक। कृत्रिम विभाग में तीन प्रकार के वर्ग आ जाते हैं—(i) प्रयोजनात्मक (Purposive), (ii) पारम्परिक (Traditional) तथा (iii) मिश्रित (Mixed)। इन सब को एक तालिका के रूप में इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—
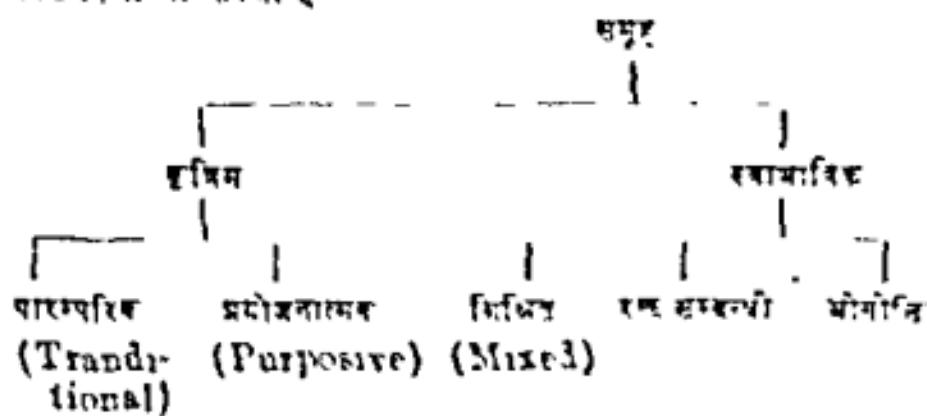
समूह

- कृत्रिम
  - पारम्परिक (Trandi-tional)
  - प्रयोजनात्मक (Purposive)
  - मिश्रित (Mixed)
- स्वाभाविक
  - रक्त सम्बन्धी
  - भौगोलिक

ड्रेवर (Drever) अपने प्रख्यात ग्रन्थ "एन इन्ट्रोडक्शन टू एजूकेशनल साइकोलोजी" (An Introduction to Educational Psychology) में सभी प्रकार के समूहों के तीन वर्ग बताए हैं—(i) भीड़ (Crowd), (ii) गोष्ठी (Club) तथा (iii) समाज (Community)। इनको तालिका के रूप में ऐसे प्रकट करेंगे—

समूह

- भीड़ (Crowd)
- गोष्ठी (Club)
- समाज (Community)
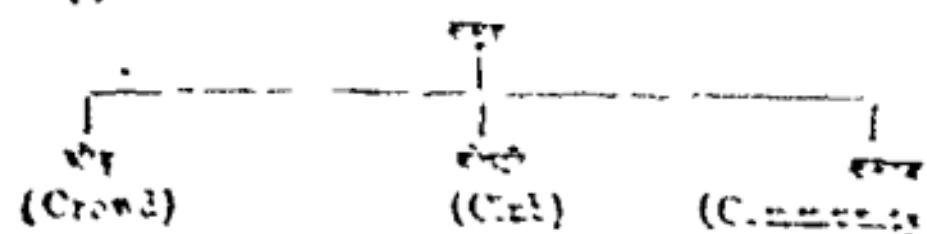
इस प्रकार हम देखते है कि समूहो का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है। यहाँ हम ड्रेवर (Drever) के वर्गीकरण के अनुसार, समूह के भिन्न-भिन्न वर्गों का उल्लेख करेंगे।

भीड़ (Crowd)—इसे हम सब से घटिया किस्म का समूह कह सकते हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमे स्थायित्व नही होता। किसी घटना विशेष के हो जाने पर लोग थोड़े से समय के लिए एकत्रित हो जाते हैं और थोड़ी देर बाद अलग-अलग होकर अपने काम पर लग जाते हैं। भीड़ का कोई निश्चित समान उद्देश्य नही होता। इसलिए उनका पारस्परिक बन्धन शिथिल होता है। अनुकरण, निर्देश तथा सहानुभूति की वृत्तियाँ कुछ सीमा तक सक्रिय हो उठती है। मान लीजिए एक युवती मिट्टी के बर्तन ले कर जा रही है। सामने से एक साईकिल वाला बड़ी तेजी से आता हुआ उसे टक्कर मारता है। वह बेचारी गिर पड़ती है और उसके मिट्टी के बर्तन टूट जाते हैं। इस घटना के हो जाने पर एकाएक भीड इकट्ठी हो जाती है। उनके मन मे युवती के प्रति सहानुभूति की भावना उभर आती है। कोई कहता है, मारो साईकिल वाले को। कोई कहता है वह बर्तनों के पैसे दे। ऐसी स्थिति मे यदि साईकल वाला वाद-विवाद करने लगेगा तो हो सकता है कि भीड बढ जाए और मारपीट की नौबत भी आ जाए। साईकल वाला यदि क्षमा याचना कर लेता है और अपनी क्षमता के अनुसार कुछ पैसे दे देता है तो मामला वहीं समाप्त हो जाएगा और भीड तितर-बितर हो जायगी। अब यहाँ भीड मे इकट्ठे होने वाले लोगो के सामने कोई निश्चित उद्देश्य नहीं। कुछ लोगों का यह कहना कि भीड मे एकत्रित होने वाले लोगो का कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होता है, भ्रमात्मक है। मेलों में, बाजारो में, नदियों के घाट पर तथा सिनेमा आदि मनोरञ्जन के केन्द्रों पर इकट्ठे हुए लोग भीड कहे जा सकते हैं। इन लोगो की सामूहिक क्रियाएँ तथा विचार और संवेग क्षणिक होते हैं।

गोष्ठी (Club)—भीड़ से ऊँची श्रेणी में हम गोष्ठी को ले सकते हैं। इसमें भीड़ की अपेक्षा स्थायित्व की मात्रा कहीं अधिक होती है। भीड़ का तो कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता, परन्तु किसी निश्चित उद्देश्य को पूरा

करने के लिए ही गोष्ठी (Club) की स्थापना की जाती है। गोष्ठी का उद्देश्य कुछ भी हो सकता है जैसे—स्वास्थ्यवर्द्धन, मनोरंजन करना, खेलना, नवोदित साहित्यकारों को प्रोत्साहन देना, व्यापारवृद्धि इत्यादि। परन्तु इस बात का ध्यान रखना होगा कि गोष्ठी का उद्देश्य सीमित होता है। वह जीवन के किसी छोटे अंश की ही पूर्ति करती है। समस्त जीवन की समस्याओं को सुलझाना, उसका उद्देश्य नहीं होता। प्रत्येक गोष्ठी के अपने कुछ नियम होते। इन नियमों का पालन करना सदस्यों के लिए आवश्यक है। नियमों का उल्लंघन करने पर सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कारवाई भी की जा सकती है। इस दृष्टि से देखने पर हम कह सकते हैं कि भीड़ की अपेक्षा गोष्ठी का संगठन अधिक व्यवस्थापूर्ण होता है तथा इस का प्रयोजन भी भीड़ की तुलना में, उच्च होता है। भीड़ को जहाँ हम प्रत्यक्षात्मक कोटि (Perceptual level) का समूह कह सकते हैं, वहाँ गोष्ठी का प्रमुख आधार विचारात्मक (Ideational level) होता है।

समाज (Community)—सब प्रकार के समूहों में, समाज का स्थान सब से ऊँचा होता है। इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। जीवन का प्रत्येक अंश इस में सम्मिलित होता है। जहाँ गोष्ठी का उद्देश्य सीमित होता है, वहाँ समाज का उद्देश्य इतना विस्तृत तथा व्यापक होता है कि समाज का प्रत्येक सदस्य उसके द्वारा अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति कर सकता है। प्राध्यापक, वैद्य, दुकानदार, व्यापारी, कृषक, संगीतज्ञ, अभिनेता आदि हो कर भी व्यक्ति सामाजिक उद्देश्य के अनुसार कार्य कर सकता है। समाज का प्रमुख उद्देश्य एक होते हुए भी, वह व्यक्तियों की स्वतन्त्र सत्ता का विनाश नहीं करता। इसके विपरीत यहाँ तक कहा जा सकता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास केवल समाज के अन्दर रह कर ही सम्भव हो सकता है। व्यक्ति अलग-अलग होते हुए भी एक सूत्र में पिरोये रहते हैं। अन्त में ड्रेवर (Drever) के शब्दों में हम कह सकते हैं कि—

> "सामाजिक समूह, एक उच्चकोटि के मनोवैज्ञानिक विकास पर पहुँचा हुआ होता है। इसमें सामान्य परम्पराओं तथा स्थायी भावों के अतिरिक्त प्रयोजन एवं आदर्श भी होता है। समाज का क्षेत्र व्यक्ति के

किसी विशिष्ट क्षत्र तक ही सीमित नहीं रहता। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन की सभी बातें आ जाती हैं।"

Drever—Introduction to Educational Psychology—Page 21

पाठशाला का सामाजिक जीवन—

पाठशाला समाज का एक छोटा सा स्वरूप है। इसका क्षेत्र न तो गोष्ठी (Club) की भांति बहुत सीमित ही रहता है और न समाज (Community) के समान अत्यन्त व्यापक ही। पाठशाला में सामाजिक जीवन का निर्माण किस प्रकार किया जाए, इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैकडूगल (Mc Dougal) ने अपनी विख्यात पुस्तक "ग्रुप माइंड" (Group Mind) में कुछ आवश्यक बातों की चर्चा की है। उसी को आधार मान कर हम भी, यहाँ पर इस विषय का विवेचन करेंगे।

(१) स्थायित्व (Continuous Existence)—पाठशाला के सामाजिक जीवन के विकास के लिए यह आवश्यक है कि इस समूह में कुछ स्थायित्व हो। भीड़ के समान लोगों का क्षणिक मिलन न हो। रेलगाड़ी में भी लोग इकट्ठे होते हैं तथा खेल, तमाशों में भी नित्य नए लोग एकत्रित होते है परन्तु समूह को हम समाज नहीं कह सकते। पाठशाला में शिक्षार्थीगण कुछ वर्षों तक साथ-साथ रहते हैं। अध्यापक लोग भी प्रायः स्थायी रूप से ही वहाँ रहते हैं। जिन पाठशालाओं में बोर्डिंग हाउस की व्यवस्था होती है वहाँ तो छात्रों का परस्पर सम्पर्क और भी अधिक होता है। इस स्थायित्व के कारण ही पाठशाला गोष्ठी तथा भीड़ से काफी ऊँची अवस्था में है।

(२) समूह के प्रति चेतना (Group Consciousness)—पाठशाला के सामाजिक जीवन की दूसरी विशेषता यह है कि समूह का हर एक सदस्य समूह के साथ अपने सम्बन्ध को समझे। जब तक विद्यार्थियों के मन में यह समूह के प्रति चेतना का भाव न होगा तब तक वे पाठशाला के लिए त्याग कैसे करेंगे? पाठशालाओं में जो वार्षिक उत्सव मनाए जाते हैं, नाटक आदि खेले जाते हैं, तथा कई प्रकार की खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया

जाता है। उनका एक मात्र उद्देश्य यही होता है कि विद्यार्थियों में इस प्रकार की चेतना को उत्पन्न करना।

(३) दूसरे समूहों से सम्पर्क—बालकों में सामाजिक भावना का विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि उनका सम्पर्क ऐसे समूह के साथ भी आवे जिनका उद्देश्य तथा आदर्श भिन्न है। इस प्रकार के अन्य समूहों से सम्पर्क स्थापित होने पर विद्यार्थियों में सहकारिता, प्रतियोगिता तथा स्पर्धा इत्यादि की भावनाओं का विकास होगा। भिन्न-भिन्न पाठशालाओं के बालक, अपनी पाठशाला को विजयी देखना चाहेंगे और इसलिए वे अपनी पाठशाला के लिए अधिक से अधिक त्याग करने को भी प्रस्तुत रहेंगे। परन्तु इस बात का ध्यान रखा जाए, कि कहीं यह प्रतिद्वन्द्विता, शत्रुता का रूप ही न धारण कर ले।

(४) सामाजिक परम्परा (Body of Traditions)—पाठशाला में सामाजिक जीवन के विकास के लिए यह आवश्यक है कि समूह की एक अपनी परम्परा हो। परम्परा ऐसी हो जिस पर सभी सदस्य गर्व का अनुभव कर सकें। जो विद्यालय पढ़ाई या खेलों में सदा आगे रहता है, उसकी परम्परा की रक्षा करने के लिए छात्रगण सर्वदा प्रस्तुत रहेंगे। उदाहरण स्वरूप राजस्थान की विद्या भवन संस्था की अपनी एक विशिष्ट परम्परा है। वहाँ संगीत, नृत्य, सरस्वती यात्रा (Picnics), चल चित्र, अभिनय, खेल इत्यादि को भी उतना ही महत्व दिया जाता है जितना कि किताबी पढ़ाई को। विद्यार्थियों का सदा यही प्रयत्न रहता है कि वे पाठशाला की परम्परा को बनाए रखें।

(५) कर्तव्यों का विभाजन—श्री मैकडूगल (Mc Dougall) के मतानुसार पाठशाला के सामाजिक जीवन की पाँचवी विशेषता यह है कि कर्तव्यों का उचित विभाजन किया जाए। विद्यार्थियों को, उनकी रुचि और योग्यता के अनुसार ही काम सौंपा जाए। कोई विद्यार्थी खेल में अधिक [illegible] है कोई विद्यार्थी पढ़ाई में। किसी की रुचि संगीत की ओर [illegible] की ओर। कर्तव्यों का ठीक-ठीक विभाजन

हो जाने पर, प्रत्येक व्यक्ति को आत्म अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है
काम भी अच्छा होता है।

Q. 71 What are the main qualities of a leader? W
measures must be taken in a school to train children
leadership. [Panjab 1952 Sup

(नेता के अन्दर कौन-कौन से गुण होने चाहिए? बालकों में ने
का निर्माण करने के लिए, पाठशाला में किस बात की व्यवस्था
जाए? [पंजाब १९५२ सप्ली

Q 72. What qualities would you look for and detect i
pupil for leadership? How would you develop them?
[Panjab 1950 Sup.

(बालकों के कौन से गुणों को देखकर आप कह सकते हैं कि अ
नेतृत्व करने की शक्ति? ऐसे गुणों का विकास आप कैसे करेंगे?
[पंजाब १९५० सप्लो

Q. 73 Discuss the characteristics of leadership at differe
ages in a school population. [Panjab 1956, 195

(पाठशाला में भिन्न-भिन्न आयु के विद्यार्थियों में नेतृत्व की कौ
कौन सी विशेषताएँ पाई जाती हैं?) [पंजाब १९५६, १९५

अच्छे नेता की विशेषाएँ—

(१) **आत्म-गौरव की भावना (Self Assertion)**—नेतृत्व
लिए सबसे प्रथम आवश्यक गुण है, आत्म गौरव की भावना। जिस
बालक में आत्म-गौरव की भावना पाई जाती है, वही आगे जा कर एक अच्छा
नेता बन सकता है। जिस बालक में दैन्य-प्रवृत्ति की भावना (Submi
ssion) तीव्र रूप में होगी है, वह एक अच्छा अनुयायी तो बन सकता है
परन्तु एक अच्छा नेता नहीं।

(२) **दृढ़-इच्छा शक्ति (Strong will Power)**—नेतृत्व करने के
लिए दृढ़-इच्छा शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। जिस व्यक्ति में दृढ़-इच्छा
शक्ति का अभाव होगा, वह किसी भी समुदाय का नेतृत्व करने में कभी भी

सफल नहीं हो सकेगा। वह जो काम भी करना चाहेगा उसमें स्थिर नहीं रह सकेगा। दृढ़-इच्छा शक्ति से आत्म विश्वास की भावना का निर्माण होगा। दृढ़-इच्छा शक्ति के और आत्म-विश्वास के बिना, कोई भी व्यक्ति, अपने अनुयाइयों में, विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकेगा और न ही उन पर अपना प्रभाव ही डाल सकेगा।

(३) बहिर्मुखी भावना (Fxtrovert Tendencies)—जिन बालकों में बहिर्मुखी प्रवृति पाई जाती है, वो ही आगे जाकर अच्छे नेता बन सकते हैं। अन्तर्मुखी बालक अच्छा लेखक बन सकता है, अच्छा दार्शनिक बन सकता है, अच्छा वैज्ञानिक बन सकता है परन्तु वह किसी समुदाय का ठीक-ठीक प्रकार से नेतृत्व नहीं कर सकता। वह तो अपने मन के संसार में ही व्यस्त रहता है और बाहरी कार्यों के लिए, उसके पास बिल्कुल समय ही नहीं होता।

(४) उच्चकोटि की जन्मजात बुद्धि (Superior Innate Intelligence)—नेता को बहुत सी विकट समस्याओं को हल करना पड़ता है। और कई बार तो उसको तुरन्त ही निर्णय करना पड़ता है। कभी-कभी अनेकों कठिन परिस्थितियों के अनुसार उसको सन्तुलन करना होता है। यह सब कुछ करने के लिए उच्च-कोटि की बुद्धि (Intelligence) होनी चाहिए।

(५) अच्छी वक्तृत्व शक्ति (Power of Eloquence)—नेता का वास्ता कई समुदायों (Groups) से पड़ता है। वह अपने भाषणों द्वारा ही उन समुदायों के सदस्यों से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। इसलिए नेता को एक अच्छा भाषण कर्ता होना चाहिए। जितने भी धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक नेता हैं, वे सब अच्छे वक्ता होते हैं। केवल ऐसे ही बालकों को नेतृत्व के लिए चुनना चाहिए जो अपने भाषणों के द्वारा दूसरों को प्रभावित कर सकें। इस कार्य के लिए उनका अध्ययन तथा ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए।

(६) व्यवहारिकता का गुण (Quality of Being a Practical man)—ऐसा व्यक्ति नेता नहीं बन सकता जो केवल दिवा-स्वप्न (Day

बालकों के नेता—

किशोर अवस्था से पूर्व, खेलने वाले बालकों के जो समुदाय (Play Groups) पाये जाते हैं, उन में किसी प्रकार की स्थिरता नहीं पाई जाती क्रिया की समाप्ति के पश्चात् इस प्रकार के समुदाय प्रायः भंग कर दिए जाते हैं। इस प्रकार के समुदायों के नेता भी निश्चित नहीं होते। आत्म-गौरव की प्रवृत्ति रखने वाले बालक आगे आकर ऐसे समुदायों का नेतृत्व करते हैं। जिस प्रकार ऐसे समुदाय नित्य प्रति बदलते रहते हैं उसी प्रकार इनके नेता भी बदलते रहते हैं। इस प्रकार के समुदायों से और लाभ हो या न हो परन्तु इतना अवश्य पता लग जाता है कि किन-किन बालकों में नेता होने योग्य गुण पाए जाते हैं।

किशोरों (Adolescents) के नेता—किशोर अवस्था के बालकों में सामुदायिकता (Group Life) की भावना विशेष रूप से पाई जाती है। किशोर अवस्था के बालक आमतौर पर समुदायों (Gangs) में ही रहते हैं। इस प्रकार के समुदायों में एकता की भावना होती है। इनके अपने कुछ नियम होते हैं जिनका पालन सभी सदस्यों को करना पड़ता है। सभी सदस्य अपने नेता के प्रति वफादार होते हैं तथा नेता में भी निस्वार्थता की भावना पाई जाती है। किशोरों के इन समुदायों में स्थिरता की मात्रा अधिक होती है। नेता समुदाय के सभी सदस्यों के लिए एक आदर्श (Model) होता है तथा अवचेतन रूप में उन सब के प्रभाव को ग्रहण भी करता है। नेता तथा समुदाय (Gang) के सदस्य दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जिस प्रकार एक बुरा नेता, पूरे के पूरे समुदाय को बिगाड़ सकता है, उसी प्रकार यदि किसी समुदाय में बुरे बालक होंगे तो वे अपने नेता को भी उसी दिशा में ले जाएँगे।

१८

विकास की अवस्थाएं
(Stages of Development)

Q 74 What are the different stages of development? Enumerate in brief the main characteristics from birth to five.

(विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ कौन-कौन सी हैं ? स्पष्ट करो। जन्म से लेकर पाँच वर्ष तक के बालक में कौन-कौन सी विशेषताएँ पाई जाती हैं ?)

उत्तर—जब से बालक का जन्म होता है, तभी से उसका विकास प्रारम्भ हो जाता है। आमतौर पर बालकों के विकास की अवस्थाएँ निम्नलिखित रूप में मानी जाती हैं—

जन्म से ६ वर्ष तक	शैशव अवस्था
६ वर्ष से १२ वर्ष तक	बाल्य अवस्था
१२ वर्ष से १८ वर्ष तक	किशोर अवस्था

रॉस (Ross) ने बालकों के विकास का क्रम इस प्रकार से दिया है—

१ वर्ष से ३ वर्ष तक	शैशव काल
३ वर्ष से ६ वर्ष तक	पूर्व बाल्य काल
६ वर्ष से १२ वर्ष तक	उत्तर बाल्य काल
१२ वर्ष से १८ वर्ष तक	किशोर अवस्था

इतना सब होने पर भी निश्चित रूप से यह कुछ नही कहा जा सकता कि किस दिन एक अवस्था को पार करके बालक दूसरी अवस्था मे पदार्पण करेगा।

जन्म के पश्चात् बालक के विकास मे नीचे लिखी बातें देखी जा सकती है—

(i) विकास सिर से प्रारम्भ होता है और पैरो तथा हाथो की ओर जाता है।

(ii) प्रारम्भ मे बालक किसी पदार्थ को पूर्ण रूप मे ही ग्रहण करता है, बाद मे उसके अंगो का ज्ञान उसे होता है।

(iii) शुरू-शुरू मे बालक पूरे पैरों तथा हाथो को काम मे लाता है, बाद में कलाई, अगुलियों आदि को।

(iv) प्रारम्भ में बालक दोनो हाथो का प्रयोग करता है। कुछ समय के पश्चात् धीरे-धीरे वह एक हाथ का भी प्रयोग करने लगता है।

(v) और अवस्थाओं की अपेक्षा शैशव काल में विकास अधिक तीव्र गति से होता है।

विकास के सिद्धान्त—

(क) क्रमिक विकास का सिद्धान्त—पहले के मनोवैज्ञानिक इस सिद्धान्त मे विश्वास रखते थे कि बालकों का विकास निश्चित सोपानों में होता है। एक सोपान में कुछ विशिष्ट शक्तियों और गुणों का विकास प्रारम्भ होकर अपनी पूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लेता है। रूसो (Rousseau) की शिक्षा-योजना भी यही सिद्धान्त मानकर चलती है। उसके मतानुसार बारह वर्ष से पूर्व बालकों में तर्क शक्ति का विकास नहीं होता। अतएव बारह वर्ष से पहले बालकों को कोई तर्क सम्बन्धी विषय न पढ़ाया जाए। स्मृति का विकास बचपन में ही होने लगता है। अतएव आवश्यक वस्तुओं को कंठस्थ कराने का काम इसी अवस्था में ही होना चाहिए। इस सिद्धान्त को क्रमिक विकास (Periodic Development) का सिद्धान्त कहते हैं।

(ख) सम विकास का सिद्धान्त—आजकल मनोवैज्ञानिकों द्वारा ऐसा माना जाता है कि बालको की सभी शक्तियो का विकास, एक साथ ही चला करता है। केवल कुछ विशेष शक्तियों की प्रबलता तथा उनकी प्रकाशन की दिशा मे कुछ अन्तर अवश्य रहता है। इसे सम विकास (Concomitant Development) का सिद्धान्त कहा जाता है।

अब बालको के विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओ का वर्णन किया जाएगा—

शैशव अवस्था—

विकास की सभी अवस्थाओ में शैशव काल का ही महत्व अधिक है। न्यूमैन (Newman) के मतानुसार "पाँच वर्ष तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिए बडी ग्रहणशील रहती है।" फायड (Freud) का कथन है कि "मनुष्य को जो कुछ बनना होता है, प्रारम्भ के चार पाँच वर्षो मे ही बन जाता है।" एडलर (Adler) ने कहा है कि "शैशव अवस्था के द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्चित होता है।"

शैशवावस्था की विशेषताएँ—(१) शिशु को दूसरो पर निर्भर रहना पड़ता है। वह अपने खाने पीने तथा वस्त्र आदि के लिए, अपने माता-पिता, अथवा अभिभावको पर आश्रित रहता है। इन शारीरिक आवश्यकताओ के अतिरिक्त उसे स्नेह तथा सहानुभूति आदि के लिए भी दूसरों का मुख देखना पड़ता है।

(२) बालक के जीवन के अधिकांश व्यापार, मूल-प्रवृत्तियों (Instincts) द्वारा नियन्त्रित होते है। यदि वह रूठ जाएगा तो अपने क्रोध को वाणी से, शरीर से तथा क्रिया से अवश्य ही प्रकट करेगा। भूख लगने पर जो भी वस्तु उसके हाथ मे आएगी, मुँह में डाल लेगा। वह किसी भी प्रकार की उपादेयता का कोई विचार नही करता।

(३) शैशव अवस्था मे आत्म-प्रेम की भावना बडे तीव्र रूप में पाई जाती है। जहाँ बालक यह चाहता है कि माता-पिता तथा बहनों, भाइयों का स्नेह उसे प्राप्त हो वहाँ वह यह भी चाहता है कि वह स्नेह उससे अन्य भाई

बहनों को न मिले । इसीलिए वह अपने भाई बहनों मे ईर्ष्या करता है। जो खिलौना दिया जाता है, उसे भी वह अपने पास रखना चाहता है और किसी दूसरे को देना नहीं चाहता। वह खेलने के लिए भी किसी अन्य के साथ पसन्द नही करता।

(४) शैशव काल कल्पना से पूर्ण होता है। बालक मे कल्पना की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वह कल्पना और सत्य में अन्तर नहीं कर पाता थार्नडाईक (Thorndike) के मतानुसार तीन से छः वर्ष तक के बालक प्रायः अर्द्ध स्वप्नो की दशा में रहते हैं। छोटे-छोटे बालक जो झूठ बोला करते हैं, वह भी इस कल्पना की अधिकता के कारण ही।

(५) इस अवस्था के बालको मे आवृत्ति करने की मात्रा बडी प्र होती है। जो कुछ भी उन्हे कहा जाएगा, उसे वे उन्ही शब्दों मे दोहरा दें

(६) ऐसा समझा जाता है कि बालक काम-विषयक (Sex) बा मे किसी भी प्रकार की रुचि नहीं रखते। परन्तु आज के युग के मनोविश्लेष वादी (Psycho-analysts) इस मत को नही मानते। उनका कथन कि शिशु में काम-भावना बडी प्रबल पाई जाती है यद्यपि उसका प्रकार प्रौढो के समान नहीं होता। मनोविश्लेषणवादी, बालको मे पाई जाने वा आत्म-प्रेम की भावना को भी काम-प्रवृति के अन्तर्गत ही गिनते हैं।

शिशु की शिक्षा—

अध्यापको का तथा माता पिता का कर्त्तव्य है कि बालको के उन गुण को प्रकाशित करें, जो अभी अर्ध विकसित दशा में हैं। भारतीय शिक्षण-पद्धति के अनुसार बालक की शिक्षा का प्रारम्भ उसी समय से हो जाता है जब कि वह माता के गर्भ मे होता है। माता के स्वास्थ्य तथा मानसिक भाव का प्रभाव गर्भ मे स्थित भ्रूण पर भी पड़ता है। इसलिए बच्चे के गर्भ में आजाने पर माता-पिता को विशेष रूप से सावधान रहना चाहिए। और माँ को इस बात का विशेष यत्न करना चाहिए कि वह शारीरिक तथा मानसिक दोनों दृष्टियों से पूर्ण स्वस्थ हो।

जन्म के पश्चात्, माता-पिता को बड़े प्रेम और स्नेह से बच्चे का

पालन-पोषण करना चाहिए। प्रेम और स्नेह का बालक के नाड़ी मण्डल पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है और उस का विकास उचित दिशा में होता है।

बालकों के जीवन में संगीत को भी उचित स्थान दिया जाना चाहिए। संगीत के द्वारा बालकों के विभिन्न अवयवों का व्यायाम अपने आप ही हो जाएगा।

इस बात का प्रयास करना चाहिए कि बालकों को खेलने की आदत पड़ जाए। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकेगा जब कि बालकों को खेलने के लिए खिलौने तथा अन्य उपकरण प्रदान किए जाएंगे। खेलने वाले बच्चे अपनी माताओं को तंग नहीं करते और न ही अधिक हठ करते हैं।

आत्माभिव्यक्ति का सबसे उत्तम साधन मातृभाषा का प्रयोग है। बालकों को छोटी-छोटी कविताएँ, कहानियाँ तथा भजन इत्यादि कण्ठस्थ करवा देने चाहिएं। किण्डर गार्टन (Kinder Garten) तथा मांटेसरी (Montessori) पद्धतियों में खिलौनों के द्वारा बालकों को वर्णों का परिचय कराया जाता है।

छोटे-छोटे बालक, अपनी ही अवस्था के बालकों के समुदाय में जाना पसन्द करेंगे। इसलिए यदि बालक बाहर खेलने जाना चाहें तो उन्हें मना नहीं करना चाहिए। अपनी अवस्था के बालकों में ही, वे सामाजिकता का पाठ ग्रहण करते हैं।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि छोटे-छोटे बालकों को इस प्रकार का वातावरण मिले जहाँ उनकी 'कौतूहल' की भावना का विकास हो सके। ऐसा होने पर उनमें अनुसंधान तथा अन्वेषण शक्ति का निर्माण हो सकता है।

Q 75. Mention the psychological characteristics of children between six and eleven years of age. Discuss the suitability of the activity of education during this period of a child's life.

(छः से ग्यारह वर्ष तक की आयु के दौरान बच्चों की मानसिक एवं संवेगात्मक विशेषताएँ क्या होती हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए कि आधुनिक शिक्षा-क्रम एवं शिक्षण-पद्धति इन का क्या ध्यान रखते हैं?)

की पुनरावृत्ति है, जो सृष्टि के प्रारम्भ से उनके पूर्वज करते आए हैं। कार्ल ग्रूस (Karl Groose) के अनुसार खेलो के द्वारा व्यक्ति अपने आगामी जीवन की तैयारी करता है।

शैशव काल मे बालक जो खेल खेलता है उसका आधार प्रत्यक्ष-ज्ञान (Perceptual) ही होता है। उदाहरण स्वरूप खिलौनो से खेलना-गेंद फेंकना इत्यादि इसी प्रकार के खेल हैं। इस अवस्था मे बालक सामूहिक खेलो में भाग लेते है। वे ऐसे खेलो को पसन्द करते हैं जिनमे कुछ तोडना फोडना पडे, कुछ निर्माण करना पडे, अथवा जिनमे स्वतन्त्र गति की प्रधानता दी जाए।

(७) भाषा का विकास—शैशव अवस्था मे बालक का भाषा सम्बन्धी विकास बहुत कम होता है। परन्तु बाल्यावस्था मे यह भाषा सम्बन्धी विकास बड़ी तीव्र गति से होता है। बालको की भाषा बहुत शुद्ध नही होती। वे इस अवस्था मे अपने विचारो को साधारण भाषा मे ही व्यक्त कर सकते हैं। इस अवस्था मे बालको को कहानियाँ बहुत प्रिय होती हैं, इसलिए वे कहानियो की पुस्तकें ही पढ़ा करते हैं।

बाल्यावस्था और शिक्षा—

ऊपर बाल्यावस्था की जिन विशेषताओं की चर्चा की गई है, उसके आधार पर यह स्पष्ट हो गया होगा कि इस अवस्था मे बालक मे क्रियाशीलता (Activity) की प्रधानता होती है। इसलिए बालक की शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए, जिससे क्रियाशीलता की भावना का पोषण हो। किण्डर गार्टेन पद्धति (Kinder garten Method) तथा मॉन्टेसरी पद्धति (Montessori Method) आदि विधियो मे क्रिया के आधार पर ही शिक्षा (Activity Education) का आयोजन किया गया है।

[illegible]

होने लगता है। लड़कियों के शरीर में रजोदर्शन के पश्चात् कई परिवर्तन होते हैं। उनमे रक्तहीनता आ सकती है और वे थोड़े से परिश्रम के पश्चात् भी थक जाती है।

किशोरावस्था की चाल मे काफी अन्तर आ जाता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़को की आवाज काफी भारी हो जाती है।

(ii) मानसिक परिवर्तन—शैशवकाल के बालक के समान किशोर के मन मे भी अस्थिरता का भाव आ जाता है। उसे अचानक ही ऐसी नई परिस्थितियो का सामना करना पड़ता है जिस के लिए वह पहले से तैयार नही होता। किशोर का बौद्धिक विकास बालको की अपेक्षा काफी ऊँचा होता है, इसलिए वह उनके बीच मे प्रसन्न नही रह सकता। प्रौढ़ व्यक्तियो को वह अपनी बुद्धि और क्षमता से प्रभावित करना चाहता है परन्तु वे उसे अबोध बालक समझ कर उसकी उपेक्षा करते हैं। इससे उसके आत्म गौरव की भावना को ठेस लगती है और वह मन ही मन मे उन से प्रतिशोध लेने का निश्चय करता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि उसके साथ सहानुभूति और आदर का व्यवहार किया जाए।

किशोर को जो पग-पग पर निराशा तथा असफलता मिलती है उससे वह अपनी रक्षा, काल्पनिक जगत की सृष्टि करके करता है। कठोर वास्तविकताओं से हट कर, वह कल्पना लोक में विहार करने लगता है।

किशोर किसी भी बात को सरलता नही मानेगा। उसके सम्बन्ध में वह काफी तर्क-वितर्क करेगा। तर्क की कसौटी पर पूरा उतरने पर ही वह किसी तथ्य को स्वीकार करेगा। किशोर अवस्था में स्मरण शक्ति का विकास भी काफी हो जाता है। इस अवस्था में बालक और बालिकाएँ नई-नई बातें सीखना चाहते हैं।

(iii) रुचि सम्बन्धी परिवर्तन—किशोरावस्था में रुचि सम्बन्धी परिवर्तन नीचे लिखे रूप में देखे जा सकते हैं—

(क) लड़कियाँ अपने बनाव-शृंगार (Make up) की ओर अधिक ध्यान देने लगती हैं जैसे रंग-बिरंगे चमकीले भड़कीले वस्त्र पहनना, पाउडर

क्रीम तथा सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग। इसी प्रकार लड़के भी अपने बाल बनाने में, टाई बाँधने में, पैंट की क्रीज ठीक करने में काफी समय खर्च करते हैं। वे अपनी वेश-भूषा आदि के द्वारा दूसरों को आकर्षित करना चाहते हैं।

(ख) अपने मित्रों तथा सहेलियों के साथ बात चीत करने में काफी समय लगाया जाता है। पत्र-मित्र इत्यादि का शौक भी इसी अवस्था में होता है।

(ग) किशोर अवस्था के बालकों की रुचि उपन्यासों, कहानियों नाटकों कविताओं तथा साहसिक और यात्रा सम्बन्धी लेखों में विशेष रूप से होती है।

(घ) लड़कों को दौड़ धूप वाले खेल बहुत अच्छे लगते हैं जैसे—फुटबाल बास्किट बॉल, हॉकी, टेनिस इत्यादि। लड़कियों की नृत्य, संगीत, तथा अभिनय आदि कार्यों में रुचि होती है।

(च) किशोर को अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में चिन्ता होती है इसलिए वे किसी न किसी व्यवसाय के सम्बन्ध में भी सोचना प्रारम्भ कर देते हैं।

(iv) संवेगात्मक विकास—संवेगात्मक दृष्टि से भी किशोर अवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। किशोर बालकों के सामने जो काम भी आता है, उसे वे झटपट कर डालना चाहते हैं। धैर्य का उनमें अभाव होता है।

परिवर्तन यह होता है कि किशोर
है। कोई कार्य यदि उसकी इच्छा
र हो उठता है। और
में भाग लेता

बालक अनेक
श्रद्धा धर्म
आदर्शों द्वारा प्रभावित
रूप में धार्मिक महापुरुषों
का कम लिया का

बड़ी
में

(iii) व्यावसायिक (Vocational) समस्या

काम प्रवृत्ति सम्बन्धी समस्याएँ—आज इस बात को सभी शिक्षा शास्त्र स्वीकार करते हैं कि किशोर बालको और बालिकाओ की समस्याएँ अधिकतर काम (Sex) से सम्बन्ध रखती हैं। आज भारतीय परिवारो का जैसा वातावरण है, उसके अनुसार काम (Sex) सम्बन्धी बातो का बडी प्रबलता से दमन किया जाता है। किशोरो के मन मे काम-प्रवृत्ति के प्रति जिज्ञासा की भावना तो होती है। जब उनके कौतूहल की भावना को घर मे ही शान्त नहीं किया जाता तो परिणाम यह निकलता है कि वे काम (Sex) सम्बन्धी बातो की जानकारी अन्य साधनो द्वारा प्राप्त करते हैं। वे साधन निम्न-लिखित हो सकते हैं—

(क) मित्रो तथा साथियो से इस सम्बन्ध मे पूछना।

(ख) कामुकतापूर्ण साहित्य का अध्ययन।

(ग) चलचित्र तथा बाजारो मे बिकने वाले नग्न चित्रो को देखना।

(घ) पशुओ की मैथुनिक प्रक्रिया को देखना।

क्योकि इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान अधूरा होता है, इसलिए किशोरो का काम (Sex) सम्बन्धी विकास उचित दिशा मे नहीं होता। पाठशालाओ मे जो काम सम्बन्धी समस्याएँ पाई जाती हैं, उनका स्वरूप नीचे दिया जाता है—

(१) काम (Sex) सम्बन्धी बातचीत करना।

(२) कामुकतापूर्ण बातें, शौचालय की दीवारो पर लिखना तथा वैसे ही चित्र भी बनाना।

(३) भिन्न लिंगीय व्यक्ति से बात चीत करने की समस्या।

(४) प्रेम (Romance) की समस्या।

(५) सम लिंगीय मैथुन।

(६) भिन्न लिंगीय मैथुन।

(७) हस्त मैथुन।

काम सम्बन्धी शिक्षा (Sex Education)—

क्या पाठशाला के विद्यार्थियों को काम (Sex) सम्बन्धी जाए ? इस प्रश्न का उत्तर केवल हाँ अथवा न में नहीं दिया जा स विद्वानों का इसके सम्बन्ध में मतभेद है। कुछ विद्वानों का ऐसा पाठशाला में सामूहिक स्तर पर काम सम्बन्धी शिक्षा नहीं दी क्योंकि किशोरावस्था के बालक शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि दूसरे से अलग-अलग होते है।

इस के विपरीत आधुनिक मनोवैज्ञानिको का ऐसा कथन है कि शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से किशोरों को स्वस्थ, तथा सुयोग्य बनाना चाहते हैं और उनको सामाजिक दृष्टि से उपयोगी बनान तो उन को काम (Sex) सम्बन्धी शिक्षा किसी न किसी रूप में मिलनी चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि काम सम्बन्धी शिक्षा कब दी ज सम्बन्ध में मनोविश्लेषणवादियों का कथन है कि काम की भावना क तो शैशव काल से ही हो जाता है। इसलिए काम सम्बन्धी शि किशोरावस्था तक स्थगित न किया जाए, वरन् इस के ज्ञान क बाल्यावस्था मे ही कर दिया जाए।

काम सम्बन्धी शिक्षा कौन दे ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा ज है कि अपने देश में अधिकांश माता-पिता अनपढ़ होते हैं। उन्हें स्व सम्बन्धी ज्ञान का पूरा परिचय नहीं होता। दूसरे बालक भी माता- सामने काम सम्बन्धी बातें करने से शरमाते हैं। तीसरे पढ़े लिखे मा को अपने व्यवसाय के सम्बन्ध मे इतना व्यस्त रहना पड़ता है कि वे इस दायित्व को अच्छी प्रकार से नहीं निभा सकते। इसलिए काम जानकारी कराने का उत्तरदायित्व अध्यापक के कन्धों पर ही आ पड़त

जो अध्यापक काम (Sex) सम्बन्धी शिक्षा दे, उन में नीचे लि होने चाहिए—

(1) संवेगात्मक परिपक्वता (Emotional Stability)

(ii) सच्चरित्रता
(iii) अपने सामने किसी न किसी आदर्श (Ideal) को रखना।
(iv) बड़ी आयु वाला
(vi) सहन-शीलता
(vi) विनोदी स्वभाव का
(vii) सुखी घरेलू जीवन (Happy and Contented Married Life)

अब इस सम्बन्ध में एक प्रश्न और रह जाता है, वह यह कि पाठशाला के विद्यार्थियों को काम सम्बन्धी शिक्षा किस ढंग से दी जाए? इस सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें विचारणीय हैं—

(क) काम सम्बन्धी शिक्षा को भी पाठ्य-क्रम (Curriculum) का एक भाग बनाया जाना चाहिए।
(ख) छात्रों तथा छात्राओं के लिए स्वास्थ्य विज्ञान (Hygiene) तथा शरीर विज्ञान (Physiology) अनिवार्य विषय होना चाहिए जहाँ पर उन्हें काम सम्बन्धी शिक्षा भी दी जा सकती है।
(ग) छात्राओं के लिए गृह विज्ञान (Domestic Science) की व्यवस्था होनी चाहिए। गृह विज्ञान को पढ़ाते समय उन्हें प्रजनन की क्रिया से भी अवगत कराया जा सकता है।

. स य, इसको अन्य विषयों से सम्बन्धित

ई - ` पर अन्द विचार भी

रना कर, इस

म

क . का है—

घरेलू वातावरण—यह पहले बताया जा चुका है कि किस प्रकार साधारण बालकों से बौद्धिक स्तर ऊँचा होने के कारण, किशोर उनके साथ रहना नहीं चाहता। प्रौढ़ व्यक्ति जिनके साथ वह रहना चाहता है, उसे अबोध समझते हैं। इस कारण से उसका मन क्षोभ से भर उठता है। और वातावरण के साथ सन्तुलन बनाए रखना उसके लिए कठिन हो जाता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए घर वालों को उसकी समस्या समझने का यत्न करना चाहिए। उसके साथ स्नेह और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए। क्योंकि वह अब उत्तरदायित्व को सम्भालने में समर्थ हो सकता है, इसलिए उसे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंप ने चाहिए। ऐसा करने से घर का वातावरण उसके लिए स्नेह पूर्ण हो जाएगा।

पाठशाला सम्बन्धी वातावरण—पाठशाला मे जो वातावरण होता है, उसके साथ सन्तुलन बनाये रखना भी, किशोर के लिए कठिन होता है। अपनी आयु से छोटे तथा अपनी आयु से बड़े दोनो प्रकार के विद्यार्थियो के द्वारा उसको स्वीकार नही किया जाता। अध्यापकों को चाहिए कि वे किशोरावस्था के बालको की इस कठिनाई को समझें और उनके साथ यथोचित व्यवहार करें।

(iii) व्यावसायिक समस्या—

इस बात का स्पष्टीकरण हो ही चुका है कि किशोर निरा अबोध बालक नही होता। वह जीवन की समस्याओं को भली भांति समझ सकता है। शिक्षा की समाप्ति के पश्चात् व्यक्ति आत्म-निर्भर बन सके, आज यह समस्या, समस्त देश के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। देश मे बेकारों की संख्या देख कर किशोर भी अपने भावी जीवन के लिए चिन्तित हो उठता है। उसके कितने ही स्वप्न तभी साकार हो सकते हैं जब कि वह किसी न किसी योग्य व्यवसाय को अपना सके। परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि पाठशाला में उचित निर्देशन (Vocational Guidance) की व्यवस्था हो, और पाठ्यक्रम (Curriculum) में इस प्रकार के विषयों (Subjects) का आयोजन हो जिनके आधार पर वह आगे चलकर किसी न किसी व्यवसाय को अपना सके।

१९

Q. 79 Why does the child become delinquent ? How c
such a child be relieved of his delinquency ? [Rajasthan 195

(कोई भी बालक अपराध क्यों करता है ? बालक की इस अपरा
करने वाली प्रवृत्ति को दूर कैसे किया जा सकता है ?)

[राजस्थान १६५

Q. 80 State the causes of delinquency of school childre
What changes in school programmes can reduce incidents
delinquency ? [Panjab 195

(पाठशालाओं में बालापराध के क्या कारण हैं ? इन बालापरा
को दूर करने के लिए पाठशालाओं के कार्यक्रमों में क्या परिवर्तन कि
जाएँ ?) [पंजाब १६५

Q. 81. What are the main factors that lead to delinquen
Suggest some preventive measures.

[Panjab 1952 Suppl, 1955 Supp

(बालापराधों के मूलभूत कारण कौन-कौन से हैं ? वे कौन से
उपाय हैं, जिनके द्वारा उनको दूर किया जा सकता है ?)

[पंजाब १६५२, सप्लीमेंट, १६५५ सप्लीमें

उत्तर—बालापराध किसे कहते हैं ?—

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों तथा भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा बालापराध की परिभाषा अलग-अलग ढंग से की गई है। उनमें कुछ प्रमुख परिभाषाएं नीचे दी जारही हैं—

बालापराध (Delinquency) का विस्तृत रूप से अध्ययन करने वाले प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बर्ट (Burt) ने अपनी पुस्तक "अपराधी बालक" (The Delinquent Child) में बालापराध की परिभाषा इन शब्दों में दी है—

"A child is technically delinquent when his anti-social tendencies appear so grave that he becomes or ought to become the subject of an official action."

अर्थात् हम उस बालक को अपराधी समझेंगे जिसकी समाज विरोधी प्रवृत्तियाँ इतनी बढ जाती हैं कि सरकार को उस के विरुद्ध कोई न कोई कारवाई करनी पडती है।"

संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S. A.) के एक राज्य (State) ओहाइओ (Ohio) के एक कानून (Code) के अनुसार बालापराध की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—

habitually

"A child who breaks the law, is wayward, ~~abitually~~ disobedient, who behaves in a way that endangers the health or morals of himself or others or who attempts to enter the marriage relation without the consent of his parents, is delinquent."

अर्थात् वह बालक अपराधी है जो नियमों को तोड़ता है, आवारागर्दी करता है, तथा जिसे आज्ञा का उल्लंघन करने की आदत हो पड़ गई है। उसका आचरण इस ढंग का होता है कि जिससे उसके स्वास्थ्य तथा अन्य लोगों की नैतिकता को हानि पहुँच सकती है। वह बिना अपने माता-पिता की आज्ञा के वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक श्री हीली (Healy) का कथन है—

"A child who deviates from the social normes of behaviour is called delinquent."

अर्थात् वह बालक जो समाज द्वारा स्वीकृत आचरण का पालन नही करता, अपराधी कहलाएगा।

इन सब परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनुष्य को सामाजिक प्राणी होने के नाते सामाजिक नियमों तथा विधि-निषेध आदि का पालन करना ही होता है। समाज की दृष्टि में जो बात अच्छी है, अथवा जो बात बुरी है, उसको न मान कर यदि उसके विपरीत आचरण किया जाएगा तो वह अपराध की श्रेणी में ही आएगा।

बालापराध के कारण—

मनुष्य का व्यक्तित्व बड़ा ही गहन है। उसका पार नही पाया जा सकता। वह सदा परिवर्तनशील रहता है। इसलिए बालापराध कितने प्रकार के होते हैं तथा उनके कारण कौन-कौन से हो सकते हैं, इसके सम्बन्ध मे कुछ भी अधिकारपूर्वक नही कहा जा सकता। परन्तु फिर भी श्री बर्ट (Burt) तथा पेज (Page) इत्यादि ने बालापराध के सम्बन्ध में जो अनेकों परीक्षण किए है उनके आधार पर बालापराध के कुछ कारणों का उल्लेख किया जा सकता है। उनके मतानुसार बालापराध के प्रमुख कारण निम्नलिखित हो सकते हैं—

(१) वंशानुक्रम का प्रभाव,
(२) वातावरण का प्रभाव,
(३) निर्धनता का प्रभाव,
(४) स्थानाभाव
(५) समुदायों (Gangs) का प्रभाव,
(६) बुद्धि (Intelligence) की कमी,
(७) मनोवैज्ञानिक कारण,
(८) शारीरिक कारण,

उत्तर—बालापराध किसे कहते हैं ?—

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों तथा भिन्न-भि
की परिभाषा अलग-अलग ढंग से की गई है।
नीचे दी जारही हैं—

बालापराध (Delinquency) का वि
वाले प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बर्ट (Burt) ने अप
(The Delinquent Child) में बालाप
में दी है—

*"A child is technically delinque
tendencies appear so grave that he
become the subject of an official actic*

अर्थात् हम उस बालक को अपराधी समझें
प्रवृत्तियाँ इतनी बढ़ जाती हैं कि सरकार को
कारवाई करनी पड़ती है।"

संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S. A.) के
ओहाइओ (Ohio) के एक कानून (Code)
की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—

"*A child who breaks the law, is*
disobedient, who behaves in a way that
or morals of himself or others or who
marriage relation without the consen
delinquent"

अर्थात् वह बालक अपराधी है जो
करता है, तथा जिसे आज्ञा का

(iii) पास पड़ोस का वातावरण

(iv) पाठशाला का वातावरण

(v) सामाजिक वातावरण

गर्भावस्था का वातावरण—भारतीय शिक्षा पद्धति तो प्रारम्भ से ही इस तथ्य को स्वीकार करती है कि बालक जब माँ के पेट मे होता है, तो माँ जिस वातावरण मे रहती है उसका प्रभाव बालक पर भी पड़ता है । अभिमन्यु के सम्बन्ध मे तो यह प्रसिद्ध ही है कि उसने चक्रव्यूह मे घुसने की विद्या माँ के पेट में ही सीखी थी । जिस समय बालक माँ के पेट मे होता है उस समय यदि माँ अश्लील और अपराधी वृत्ति वाले (Crime) चल चित्र देखेगी अथवा वैसे साहित्य का अध्ययन करेगी तो इस प्रकार की अपराधी प्रवृत्तियाँ बालकों मे भी आ सकती हैं ।

घरेलू वातावरण—जन्म लेने के पश्चात् बालक का सबसे पहले घर से सम्बन्ध स्थापित होता है। अतएव घरेलू वातावरण की छाप बालक पर भी पड़ती है । यहाँ पर घरेलू वातावरण सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें दी जा रही हैं जिनके कारण बालक अपराधी बन सकते हैं ।

जिस घर मे माता-पिता बालकों का होना पसन्द नहीं करते, वहाँ यदि किसी बालक का जन्म हो जाता है तो वह सदा उपेक्षित ही रहता है । उसे माता-पिता का प्यार नही मिलता । ऐसे बालक अपराध की ओर अवश्य मुड़ेंगे ।

यदि माता-पिता की आपस मे लड़ाई होती रहती है तो उसका दूषित प्रभाव भी बालक पर पड़ सकता है । घर मे विमाता होने पर भी ऐसा हो सकता है ।

बिना विवाह के जो सन्तति होगी, उसे माता-पिता तथा समाज दोनों ही उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे । ऐसे बालक, अपराधी बनकर समाज से बदला लेने का प्रयास करेंगे ।

यदि माता और पिता मे से कोई अपराधी हो अथवा उसमे कोई शारीरिक दोष हो जैसे बहरापन, अन्धापन, लंगड़ापन वहाँ पर भी बालकों में अपराध की भावना घर कर सकती है ।

वंशानुक्रम का प्रभाव—

बहुत से मनोवैज्ञानिकों का ऐसा कथन है कि अपराधी माता-पिता की सन्तान भी अपराधी ही होगी। इस सम्बन्ध में वे कुछ परीक्षणों का उल्लेख करते हैं। "वंशानुक्रम तथा वातावरण" नाम अध्याय में पहले इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि किस प्रकार ज्यूक (Juke) परिवार के पूर्वजों की बुरी तथा दोषयुक्त आदतें, उनकी सन्तति में भी आगई। परन्तु इस सम्बन्ध में जो आधुनिक परीक्षण हुए हैं, उनके आधार पर इस बात को पूरी तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता। बर्ट (Burt) इस तथ्य को स्वीकार नहीं करता कि अपराधों का संक्रमण भी होता है। उसके मतानुसार कोई बालक केवल इसलिए ही अपराधी नही होता कि उसके माता-पिता अपराधी होते हैं। वह इसलिए अपराधी होता है कि वह अपराधी पिता की संगति मे रहता है। हीली (Healy) इन बात को तो मानता है कि वंश परम्परा भी अपराध का कारण हो सकती है परन्तु उसके विचार मे वंश परम्परा का प्रभाव केवल पन्द्रह प्रतिशत से लेकर तीस प्रतिशत तक ही रहता है।

अतएव हम केवल वंशानुक्रम को ही बाल अपराध का कारण नहीं मान सकते क्योंकि—

(i) जिन परिवारो का इतिहास हमारे सामने रखा गया है उसे हम वैज्ञानिक अध्ययन नही कह सकते।

(ii) अन्वेषण करने वालो ने केवल, इन परिवारो के दोषो को ही अपने सामने रखा।

(iii) इन परिवारो के बालको को अपराधी बनाने में, इन परिवारों के दूषित वातावरण का भी प्रमुख हाथ रहा होगा।

वातावरण का प्रभाव—

ऊपर यह बताया ही जा चुका है कि वातावरण के प्रभाव से भी बालक अपराधी हो सकता है। वातावरण के भी कई भाग किए जा सकते हैं जैसे—

(i) गर्भावस्था का वातावरण
(ii) घरेलू वातावरण

(iii) पास पड़ोस का वातावरण

(iv) पाठशाला का वातावरण

(v) सामाजिक वातावरण

गर्भावस्था का वातावरण—भारतीय शिक्षा पद्धति तो प्रारम्भ से ही इस तथ्य को स्वीकार करती है कि बालक जब माँ के पेट मे होता है, तो माँ जिस वातावरण मे रहती है उसका प्रभाव बालक पर भी पड़ता है। अभिमन्यु के सम्बन्ध मे तो यह प्रसिद्ध ही है कि उसने चक्रव्यूह मे घुसने की विद्या माँ के पेट मे ही सीखी थी। जिस समय बालक माँ के पेट मे होता है उस समय यदि माँ अश्लील और अपराधी वृत्ति वाले (Crime) चल चित्र देखेगी अथवा वैसे साहित्य का अध्ययन करेगी तो इस प्रकार की अपराधी प्रवृत्तियाँ बालको मे भी आ सकती है।

घरेलू वातावरण—जन्म लेने के पश्चात् बालक का सबसे पहले घर से सम्बन्ध स्थापित होता है। अतएव घरेलू वातावरण की छाप बालक पर भी पड़ती है। यहाँ पर घरेलू वातावरण सम्बन्धी कुछ ऐसी बातें दी जा रही हैं जिनके कारण बालक अपराधी बन सकते हैं।

जिस घर मे माता-पिता बालकों का होना पसन्द नही करते, वहाँ यदि किसी बालक का जन्म हो जाता है तो वह सदा उपेक्षित ही रहता है। उसे माता-पिता का प्यार नही मिलता। ऐसे बालक अपराध की ओर अवश्य झुकेंगे।

यदि माता-पिता की आपस मे लड़ाई होती रहती है तो उसका दूषित प्रभाव भी बालक पर पड़ सकता है। घर मे विमाता होने पर भी ऐसा हो सकता है।

बिना विवाह के जो सन्तति होगी, उसे माता-पिता तथा समाज दोनों ही उपेक्षा की दृष्टि से देखेंगे। ऐसे बालक, अपराधी बनकर समाज से बदला लेने का प्रयास करेंगे।

यदि माता और पिता मे से कोई अपराधी हों अथवा उसमे कोई शारीरिक दोष हो जैसे बहरापन, अन्धापन, लंगड़ापन वहाँ पर भी बालकों में अपराध की भावना घर कर सकती है।

आस-पास का वातावरण—जिस समय छोटा बालक चलना सीख लेता है, उस समय वह आसपास के घरों में भी जाना प्रारम्भ कर देता है। यदि पड़ोस के घरों का वातावरण दूषित होगा तो उसका प्रभाव बालक पर भी पड़ेगा।

जिन घरों के आसपास कोई कारखाना इत्यादि होता है वहाँ अच्छे बुरे सभी प्रकार के लोग आते हैं। वहाँ बीड़ी, सिगरेट, मदिरापान आदि सभी कुछ चलता है। इसका बुरा प्रभाव बालक पर भी पड़ सकता है।

यदि घर के पास छवि-गृह (Cinema Houses) नृत्य-गृह (Ball Rooms) अथवा वेश्यालय (Brothels) होंगे तो इन का प्रभाव घर के बालकों पर अवश्य ही पड़ेगा।

पाठशाला का वातावरण—पाठशाला के वातावरण का भी बालक पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यदि पाठशाला मे खेलो (Games) तथा मनोरंजक साधनों (Recreational Activities) की कमी होगी तो बालक दोषयुक्त वातावरण को अपना सकता है।

पाठशाला के आस-पास यदि शराब घर अथवा छबि-गृह (Picture Houses) होंगे तो उसका दूषित प्रभाव बालक पर पड़ सकता है।

प्रधानाध्यापक तथा अन्य अध्यापकों के आपसी झगड़ो का बुरा प्रभाव भी बालकों पर पड़ सकता है।

यदि पाठशाला का अनुशासन बहुत कठोर होगा, और उसमें प्रजातन्त्रवाद की भावना का अभाव होगा तो बालक अध्यापकों तथा पाठशाला के अधिकारियों से घृणा करेंगे और उनकी प्रवृत्ति अपराध की ओर बढ़ेगी।

सामाजिक वातावरण—सामाजिक वातावरण का पर्याप्त प्रभाव भी बालक पर पड़ता है। जब बालक देखता है कि समाज में नैतिकता का मूल्य नहीं, सभी ओर घूसखोरी तथा कुनबापरवरी (Nepotism) का जोर है, समाज के एक वर्ग का आज भी शोपण हो रहा है तो उसका विश्वास [illegible]ी प्रकार के नैतिक गुणों से उठ जाता है और वह [illegible]ी समझता।

निर्धनता का प्रभाव—

निर्धनता के कारण भी बहुत से बालक अपराधी भावना को अपना लेते हैं। इंगलैंड के बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने परीक्षणों के आधार पर इस बात का निरीक्षण किया कि लन्दन के उन मुहल्लों में ही अधिक बालापराधी पाये जाते हैं जहाँ पर कि निर्धन परिवार बसते हैं। निर्धन परिवार के बालकों को भर पेट खाना भी नहीं मिलता। वे अपने जीवन की साधारण सी आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर सकते। इसलिए इनका झुकाव अपराध की ओर जल्दी हो जाता है।

स्थानाभाव—

घर में भी यदि, परिवार बड़ा होने के कारण जगह की कमी हो तो इसका भी बुरा प्रभाव बालक पर पड़ता है। बालक के समुचित विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसे रहने के लिए यथेष्ट स्थान मिले। ऐसा न होने पर उसे गलियों में इधर-उधर भटकना पड़ता है। जहाँ से वह दूषित प्रभाव को ग्रहण कर सकता है। इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि स्थानाभाव के कारण माता-पिता अपने वैवाहिक सम्बन्धों को भी गुप्त नहीं रख सकते। इसका प्रभाव भी बालक पर अच्छा नहीं पड़ता।

समुदायों (Gangs) का प्रभाव—

पिछले अध्याय में इस बात की विस्तारपूर्वक चर्चा की जा चुकी है किस प्रकार किशोरावस्था में बालकों पर समुदायों का प्रभाव पड़ता है। यदि समुदाय (Gang) के कुछ सदस्य अपराधी मनोवृत्ति वाले हुए तो उसका प्रभाव समुदाय के अन्य सदस्यों पर भी पड़ेगा। इसी प्रकार यदि समुदाय का नेता (Leader) अपराधी मनोवृत्ति वाला हुआ तो उसके अनुयायी भी वैसे ही हो जाएँगे।

बुद्धि का कम होना (Feeble-Mindedness)—

इसका अपराध से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। परन्तु इस प्रकार के व्यक्ति बौद्धिक तथा संवेगात्मक दृष्टि से (Intellectually and

Emotionally) अपरिपक्व होते हैं। वे दूसरों
जाते हैं। इस प्रकार के बालक, अन्य अपराधी बाल
बिगड़ जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक कारण—

यदि बालकों का मानसिक स्वास्थ्य (Mental I
अथवा कुछ प्रवृत्तियों के दमन (Repression) के
भावना-ग्रन्थियों (Complexes) का निर्माण हो जु
भी अपराधी बन सकते हैं।

शारीरिक कारण—

नाड़ी मण्डल (Nervous System) तथा गि
की चर्चा करते समय, इस बात की विस्तृत व्याख्या की
किसी गिल्टी (Gland) से रस का स्राव उचित रू
बालक के व्यक्तित्व का विकास ठीक-ठीक प्रकार से नहं
के बालकों पर भी अपराधी मनोवृत्ति का प्रभाव पड़ सक

पाठशालाओं में पाये जाने वाले अपराध—

वैसे तो पाठशालाओं में पाये जाने वाले अपराधो
जा सकती परन्तु फिर भी प्रमुख रूप से नीचे लिखे अपरा
पाये जाते हैं—

(१) बीड़ी सिगरेट आदि पीना
(२) पाठशाला से भाग जाना
(३) झूठ बोलना
(४) डींगें हाँकना
(५) आपस में मारपीट करना
(६) चोरी करना

(६) दीवारों पर अश्लील बातें लिखना तथा वैसे ही चित्र
बनाना।

अपराधों का निवारण कैसे किया जाए—

पाठशालाओं में अपराधों का निवारण करने के लिए कोई एक ही विधि नहीं अपनाई जा सकती। पहले तो अपराध के कारण की खोज करनी चाहिए कारण मालूम हो जाने पर, उसके अनुसार ही उसको दूर करने के उपायों पर भी विचार किया जा सकता है। बालापराधों को दूर करने के लिए साधारण रूप से नीचे लिखे उपायों को अपनाना चाहिए—

(१) पाठन-प्रणाली में समुचित सुधार—पाठन-प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए कि जिसमे विद्यार्थी और अध्यापक दोनों ही भाग लें। ऐसा न हो कि अध्यापक बोलता रहे और विद्यार्थी केवल चुपचाप सुनता ही रहे।

(२) खेलों तथा पाठान्तर क्रियाओं की व्यवस्था (Extra Curri-cular Activities)—यदि पाठशालाओं मे खेलो तथा पाठान्तर क्रियाओं की समुचित व्यवस्था की जाएगी तो बालकों को इतना समय ही नहीं मिलेगा कि वे अपराधी बालकों की क्रियाओं की ओर ध्यान देंगे।

(३) स्वशासन का आयोजन—यदि पाठशालाओं में स्वशासन (Self Government) का आयोजन किया जाएगा और पाठशाला के अनेक कार्यों का उत्तरदायित्व बालकों के कन्धों पर डाला जाएगा तो उनमे उत्तर-दायित्व की भावना पैदा होगी और वे अनुचित बातों से बचेंगे।

(४) माता पिता तथा अध्यापकों के संघ—समय-समय पर इस बात की व्यवस्था की जानी चाहिए जब कि बालकों के अध्यापक तथा माता-पिता आपस में मिलकर बैठें और बालकों की समस्याओं पर विचार विमर्श करें।

(५) धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध—बालापराधों को कम करने के लिए धार्मिक शिक्षा का आयोजन करना आवश्यक है। आज पश्चिमी देशों में भी इस दिशा में कदम उठाया जा रहा है।

(६) छात्र संघ तथा बालचर जैसी संस्थाएँ—पाठशालाओं में इस प्रका

की संस्थाओं का होना अत्यन्त आवश्यक है ताकि बालकों पर अन्य समुदाय (Gangs) का दूषित प्रभाव न पड़ सके।

(७) उचित निर्देशन (Guidance) की व्यवस्था—पाठशालाओं में उचित निर्देशन की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि बालक आगे जाकर किसी उपयोगी व्यवसाय को चुन सकें।

(८) मनोवैज्ञानिक तथा मनोविश्लेषणात्मक विधियों का प्रयोग—इस प्रकार की विधियों के प्रयोग से भी पाठशाला मे बालापराधो की संख्या बहुत कम की जा सकती है।

स्पष्ट करो कि आप उनमें से किन-किन सिद्धान्तों को स्वीकार करते हो।) [बनारस १९४५, गौहाटी १९५३, सागर १९५१]

Q. 86. How is intelligence measured? What are kinds of intelligence tests? Briefly describe each and give their educational uses also. What are their limitations?

[Panjab 1951—1952 Suppl. 1955 Suppl.

(बुद्धि का मापन आप किस प्रकार करोगे? बुद्धिमापक परीक्षाएँ कितने प्रकार की होती है? सब का संक्षेप से वर्णन करते हुए उनके शिक्षा सम्बन्धी महत्व पर प्रकाश डालो। इन बुद्धिमापक परीक्षाओं की सीमाएँ कौन-कौन सी हैं?)

[पंजाब १९५६ सप्ली०, १९५२ सप्ली०, १९५५ सप्ली०]

Q. 87 What are the group tests of intelligence? How is the intelligence of a group of children assessed through them? How can the school utilize the results of these tests for educational purposes? [Agra 1958]

(बुद्धिमापक सामूहिक परीक्षाएँ कौन-कौन सी हैं? उनके द्वारा बालकों के समुदाय की बुद्धि का मापन किस प्रकार किया जाएगा? पाठशाला के द्वारा इन परीक्षाओं के परिणामों से, शिक्षा की दृष्टि से, कैसे लाभ उठाया जा सकता है? [आगरा १९५८]

Q. 88 Write short notes on :—

(a) Attainments Tests [Agra 1955]
(b) Achievements Tests [Agra 1956]
(c) Spearman's two factors theory [Agra 1654]

संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(क) शैक्षणिक सफलता मापक परीक्षाएँ [आगरा १९५६]
(ख) परिश्रममापक परीक्षाएँ [आगरा १९५८]
(ग) स्पियरमैन का द्वि-तत्व का सिद्धान्त [आगरा १९५४]

यद्यपि बुद्धि सम्बन्धी कई परीक्षण हो चुके हैं और नित्य नए हो रहे हैं परन्तु फिर भी बुद्धि की परिभाषा करना कोई सरल काम नहीं। मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए हैं वे आपस में मेल नहीं खाते। विलियम स्टर्न (William Stern) के मतानुसार बुद्धि शब्द मनुष्य की उस योग्यता का सूचक है, जिसके द्वारा वह किसी नई परिस्थिति में पड़कर अपनी समस्याओं का हल करता है ("A general adaptability to new problems and Conditions of life")। फ्रीमैन (Freeman), बकिंघम (Buckingham) तथा पिंटनर (Pintner) भी इसी मत को मानते हैं।

बिने (Binet) ने बुद्धि की व्याख्या इन शब्दों में की है—

(i) यह एक निश्चित दिशा की ओर ले जाने वाली प्रवृत्ति है ("A Capacity to take and maintain a definite direction")।

(ii) यह सुव्यवस्थित हो कर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने की योग्यता है ("A Capacity to make adaptations for attaining a desired goal")।

(iii) यह आत्म-आलोचना करने की प्रवृत्ति है ("A power of self Criticism")।

टर्मन (Terman) के मतानुसार बुद्धि अमूर्त रूप से सोचने की शक्ति है ("An ability to think in terms of abstract ideas")

सिरिल बर्ट (Cyril Burt) के मतानुसार बुद्धि जन्मजात सामान्य मानसिक योग्यता का नाम है। थॉमसन (Thomson) भी बुद्धि को एक सामान्य तथा विशिष्ट गुणों का मिश्रण मानता है।

बुद्धि सम्बन्धी सिद्धान्त (Theories of Intelligence)— मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न भिन्न परीक्षणों के आधार पर बुद्धि सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त निश्चित किए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

११

(i) एक सत्तात्मक सिद्धान्त (Unifac
Theory)

(ii) द्वि-तत्व सिद्धान्त (Two Factor

(iii) बहुसत्तात्मक सिद्धान्त (Multifa
Theory)

(iv) संघसत्तात्मक सिद्धान्त (Group fa
Theory)

(i) एक सत्तात्मक सिद्धान्त (Unifacto
स्टर्न (William Stern) तथा डा० जानस
इत्यादि इस सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं। इस
सर्वश्रेष्ठ, सर्व शक्तिमान मानसिक शक्ति है जो अन्य
शासन करती है। दूसरे शब्दों मे हम कह सकते है
शक्ति है जो हमारी सभी मानसिक क्रियाओं का संच
व्यक्ति किसी एक काम को बहुत अच्छी प्रकार से क
काम भी उतनी अच्छी प्रकार से ही कर सकेगा।

(ii) द्वि-तत्व सिद्धान्त (Two Factor
प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्पियरमैन (Spearman)
निर्माण किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि दो
है—एक सामान्य तत्व (General Ability or
दूसरा विशेष तत्व (Specific Ability or "S
तत्व सभी बुद्धिमान लोगों में समान रूप से होता है।
व्यक्तियों में कम या अधिक मात्रा में होता है। एक
की संगीत की बुद्धि होती है। इसके अतिरिक्त उसमें
है। यही बात गणितज्ञ के सम्बन्ध में भी कही जा

मे सामान्य तत्व पाया जाता है। बुद्धि के विशेष तत्व मे अच्छे होने वाले बालकों को यदि अपने अनुकूल व्यवसाय मिल जाए तो वे सफल होते हैं अन्यथा असफल।

(iii) बहुसत्तात्मक सिद्धान्त (Multifactor Theory)—अमेरिका के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक श्री थार्नडाईक (Thornbike) इस सिद्धान्त के प्रणेता हैं। उनके मतानुसार बुद्धि कई प्रकार की शक्तियों का समूह मात्र है। इन विभिन्न प्रकार की शक्तियों में किसी प्रकार की समानता अपेक्षित नहीं। वे बुद्धि के सामान्य तत्व को स्वीकार नहीं करते। उनके विचार मे सभी मनुष्यों की बुद्धि विशेष होती है। किसी व्यक्ति की एक विषय की योग्यता से, उसकी दूसरे विषय की योग्यता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यदि कोई व्यक्ति इतिहास मे प्रवीण है तो उसका यह अर्थ नहीं कि वह साहित्य मे भी प्रवीण होगा। बालक को पाठशाला मे बहुत से विषयों का अध्ययन करना चाहिए ताकि वह बहुत प्रकार की योग्यताओं में प्रवीण हो जाए। जीवन मे कभी एक प्रकार की योग्यता काम मे आवेगी कभी दूसरे प्रकार की।

(iv) समूह सत्तात्मक सिद्धान्त (Group Factor Theory) इस सिद्धान्त के समर्थक स्काटलैंड के विख्यात मनोवैज्ञानिक गाडफ्रे थामसन (Godfrey Thomson) हैं। इनके विचारानुसार मनुष्य की बुद्धि कई प्रकार की योग्यताओं से मिलकर बनती है। इन योग्यताओं के भिन्न-भिन्न समूह होते है। एक ही समूह की योग्यताओं मे, आपस मे, समानता होती है। भिन्न-भिन्न समूहों की योग्यताओं मे किसी भी प्रकार की समानता नहीं रहती। उदाहरण स्वरूप साहित्यिक समूह के अन्तर्गत कविता, कहानी, निबन्ध इत्यादि मे परस्पर सम्बन्ध रहेगा। परन्तु इन विषय का विज्ञान के समूह के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।

अन्त मे हम बैलर्ड (Ballard) के शब्दों मे बुद्धि की विभिन्न परिभाषाओं को तीन श्रेणियों मे बाँट सकते हैं—

(1) बुद्धि एक ऐसी सामान्य योग्यता है जो सभी मानसिक क्रियाओं मे सहायता करती है।

(ii) बुद्धि दो या तीन विभिन्न योग्यताओं का समूह है।

(iii) बुद्धि सभी विशिष्ट योग्यताओं का निचोड़ है।

मानसिक परीक्षाएँ तथा उनका संक्षिप्त इतिहास—

प्रारम्भिक प्रयास—यँसे तो मानसिक परीक्षा का कोई न
प्राचीन काल से ही प्राप्त हो जाता है। अपने प्राचीन साहि
अनेकों प्रकार की पहेलियाँ, मुकरियाँ अथवा समस्याएँ इत्या
उनका प्रयोग मानसिक परीक्षाओं (Intelligence Testin
ही होता था। परन्तु मानसिक परीक्षाओं के सम्बन्ध में वैज्ञा
आधुनिक काल में ही यूरोप से प्रारम्भ हुआ। इस सम्बन्ध में हम
जर्मनी के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वुण्ट (Wunt) का नाम ले सक
के द्वारा सबसे पहली मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला १८७६ ई० में
इस प्रयोगशाला में इन्द्रिय ज्ञान तथा शारीरिक क्रियाओं के अध्य
साथ व्यक्ति की बुद्धि की परीक्षा भी की जाती थी। जिसका इ
अधिक होता उसे ही तीक्ष्ण-बुद्धि वाला मान लिया जाता था। य
मापन यन्त्रों द्वारा किया जाता था।

जर्मनी के ही एक अन्य मनोवैज्ञानिक वेमलर (Wechsler
पद्धति के दोषों की ओर इंगित करते हुए १६०१ ई० में इस बात
की कि प्रयोगशाला में विशेष यन्त्रों द्वारा बुद्धि का मापन कि
बिल्कुल असम्भव है। उन्होंने कहा कि बालकों की बुद्धि को माप
प्रयोगशाला से भी अच्छा मापन विद्यालयों की परीक्षा है। ऐसा
है कि जो विद्यार्थी कालिज तथा स्कूलों की परीक्षाओं में ऊँचा स्था
वे आगे जाकर जीवन में भी सफल होते हैं। परन्तु प्रयोगशाला
बुद्धिमान घोषित किए गए विद्यार्थियों के सम्बन्ध में ऐसा कुछ भी
जा सकता।

इसके पश्चात भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिक बालकों की बुद्धि को
लिए नई-नई विधियों की खोज में जुट गए। अपने अनुसन्धान के

पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बालकों की बुद्धिमापक परीक्षाएँ, साधार
शिक्षालयों की परीक्षाओं से भिन्न नहीं हो सकती।

बिने (Binet) का बुद्धि परीक्षण—इस कार्य मे सब से पहले-पह
बिने (Binet) के प्रयास को ही सफल प्रयास कहा जा सकता है। १८८
ई० से ही बिने बुद्धि परीक्षण के सम्बन्ध मे कई प्रयोग कर रहा था परं
उसे अभी तक सफलता प्राप्त नही हो रही था। पेरिस नगर पालिका
सामने एक गम्भीर समस्या थी। उस नगर पालिका द्वारा चालित पाठशाला
मे अनेकों विद्यार्थी पाठशाला सम्बन्धी कार्यों मे सदा पिछड़े रहते थे। नग
पालिका यह जानना चाहती थी कि इन के पिछड़ेपन (Backwardness
का क्या कारण है? पेरिस नागरपालिका के अधिकारियों ने इस समस्या
हल करने लिए फ्रांस के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक बिने (Binet) को चु
जो आगे ही इस सम्बन्ध मे कई परीक्षण कर रहा था। १९०४ ई० में बि
अपने सहयोगी के रूप मे एक अन्य मनोवैज्ञानिक साईमन (Simon)
लिया। दोनों ने मिलकर १९११ ई० में भिन्न-भिन्न आयु के बालकों की बु
परीक्षा के लिए पृथक-पृथक प्रश्नावली तैयार की। प्रत्येक प्रश्नावली में पाँच
छः प्रश्न रहते थे। बिने तथा साईमन ने तीन वर्ष से लेकर १५ वर्ष तक
बालकों की मानसिक परीक्षा के लिए प्रश्नावलियाँ तैयार की प्रत्येक प्रश्न
वली मे प्रश्नों को इस ढंग से रखा गया कि पाँच वर्ष का बालक जिन प्रश्
का उत्तर दे सकता था, उन प्रश्नों का उत्तर चार वर्ष का बालक नहीं
सकता था। इसी प्रकार नौ वर्ष वाला बालक दस वर्ष वाले बालक के प्रश
नहीं कर सकता था। जो बालक अपनी अवस्था वाली प्रश्नावली को हल
लेता था उस को साधारण बुद्धि का समझा जाता था, और जो उन प्रश्नों
हल नहीं कर पाता था, उसे मन्द बुद्धि वाला मान लिया जाता था।
प्रकार यदि कोई बालक अपनी अवस्था से ऊपर वाली अवस्था के प्रश्न
लेता था, तो उसे असाधारण बुद्धि वाला बालक समझ लिया जाता था।
प्रणाली के अनुसार यदि ७ वर्ष का बालक ६ वर्ष वाले। बालक के सब प्रश
का सही-सही उत्तर दे सके तो मानसिक आयु ६ वर्ष होगी। इस प्रकार य

बिने-साईमन विधि की विशेषता—इस विधि की ... नीचे दी जा रही है—

(१) बिने तथा साईमन ने हजारों बालकों पर ... को इकट्ठा किया था। प्रश्न किसी एक विषय से ... द्वारा बालकों की अनेकों विषयों की योग्यता को माप ...

(२) इन प्रश्नों के आधार पर हम बालकों की ... कर सकते हैं।

(३) दोनों ही इस झंझट में नहीं पड़े कि बुद्धि ... जा सकती है?

(४) इस परीक्षण के लिए अधिक सामान की आ... कागज और पेन्सिल से ही काम चल जाएगा।

बिने-साईमन विधि की आलोचना—इस विधि ... लिखी बातें कही जा सकती हैं—

(i) बिने तथा साईमन ने अपनी प्रश्नावलियों में ... पर अधिक बल दिया है। जिन बालकों का भाषा ज्ञान ... परीक्षा में अच्छे प्रमाणित होंगे। अधिक व्यवहारिक बालक ...

(ii) यह प्रणाली इस प्रकार की है कि प्रत्येक ... परीक्षा देनी होती है। इसलिए इसमें समय अधिक लग ...

(iii) यदि कोई बालक अपनी अवस्था वाले सभी ... दे पाता परन्तु आगे की अवस्था के कुछ प्रश्नों का ठीक ... है तो भी उसकी मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम ...

(iv) बिने तथा साईमन ने जो प्रश्न तैयार किए हैं ...

बिने-साईमन बुद्धि परीक्षण में संशोधन—

बिने तथा साईमन की मानसिक परीक्षा की यह विधि इतनी उपयोगी सिद्ध हुई कि और देशों में भी इसे अपनाया गया। अमेरिका में इसका प्रचार पहले पहल गोडर्ड (Goddard) ने किया तथा टरमैन (Terman) ने इसमें संशोधन किया। टरमैन का संशोधन "स्टैन्डर्ड रिवीजन" (Standard Revision) कहलाता है। कुछ समय के पश्चात् टरमैन ने मेरिल (Merril) के साथ मिल कर एक संशोधन और किया जिसका नाम "न्यू स्टैनफोर्ड रिवीजन" (New Stanford Revision) रखा गया। इंगलैंड में इस विधि में सिरिल बर्ट (Cyril Burt) ने संशोधन किया जो "लन्दन रिवीजन" (The London Revision) के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य विलियम स्टर्न (Walliam Stern) का है जिसने बुद्धि लब्धि (Intelligance Quotient or I. Q.) के परमोपयोगी सिद्धान्त का निर्माण किया।

टरमैन का संशोधन—टरमैन ने बिने-साईमन विधि को अमेरिका बालकों के उपयुक्त बनाने के लिए उसमें कुछ संशोधन किया। उसने प्रश्नों की संख्या ५४ से बढ़ाकर ९० कर दी। टरमैन ने दूसरी बात यह कि बालक किसी प्रश्नावली के जितने प्रश्नों का उत्तर देता है, उसके अनुसार ही उ नम्बर दिए जाते हैं। बिने-साईमन प्रणाली में यह बात नहीं थी। टरमैन प्रत्येक प्रश्न का "आयु मूल्य" निर्धारित कर दिया। तीन से तेरह वर्ष तक प्रत्येक प्रश्न का मूल्य दो महीने, चौदह वर्ष के लिए चार महीने ; साधारण प्रौढ़ के लिए पाँच महीने तथा प्रखर बुद्धि वाले प्रौढ़ के लिए, प्रत्येक प्रश्न का मूल्य ६ मास निर्धारित किया गया। सही उत्तरों के "आयु-मूल्यों" का यो ही मानसिक आयु (Mental Age) माना गया। टरमैन ने प्रश्न इस ढं के बनाए जो कि हर आयु के बालक को दिए जा सकें। कोई बालक भाषा कारण तथा गणित के कारण अधिक नम्बर पा सकता है।

बर्ट का संशोधन—बर्ट ने (Burt) ने आक्सफोर्ड (Oxford) पाठशालाओं में बालकों पर अपने परीक्षण किए। अपने परीक्षणों में बर्ट

८ वर्ष का बालक ६ वर्ष के बालक के ही प्रश्न करे तो उसकी मानसिक आयु ६ वर्ष की ही समझी जाएगी।

बिने-साईमन विधि की विशेषता—इस विधि की प्रमुख-प्रमुख विशेषताएँ नीचे दी जा रही हैं—

(१) बिने तथा साईमन ने हजारों बालकों पर परीक्षण करके प्रश्नों को इकट्ठा किया था। प्रश्न किसी एक विषय से सम्बन्धित नहीं थे। इनके द्वारा बालकों की अनेकों विषयों की योग्यता को मापा जा सकता था।

(२) इन प्रश्नों के आधार पर हम बालकों की मानसिक आयु ज्ञात कर सकते हैं।

(३) दोनो ही इस झंझट मे नहीं पड़े कि बुद्धि की परिभाषा क्या की जा सकती है ?

(४) इस परीक्षण के लिए अधिक सामान की आवश्यकता नहीं। केवल कागज और पेन्सिल से ही काम चल जाएगा।

बिने-साईमन विधि की आलोचना—इस विधि की आलोचना में नीचे लिखी बातें कही जा सकती हैं—

(i) बिने तथा साईमन ने अपनी प्रश्नावलियो मे वस्तु की अपेक्षा शब्दों पर अधिक बल दिया है। जिन बालकों का भाषा ज्ञान अच्छा होगा वे इस परीक्षा में अच्छे प्रमाणित होंगे। अधिक व्यवहारिक बालक को असुविधा होगी।

(ii) यह प्रणाली इस प्रकार की है कि प्रत्येक बालक को अकेले ही परीक्षा देनी होती है। इसलिए इसमें समय अधिक लग जाता है।

(iii) यदि कोई बालक अपनी अवस्था वाले सभी प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाता परन्तु आगे की अवस्था के कुछ प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर दे देता है तो भी उसकी मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम ही मानी जाती है।

(iv) बिने तथा साईमन ने जो प्रश्न तैयार किए हैं वे पैरिस के बालकों
... किए हैं। अतएव बिना उनमें [illegible] किए वे अन्य
जा सकते।

यदि किसी बालक की वास्तविक आयु ५ वर्ष और मानसिक आयु ६ वर्ष है तो उसकी बुद्धि उपलब्धि $\frac{६}{५} \times १०० = १२०$ होगी। ऐसा बालक तीव्र-बुद्धि माना जाएगा।

यद्यपि विलियम स्टर्न ने बुद्धि-उपलब्धि के अंक का आविष्कार किया, परन्तु इसका व्यापक प्रचार टरमैन ने ही किया।

आजकल बुद्धि-उपलब्धि (I Q) के अनुसार बालकों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —

	बुद्धि-उपलब्धि	वर्ग का नाम
(१)	१४० से ऊपर	प्रतिभाशाली[1]
(२)	१२० से १४०	प्रखर-बुद्धि[2]
(३)	११० से १२०	तीव्र-बुद्धि[3]
(४)	९० से ११०	सामान्य-बुद्धि[4]
(५)	८० से ९०	मन्द बुद्धि[5]
(६)	७० से ८०	निर्बल बुद्धि[6]
(७)	५० से ७०	मूर्ख[7]
(८)	२५ से ५०	मूढ़[8]
(९)	२५ से नीचे	जड़[9]

साठ प्रतिशत लोगों की बुद्धि उपलब्धि ९० और १०० के बीच में होती है। चौदह प्रतिशत लोग तीव्र बुद्धि के तथा इतने ही मन्द बुद्धि के होते हैं। इसी प्रकार १२० और १४० तथा ७० और ८० के बीच के छः प्रतिशत लोग होते हैं। १०० से नीचे तथा १४० से ऊपर एक प्रतिशत लोग होते हैं।

---

1 Genius. 2 Very Superior intelligence. 3 Superior Intelligence 4 Average or normal intelligence 5 Dull or backward 6 feeble minded 7 Moron. 8 Imbecile 9 Idiot

देता कि बिने-साईमन बुद्धि माप के प्रश्न बड़ी आयु वाले बालकों की अ
छोटे बालकों के लिए अधिक लाभदायक हैं। अन्त में वह इस परिणा
पहुँचा कि मानसिक परीक्षा के वे प्रश्न जो विचार (Thinking) और
(Reasoning) की परीक्षा करते हैं, सबसे अच्छे हैं। इस निष्
अनुसार उसने ऊँची आयु वाले बालकों के प्रश्नों में तर्क-शक्ति के प्रयो
समावेश किया। इस संशोधन में तीन वर्ष से सोलह वर्ष तक के लिए
६५ प्रश्न हैं।

स्टर्न का संशोधन अथवा बुद्धि-उपलब्धि—बिने-साईमन की बुद्धि माप
पद्धति में जो कई संशोधन किए गए हैं, उनमें सबसे महत्वपूर्ण संशोधन ज
के प्रसिद्ध बालमनोवैज्ञानिक विलियम स्टर्न (William Stern) के सुझ
पर किया गया। उसने मानसिक आयु (Mental Age) के स्थान
बुद्धि-उपलब्धि (Intelliganco Quatient) के सिद्धान्त को हम
सामने रखा। मानसिक आयु में वास्तविक आयु का भाग दे कर, बुद्धि
उपलब्धि को प्राप्त किया जाता है, जैसे :—

$$\text{बुद्धि उपलब्धि (I. Q.)} = \frac{\text{मानसिक आयु (Mental Age)}}{\text{वास्तविक आयु (Chronological Age)}}$$

यदि मानसिक आयु में वास्तविक आयु का भाग देने से भागफल एक आय
तो बालक को सामान्य बुद्धि वाला समझा जाएगा। एक से अधिक भागफल
आने पर बालक तीव्र बुद्धि वाला समझा जाएगा। यदि भागफल एक से कम
आया तो बालक को मन्द बुद्धि वाला समझा जाएगा। आजकल सुविधा की
दृष्टि से भागफल को १०० से गुणा कर दिया जाता है। १०० भागफल
आने पर बालक सामान्य बुद्धि वाला गिना जाएगा। यदि भाग १०० से
अधिक हुआ तो वह तीव्र-बुद्धि, तथा १०० से कम होने पर मन्द बुद्धि समझा
जाएगा।

मानसिक आयु

अतएव→बुद्धि =

(Cattel), हगर्टी (Haggerty) आदि कई अन्य मनोविज्ञानिकों ने भी सामूहिक परीक्षणो (Group Tests) के निर्माण मे काफी योगदान दिया है।

(३) क्रियात्मक परीक्षण (Performance or Non-verbal Tests)—ऊपर जिन परीक्षणो की चर्चा की गई है, उनके प्रयोग मे भाषा की आवश्यकता पडती है। परन्तु इस प्रकार के प्रश्न उन लोगों के काम नही आ सकते जो भाषा का प्रयोग नही कर सकते जैसे अशिक्षित, अन्धे, बहरे, गूगे इत्यादि। ऐसे व्यक्तियो के लिए क्रियात्मक परीक्षणों (Performance Tests) का आयोजन किया गया है। यहां प्रश्नो का उत्तर देने की बजाए, परीक्षार्थी को कोई व्यावहारिक कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार के परीक्षण कई दृष्टियो से लिखित परीक्षणो (Written or Verbal Tests) से कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनके द्वारा व्यक्ति के धैर्य, आत्मविश्वास तथा अन्तर्दृष्टि का अच्छा संकेत मिलता है। क्रियात्मक परीक्षाओ में परीक्षार्थियो को लकड़ी या गत्ते के टुकड़े, कुछ नमूने बनाने के लिए दिए जाते हैं। इन टुकड़ो को निश्चित समय के अन्दर उन के स्थान पर लगाना होता हैं। कभी-कभी भूल-भुलैया परीक्षण विधि (Maze Tests) से भी बुद्धि की परीक्षा की जाती है। कभी-कभी दर्पण मे देख कर किसी आकृति को बनाने के लिए (Mirror Drawing) भी कहा जाता है।

(४) समय-सीमा वाली परीक्षण (Timed Tests)—इस प्रकार की परीक्षाओ मे कुछ अवधि निश्चित होती है। परीक्षार्थी को प्रश्नों का उत्तर देने के लिए पौन घण्टे के लगभग समय मिलता है और वह जितनी गति से चाहे, प्रश्नो का उत्तर दे सकता है। इन प्रश्नों के आधार पर व्यक्ति-विशेष की गति (Speed) की परीक्षा की जाती है।

(५) समय-सीमा रहित परीक्षा (Untimed Tests)—इस प्रकार की परीक्षाओ में परीक्षार्थी को सभी प्रश्नों का उत्तर देना होता है। समय की

बुद्धिमापक परीक्षाओं का वर्गीकरण हम कई प्रकार से कर सकते हैं। पहले प्रकार के वर्गीकरण मे हम मानसिक परीक्षाओं का विभाजन नीचे लिखे ढंग मे कर सकते हैं :—

(१) व्यक्तिगत परीक्षण (Individual Tests)—इस परीक्षा का प्रयोग, एक समय मे एक ही व्यक्ति कर सकता है। इस परीक्षण की सबसे प्रमुख बात है परीक्षक (Experimenter) द्वारा व्यक्ति-विशेष (Subject) से ठीक-ठीक सम्बन्ध (Rapport) स्थापित करना। जितना अच्छा यह सम्बन्ध होगा, उतना अच्छा ही परिणाम निकलेगा। इस पद्धति में सबसे बड़ा दोष यह है कि जब इसका प्रयोग कई व्यक्तियो पर करना हो तो बहुत समय लग जाता है।

(२) सामूहिक परीक्षण (Group Tests)—बिने-साईमन विधि मौखिक तथा व्यक्तिगत थी। उसके प्रयोग के कुछ समय बाद लोग किसी ऐसी पद्धति की आवश्यकता समझने लगे जिससे थोड़े ही समय में बहुत से व्यक्तियो की परीक्षा हो जाए। प्रथम विश्वयुद्ध में जब संयुक्त-राज्य अमेरिका ने १९१७-१८ ई० मे प्रवेश किया तब इस कार्य को बड़ी प्रेरणा मिली। अमेरिका के सेना अधिकारियो को लाखो सैनिको की परीक्षा इस दृष्टि से लेनी थी कि उनमे से अफ़सर बनाये जाने योग्य उत्कृष्ट बुद्धि वाले व्यक्तियो का चुनाव किया जा सके। अपने परीक्षणों के आधार पर दो प्रकार की प्रश्नावलियाँ बनाई गईं—प्रथम श्रेणी की प्रश्नावली (Alfa Test) तथा द्वितीय श्रेणी की प्रश्नावली (Beta Tests)। पहली प्रश्नावली उन लोगों के लिए थी, जो अंग्रेजी जानते हैं। दूसरी प्रश्नावली ऐसे लोगो के लिए बनाई गई जो अंग्रेजी नही जानते थे अथवा अशिक्षित थे। इन प्रश्नावलियों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि एक साथ हजारों व्यक्तियों की परीक्षा ली सकती थी। इन परीक्षणो में प्रश्न पुस्तक के रूप मे छपे रहते हैं। इन का उत्तर एक दो शब्दों मे उन प्रश्नों के सामने ही लिखना होता है। ी एक प्रश्न के कई उत्तर छपे रहते हैं। परीक्षार्थी को ठीक उत्तर के रेखा खीं— ोती है।

T) अथवा थेमेटिक एपरसेप्शन टेस्ट (Themetic Apperception Tests) तथा रोर्शा टेस्ट (Rorschach Tests)। पहले कुछ चित्रों का प्रयोग किया जाता है तथा दूसरे में स्याही के धब्बों (Inkblots) का। आलपोर्ट (Allport) तथा वर्नन (Vernon) ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है।

बुद्धि-मापक परीक्षाओं की विशेषताएँ—

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि-मापक परीक्षाओं के सम्बन्ध में जो चर्चा की है, उसके आधार पर, इन की नीचे लिखी विशेषताएँ होनी चाहिए—

(१) सत्यता (Validity) अच्छी बुद्धि मापक परीक्षा वही है जो उसी मानसिक शक्ति अथवा योग्यता की जाँच करे, जिस के लिए वह बनाई गई है।

(२) वस्तुनिष्ठता (Objectivity)—बुद्धि-मापक परीक्षा के परिणाम मे, किसी भी प्रकार का पक्षपात का कोई अंश नहीं होना चाहिए। परीक्षक के निजी विचारों अथवा परीक्षार्थी के प्रति उसके मनोभावों का, परीक्षा के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में न तो बहुत ज्यादा नम्बर दिए जाएँ, न बहुत कम ही।

(३) विश्वसनीयता (Reliability)—बुद्धि मापक परीक्षा बनाने का मुख्य उद्देश्य यह है कि, इन के द्वारा की गई जाँच ठीक-ठीक हो। किसी परीक्षण (Test) को कितनी बार भी दोहराया जाए, परिणाम वही निकलना चाहिए। यही को हम विश्वसनीय कह सकते हैं क्योंकि सभी स्थानों पर वह एक जैसा ही उत्तर देगी। यही बात मानसिक परीक्षा के सम्बन्ध में भी होनी चाहिए।

(४) प्रमाणिकता (Standardization)—अच्छी बुद्धि मापक परीक्षा सदा प्रमाणिक होती है। जब किसी परीक्षण (Test) का अर्थ

जाता था। शेष प्रश्नो को छोड़ दिया जाता था। इसी प्रकार विभिन्न आयु के वालकों के लिए परीक्षाएँ बनाई गईं।

इस प्रकार परीक्षा को प्रमाणित बनाने के लिए हजारो विद्यार्थियो की परीक्षा ली जाती है। ७५ प्रतिशत ठीक उत्तर आने पर किसी भी प्रश्न को प्रमाणित मान लिया जाता है। इस तरीके से जो परीक्षाएँ प्रमाणित बनाई जाती हैं, उन्हें आयु-माप दण्ड (Age Scale) की परीक्षा कहते हैं।

बिन्दु-मापदण्ड (Norms) इस का निर्माण अमेरिका मे किया गया। इस पद्धति के अनुसार एक ही परीक्षा सभी आयु के बालकों को दे दी जाती है और उनके प्राप्तांको को देखा जाता है। जो अंक, कोई विशेष बालक पाता है, उसका अनुपात, उसी आयु के सामान्य बालकों के साथ खोजा जाता है। एक ही आयु के सैकडो सामान्य बालकों का औसत अंक निकाला जाता है। इसी औसत अंक से, किसी भी विशेष बालक के अंक की तुलना की जाती है। भिन्न-भिन्न आयु के बालकों के औसत अंक को विन्दु-मापदण्ड (Norms) कहते हैं।

मानसिक परीक्षाओं की उपयोगिता—

शिक्षा के क्षेत्र मे मानसिक परीक्षाओं के निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं—

(१) पाठशालाओ मे भिन्न भिन्न कक्षाओं मे तीव्र बुद्धि वाले, औसत बुद्धि वाले तथा मन्द-बुद्धि वाले सभी प्रकार के बालक एक साथ भर दिए जाते हैं। इनसे प्रशिक्षण का कार्य ठीक-ठीक नहीं हो सकता। इन मानसिक परीक्षाओं के द्वारा, बालकों की बुद्धि के अनुसार उनका वर्गीकरण किया जा सकता है।

(२) इन मानसिक परीक्षाओं के द्वारा अध्यापकों के काम की जाँच भली प्रकार से की जा सकती है। यदि कोई बालक बुद्धि-मापक परीक्षा के

Q. 92. How does mental conflict arise? What are its dangers? What principles should the teacher follow to avoid mental conflict in respect of pupils? [Panjab 1953]

(अन्तर्द्वन्द्व की उत्पत्ति किस प्रकार होती है? इस से क्या-क्या हानियाँ हो सकती हैं? बालकों को अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त करने के लिए अध्यापक को कौन-कौन से साधन अपनाने चाहिए?)

[पंजाब १९५३]

उत्तर—अचेतन मन—

प्रारम्भ में मनोवैज्ञानिक, मनोविज्ञान को चेतन (Consciousness) का ज्ञान ही समझते थे। वे मन का अध्ययन अन्तर्दर्शन (Introspection) के द्वारा करते थे। परन्तु मनुष्य के आचरण (Behaviour) का बहुत सा भाग ऐसा है जिसे चेतना के द्वारा नहीं समझा जा सकता। हमें अपने दैनिक जीवन में जो-जो अनुभव (Experiences) होते हैं, वे अपना कोई न कोई संस्कार (Impression) अवश्य छोड़ जाते हैं। यह संस्कार मन में किसी स्थान पर एकत्रित होते रहते हैं। इनमें से कुछ को, आवश्यकता पड़ने पर, हम फिर से स्मरण (Recall) कर सकते हैं। परन्तु कुछ संस्कार इतनी गहराई में होते हैं कि वे कभी-कभी ही प्रकट होते हैं और वह भी असाधारण (Abnormal) दशा में ही। मन के अन्दर वह कौन सा ऐसा गहरा स्थान है, जहाँ यह संस्कार दबे पड़े रहते हैं? बहुत लम्बे समय से, मनोवैज्ञानिक, इस समस्या को हल नहीं कर सके थे। जैसे ही रंगमंच पर मनोविश्लेषणवाद (Psycho-analysis) अवतीर्ण हुआ, मन के इस अज्ञात भाग की समस्या हल हो गई। फ्रायड (Freud) ने मन के इस अज्ञात भाग को अचेतन मन (Unconscious Mind) का नाम दिया। मनोविश्लेषणवाद के अन्य आचार्यों में एडलर (Adler), युंग (Jung) तथा जोन्स (Jones) इत्यादि का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने अचेतन मन की भावना को और भी स्पष्ट किया।

मनोविश्लेषणवाद के अनुसार मन के दो भाग हैं—पहला चेतन (Conscious) तथा दूसरा अचेतन (Unconscious)। चेतन मन,

अनुसार तीव्र बुद्धि वाला सिद्ध होता है, परन्तु कक्षा की साधारण परीक्षाओं में उसके नम्बर कम आते हैं तो यह कहा जा सकता है कि या तो अध्यापक ने अच्छी प्रकार से पढ़ाया नहीं, अथवा बालक परिश्रम से दूर भागता है।

(३) इन बुद्धि-मापक परीक्षाओं के द्वारा पाठशाला की सालाना परीक्षाओं में भी सहायता की जा सकती है। यदि कोई बालक इन परीक्षाओं के आधार पर प्रखर-बुद्धि ठहराया जाता है, तो वह वार्षिक परीक्षा मे असफल होने पर भी ऊँची कक्षा मे चढ़ाया जा सकता है, क्योंकि हो सकता है कि बीमारी आदि के कारण से बालक के नम्बर पाठशाला की परीक्षा में कम आए हों।

(४) कई बार बालको के सामने यह समस्या आ खड़ी होती है कि पाठ्यक्रम के भिन्न-भिन्न विषयो मे से कौन-कौन से विषय, अध्ययन के लिए लिए जाएँ। हम बुद्धि-मापक परीक्षाओ के आधार पर, इस बात का निश्चय कर सकते हैं कि कौन से बालक के लिए कौन-कौन से विषय उपयुक्त रहेंगे।

(५) मानसिक परीक्षाओ के द्वारा बालकों के परिश्रम की जाँच की जा सकती है। एक सामान्य बालक काफी परिश्रम करके जितने नम्बर प्राप्त करता है, उस से बहुत कम परिश्रम के द्वारा प्रखर बुद्धि के बालक के द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं। इसलिए बिना बुद्धि-मापक परीक्षाओ के, अध्यापक को कुछ भी पता नहीं लग सकता कि कौन सा बालक परिश्रम कर रहा है और कौन सा नहीं।

(६) आज देश के सामने बड़ी समस्या बेकारी की है। इसलिए आधुनिक शिक्षण पद्धति में व्यावसायिक विषयों का समावेश किया गया है। कौन सा बालक कौन से व्यवसाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा, इस प्रकार का व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) बुद्धि-मापक परीक्षाओं के द्वारा ही दिया जा सकता है।

(७) पिछले किसी अध्याय में बालापराध (Delinquency) के सम्बन्ध में चर्चा की गई है। इन बुद्धि-मापक परीक्षाओ के द्वारा बालापराधियों (Delinquents) का भली भाँति अध्ययन किया जा सकता है।

(८) पाठशालाओं की परीक्षाओं, के द्वारा यह सम्भव नहीं कि बालको की भावी सफलताओं के सम्बन्ध मे कुछ अनुमान लगाया जा सके। इन

मानसिक परीक्षणों के आधार पर हम किसी भी बालक की भावी सम्भा
(Future possibilities) का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

बुद्धि-मापक परीक्षाओं की सीमा—

मानसिक परीक्षाओं में नीचे लिखे दोष पाये जाते हैं—

(i) इन परीक्षाओं में अनुमान (Guess Work) का अंश
होता है। अतः इन्हें हम बहुत ही विश्वसनीय नहीं मान सकते।

(ii) जितनी बार परीक्षा ली जाएगी, वातावरण भिन्न होगा। अ
परिणाम भी भिन्न-भिन्न ही रहेंगे।

(iii) परीक्षण (Tests) के लिए जिन यन्त्रों (Instrume
का प्रयोग किया जा रहा है, वे अभी अपूर्ण (Imperfect) ही हैं।

(iv) इन परीक्षणों के द्वारा जिस बुद्धि की परीक्षा की जाती
के स्वरूप के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में मत भेद है।

(v) क्योंकि व्यक्तियों के संवेगों तथा आदतों पर ध्यान नहीं दिय
इसलिए, इनके द्वारा बालकों के भविष्य के सम्बन्ध में ठीक-ठीक अनुमा
लगाया जा सकता।

२१

अचेतन मन का ज्ञान
(Psychology of the Unconscious)

Q. 89. What bearing has the psychology of the unconscious on education ? What are the functions of the teacher from the stand point of mental hygiene ?

[Panjab 1952 Suppl. 1954, 1957; Sagar 1952]

(अचेतन मन का शिक्षा की दृष्टि से क्या महत्व है ? मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से, इस सम्बन्ध में, अध्यापक का क्या कर्त्तव्य है ?)

[पंजाब १९५२ सप्ली०, १९५४, १९५७, सागर १९५२]

Q. 90. Describe the causes of inferiority complex in children. How would you cuer this complex.

[Panjab 1949 Suppl.]

(बालकों में हीनता की ग्रन्थि कैसे उत्पन्न होती है—व्याख्या करो। इसे दूर करने के लिए आप कौन से साधन अपनाओगे ?)

[पंजाब १९४९ सप्ली०]

Q. 91. What is the teaching of Adler with regard to the causes and cure of inferiority complex ? [Panjab 1953 Suppl.]

(हीनता की ग्रन्थि के निर्माण तथा उसको दूर करने के सम्बन्ध में एडलर के क्या विचार हैं—स्पष्ट करो।) [पंजाब १९५३ सप्ली०]

Q 92. How does mental conflict arise? What are its dangers? What principles should the teacher follow to avoid mental conflict in respect of pupils? [Panjab 1953]

(अन्तर्द्वन्द्व की उत्पत्ति किस प्रकार होती है? इस से क्या-क्या हानियाँ हो सकती है? बालकों को अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त करने के लिए अध्यापक को कौन-कौन से साधन अपनाने चाहिए?)

[पंजाब १९५३]

उत्तर—अचेतन मन—

प्रारम्भ मे मनोवैज्ञानिक, मनोविज्ञान को चेतन (Consciousness) का ज्ञान ही समझते थे। वे मन का अध्ययन अन्तर्दर्शन (Introspection) के द्वारा करते थे। परन्तु मनुष्य के आचरण (Behaviour) का बहुत सा भाग ऐसा है जिसे चेतना के द्वारा नही समझा जा सकता। हमे अपने दैनिक जीवन मे जो-जो अनुभव (Experiences) होते है, वे अपना कोई न कोई संस्कार (Impression) अवश्य छोड़ जाते है। यह संस्कार मन मे किसी स्थान पर एकत्रित होते रहते है। इनमे से कुछ को, आवश्यकता पड़ने पर, हम फिर से स्मरण (Recall) कर सकते है। परन्तु कुछ संस्कार इतनी गहराई मे होते है कि वे कभी-कभी ही प्रकट होते है और वह भी असाधारण (Abnormal) दशा मे ही। मन के अन्दर वह कौन सा ऐसा गहरा स्थान है, जहाँ यह संस्कार दबे पड़े रहते है? बहुत लम्बे समय से, मनोवैज्ञानिक, इस समस्या को हल नही कर सके थे। जैसे ही रङ्गमंच पर मनोविश्लेषणवाद (Psycho-analysis) अवतीर्ण हुआ, मन के इस अज्ञात भाग की समस्या हल हो गई। फ्रायड (Freud) ने मन के इस अज्ञात भाग को अचेतन मन (Unconscious Mind) का नाम दिया। मनोविश्लेषणवाद के अन्य आचार्यों मे एडलर (Adler), युंग (Jung) तथा जोन्स (Jones) इत्यादि का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने अचेतन मन की व्याख्या को और भी स्पष्ट किया।

मनोविश्लेषणवाद के अनुसार मन के दो भाग है—पहला चेतन (Conscious) तथा दूसरा अचेतन (Unconscious)। चेतन मन,

र शेष भाग जल के अन्दर रहता है. इसी प्रकार हमारे
। चेतन मन कहलाता है। जब समुद्र में तूफान आता है
बर्फ का टुकड़ा उमट आता है और भीतरी भाग बाहर
प्रकार जब कोई मनुष्य अन्तर्द्वन्द्व (Mental Conflict)
ता है, तब हमारे अचेतन मन का कुछ भाग भी, ऊपर चेतन
है।

आगे जाकर अचेतन मन के भी दो भाग किए हैं—(i) प्रसुप्त
िहारी। उसका कथन है कि हमारा प्रसुप्त मन ही वास्तविक
है। वासना का उद्गम स्थल यही है। यदि वासना का दम-
ession) किया जायगा तो व्यक्तित्व का विकास ठीक प्रकार
गा। वासना के शोधन (Sablimation of Sex) से
कास ठीक दिशा में हो सकता है। हमारी नैतिकता की रक्षा
nsor) द्वारा होती है। हमारा आदर्श 'स्व' प्रतिहारी के द्वारा
होता है। हमारे अचेतन मन का निर्माण भी चेतन मन के ही
ऊपर यह बताया ही जा चुका है, कि हमारे दैनिक जीवन के
कार रूप में, अचेतन मन में विद्यमान रहते हैं। यदि अचेतन
रने वाले नए विचार, पहले वाले विचारों से मेल नहीं खाते तो
घर्ष उठ खड़ा होता है। यह बात तो सभी को याद होगी कि
ी घटना के हो जाने पर हमारा मन बड़ा विक्षुब्ध हो जाता
ता ही चेतन तथा अचेतन मन का संघर्ष है। जब चेतन मन
कोई विचार, हमारे नैतिक आदर्श के साथ मेल नहीं खाता, तो
nsor) उसे रोक देता है और संघर्ष का प्रारम्भ हो जाता है।
र अचेतन मन के बीच संघर्ष जितना कम होगा, उतना ही
ठीक तथा स्वास्थ्यपूर्ण दिशा में विकसित होगा। चेतन और
यह संघर्ष ही अन्तर्द्वन्द्व (Mental Conflict) कहलाता

है। संसार का कोई भी व्यक्ति इस अन्तर्द्वन्द्व से बचा हुआ नहीं। अन्तर केवल मात्रा का हो सकता है।

अचेतन मन के पक्ष में कुछ तथ्य –

(i) हमारी भूलें—फ्रायड (Freud) ने अपनी एक पुस्तक "मनोविश्लेषण" (Psycho-analysis) में अचेतन मन की कई बातों को स्पष्ट किया है। फ्रायड का ऐसा विचार है कि जिस कार्य को हम करना नहीं चाहते, उसे प्रायः भूल जाया करते हैं। कई बार हम पत्र लिख कर डाक में डालना भूल जाते हैं। इसका कारण भी हमारा अचेतन मन ही है। हमारे अचेतन मन में उस व्यक्ति-विशेष के सम्बन्ध में कुछ ऐसे कटु अनुभव हैं जो हमें इस बात के लिए प्रेरित करते रहते हैं कि हम ऐसे व्यक्ति के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखें।

(ii) हमारे दिवा-स्वप्न—प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में यह देखा जा सकता है कि कभी-कभी वह कल्पना के घोड़े दौड़ाया करता है। कल्पना ही कल्पना में कभी वह बम्बई की सैर करता है, तो कभी पैरिस और न्यू यार्क की। कभी-कभी वह कल्पना में सुख का अनुभव करता है, कभी दुख का। कभी-कभी बड़ी ऊट-पटांग कल्पनाएँ भी उस के मन में आ जाती हैं, जिनका कोई आधार नहीं होता। इन कल्पनाओं पर वह अपना नियन्त्रण नहीं रख सकता। इसका कारण मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार यह है कि इन कल्पनाओं का संचालन हमारे अचेतन मन के द्वारा होता है।

(iii) हमारे स्वप्न—स्वप्नों (Dreams) के सम्बन्ध में फ्रायड (Freud), तथा अन्य मनोविश्लेषणवादियों ने बड़े विस्तार से विचार किया है। स्वप्नों के अन्दर कभी [illegible] हैं जिन्हें हम [illegible] अन्दर कभी [illegible] [illegible]

भावना-ग्रन्थियाँ (Complexes)—

पिछले एक अध्याय में इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि जब कई संवेग (Emotion) किसी वस्तु या विचारधारा के आस-पास, आपस में मिल कर एकत्रित हो जाते हैं तो स्थायीभाव (Sentiment) को जन्म देते हैं। यही बात हम भावना-ग्रन्थियों के सम्बन्ध में भी कह सकते हैं। दोनों का ही सम्बन्ध हमारे आन्तरिक भावों से है तथा दोनों ही हमारे आचरण (Behaviour) को प्रभावित करते हैं। दोनों में अन्तर यह है कि जहाँ स्थायी भावों का सम्बन्ध भावाभिव्यक्ति (Expression) से है वहाँ भावना-ग्रन्थियाँ (Compxes), अवदमन (Repression) का परिणाम हैं। स्थायी भाव, अचेतन मन से शक्ति ग्रहण करते हुए भी चेतना के स्तर पर रहते है परन्तु भावना-ग्रन्थियाँ केवल अचेतन मन में ही रहती हैं। स्थायी भावों को व्यक्ति स्वीकार करता है परन्तु भावना-ग्रन्थियों की स्थिति को वह स्वीकार नहीं करता। यद्यपि भावना-ग्रन्थियाँ व्यक्ति को अवसर परेशान करती रहती हैं, फिर भी व्यक्ति को उनकी स्थिति का ज्ञान नहीं होता।

भावना-ग्रन्थियों का निर्माण—जब तक हमारे मन की वृत्तियाँ साधारण रूप में, अपने आपको अभिव्यक्ति कर सकती हैं, तब तक मन का विकास ठीक दिशा में होता रहता है। जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, हमारे जीवन का प्रत्येक नया अनुभव कोई न कोई संस्कार हमारे मन पर छोड़ जाता है। और यह नया संस्कार पुराने संस्कारों के साथ मिल कर एक हो जाता है। परन्तु सदा ऐसा नहीं होता। कभी-कभी हमें कुछ ऐसे अनुभव भी होते हैं, जो बड़े दुखदायी (Painful) होते हैं और कभी-कभी हमें बड़ा परेशान कर देते हैं। इस प्रकार के कष्टप्रद तथा दुखदायी अनुभव किसी पदार्थ या विचार-विशेष के साथ मिल कर शक्तिशाली तत्व बन जाते हैं। अब यह शक्तिशाली तत्व अपने आप को अभिव्यक्त करना चाहता है। यह कोई न कोई ऐसा अवसर ढूंढना चाहता है, जब कि यह अपना प्रकाशन कर सके। परन्तु आन्तरिक या बाहरी दबावट के कारण इसे अभिव्यक्ति या प्रकाशन का अवसर नहीं दिया जाता। यह इसलिए होता है कि भौतिक अथवा

सामाजिक कारणों से इसमे तथा आत्म-सम्मान के स्थायी भाव (Self-regarding Sentiment) में विरोध (Opposition) होता है। इस विरोध के कारण हमारे मन में अन्तर्द्वन्द्व उठ खड़ा होता है और हम ऐसी वृत्ति या तत्व का दमन करना चाहते हैं जिससे हमारी दुःखदायी स्मृतियाँ सजग हो उठती हैं। इसलिए हमारा चेतन मन, इस प्रकार के तत्व को ग्रहण नहीं करता और वह तत्व हमारे अचेतन मन मे दबा पड़ा रहता है। जब हमारा चेतन मन किसी संवेगात्मक तत्व को ग्रहण नहीं करता तब वह तत्व भावना-ग्रन्थि (Complex) का रूप धारण कर लेता है। यह भावना-ग्रन्थि हमारे अचेतन मन मे दबी पड़ी रहती है और कई प्रकार से हमारे आचरण को प्रभावित करती है। कभी-कभी स्वप्न आदि के रूप मे उसके दर्शन होते हैं।

भावना-ग्रन्थियाँ और अन्तर्द्वन्द्व—

इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं :—

(१) यदि इन भावना-ग्रन्थियों (Complexes) तथा हमारे नैतिक-आदर्श (Super-ego) मे किस प्रकार का समझौता हो जाता है तो हमारा अन्तर्द्वन्द्व (Mental Conflict) समाप्त हो जायगा और हमारे व्यवहार मे किसी प्रकार की असाधारणता नहीं रहेगी।

(२) यदि हमारी भावना-ग्रन्थियाँ बहुत ही प्रबल होंगी तो उनका हमारे नैतिक-आदर्श के साथ समझौता (Compromise) नहीं हो सकेगा और अन्तर्द्वन्द्व बढ़ जाएगा। इस अन्तर्द्वन्द्व के फलस्वरूप हमारा व्यक्तित्व कई भागों में बट जाएगा।

(३) यदि हमारी भावना-ग्रन्थियाँ अधिक शक्तिशाली न हुईं तो हम इन का अवदमन कर लेंगे। परन्तु भावना-ग्रन्थियों का अवदमन करने से ही समस्या का हल नहीं हो सकता। वे किसी न किसी रूप में अपने प्रकाशन अथवा अभिव्यक्ति का मार्ग ढूंढ ही निकालती हैं। इसके उदाहरण के रूप मे हम अपनी कई साहित्यिक रचनाओं को ले सकते हैं जैसा—मिस [illegible], बड़े-बड़े पैर [illegible], अपने [illegible] के [illegible] [illegible]।

विज्ञान मे वह सदा पिछडा रहता था। मनोविश्लेषण के आधार पर पत
चला कि भाषा और इतिहास को पढने के लिए उसकी माँ कहा करती थ
और गणित तथा विज्ञान के लिए उसके पिता। वह माँ से बहुत प्रे
करता था परन्तु पिता से घृणा। पिता उसके साथ अच्छा व्यवहार नह
करता था, इसलिए पिता के द्वारा बताए गए विषय, उसे प्रिय नही थे।

जिस घर मे सदा भय का वातावरण बना रहता है, वहाँ पर बाल
तुतलाने (Stammering) लगते हैं।

उपरोक्त सभी बातो का यही निष्कर्ष निकलता है कि बालकों क
भावनाओ का दमन करना किसी भी हालत मे ठीक नही। दमन से उनवे
व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नही होगा तथा उनकी मानसिक-शक्ति घट जाएगी
यदि बालको के साथ स्नेह का व्यवहार किया जाए, तथा उनकी भावनाअ
को सशोधित रूप मे अभिव्यक्ति का अवसर मिलता रहे तो उनके मन
कोई भावना-ग्रन्थि उत्पन्न नही होगी तथा उनके व्यक्तित्व का विकास भ
समुचित दिशा मे होगा।

Q 93 What do you understand by a complex? Distin
guish between inferiority complex and inferiority feeling.

[Panjab 1948

(भावना ग्रन्थि से आपका क्या तात्पर्य है? हीनता की ग्रन्थि औ
हीनता की भावना में क्या अन्तर है?) [पजाब १९४८

उत्तर—भावना-ग्रन्थि (Complex) के सम्बन्ध में पहले काफी विस्ता
से चर्चा की जा चुकी है। अब प्रश्न के दूसरे भाग का उत्तर दिया जाएगा।

हीनता की ग्रन्थि—

प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी एडलर (Adler) के मतानुसार जब किसं
बालक का जन्म होता है तो उसकी शक्ति तथा साधन, सीमित होते हैं। जैसे
जैसे बालक बड़ा होता है, वैसे-वैसे उसे अपनी सीमाओं तथा दुर्बलताओं क
ज्ञान होता जाता है। बालक, अपने से बड़े व्यक्तियों (Elders) से घिर
रहता है, जो उससे सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ (Superior) होते हैं। उसं

मात-पात का सारा वातावरण ही इतना गहन (Complicated) तथा व्यापक होता है कि वह घबरा सा जाता है। सभी ओर से शक्तिशाली तत्वों से घिरा, वह एक छोटा सा अबोध प्राणी, अपने आपको स्वतन्त्रतापूर्वक अभिव्यक्त नहीं कर सकता। उसकी आशाओं तथा उसकी प्रार्थनाओं पर कोई भी ध्यान नही देता। उसे यह अपनी हीनता बड़ी खलती है तथा कष्ट पहुँचाती है।

अतएव वह प्रारम्भ से अपने जीवन का एक उद्देश्य बना लेता है। और वह उद्देश्य है श्रेष्ठता अथवा शक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयास करना। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, वह अपने ढग से ही प्रयत्न करता है। उसके जीवन मे जो घटना भी घटती है, उसका सम्बन्ध वह अपने उद्देश्य से जोड़ लेता है। हीनता की भावना उसे, और भी, अपने उद्देश्य की ओर प्रेरित करती है। श्रेष्ठता तथा शक्ति को प्राप्त करने के प्रयास मे, बालक कभी-कभी दूसरो से ईर्ष्या भी करने लगता है। वह नही चाहता कि किसी भी क्षेत्र में कोई दूसरा बालक, उस से आगे बढे। चाहे वह स्वयं उन्नति करके आगे बढ़े अथवा दूसरे की अवनति हो, वह इन बातो की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं देता। इसी प्रकार श्रेष्ठता तथा शक्ति को प्राप्त करने का प्रयास तथा हीनता की भावना, प्रत्येक मनुष्य में साथ-साथ चलते हैं। यदि हम अपने उद्देश्य को प्राप्त करने मे सफल हो जाते हैं तो हमारी यह हीनता की भावना दूर हो जाती है। परन्तु यदि हम अपने प्रयास में असफल रहते हैं और श्रेष्ठता तथा शक्ति, इन दोनो को प्राप्त नही का कर पाते अथवा हमारी हीनता सीमा से भी बढ जाती है, तब हमारे मन मे हीन की ग्रन्थि (Inferiority Complex) बनने लगती है।

हीनता की ग्रन्थि का निर्माण भी उसी प्रकार होता है जिस प्रकार कि किसी स्थायी भाव अथवा भावना ग्रन्थि का। हम भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सामर्थ्य प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस संघर्ष में कई संवेग भी आ जुड़ते हैं। सामर्थ्य प्राप्त करने के इस प्रयास में हम प्राय. असफल रहते हैं अथवा मार्ग में कई बाधाएं आखड़ी होती हैं। बार-बार की असफलताएँ अथवा रुकावटें हमारे मन को जो किसी न किसी प्रकार अपने उद्देश्य को प्राप्त करना चाहता है,

अशान्त कर देते हैं। मन की यह अशान्ति अन्तर्द्वन्द (Mental Conflict) का रूप धारण कर लेती है। हमारी इस मानसिक अशान्ति को दूर करने के लिए प्राकृतिक शक्तियाँ हीनता की भावना का अवदमन कर देती हैं। तब हीनता, दूर अचेतन मन की गहराई में चली जाती है। अब हीनता की ग्रन्थि की उत्पत्ति हो गई। हम चेतन मन में अपने आप को हीन न समझ कर दूसरों को हीन समझने लगते हैं। संसार के दूसरे लोग हमें अपने शत्रु प्रतीत होने लगते हैं जो हमें नीचा दिखाना चाहते हैं।

यह उस व्यक्ति का मानसिक चित्र है जो हीनता की ग्रन्थि से ग्रस्त है। ऐसा व्यक्ति सर्वदा दूसरों की शिकायत करता रहेगा। कोई भी दो व्यक्ति जब बात करेंगे तो उसे यही प्रतीत होगा कि उसके सम्बन्ध में ही बातचीत हो रही है। कुछ बालक इसी हीनता की ग्रन्थि के कारण तुतलाने लगते हैं तथा कई बालक रात को बिस्तर पर पेशाब कर देते (Bed-wetting) हैं। प्रौढ़ व्यक्ति बालकों जैसा आचरण करने लगते हैं। वे आगे बढ़ने का यत्न क्यों करें जब कि सारा संसार ही, उन्हें गिराने पर तुला हुआ है।

हीनता की ग्रन्थि तथा हीनता की भावना (Inferiority Complex) and Feeling of Inferiority)—

हीनता की ग्रन्थि तथा हीनता की भावना—इन दोनों में बहुत अन्तर है। हीनता की भावना चेतन स्तर (Conscious level) पर रहती है तथा हीनता की ग्रन्थि अचेतन मन (Unconscious Mind) में। जिस व्यक्ति के मन में हीनता की भावना होती है, उसे अपनी दुर्बलताओं तथा सीमाओं (Limitations) का ज्ञान होता है। परन्तु जो व्यक्ति हीनता की ग्रन्थि से ग्रस्त होता है, उसे अपनी हीनता का एहसास ही नहीं होता। वह अपने आप को किसी भी क्षेत्र में हीन स्वीकार नहीं करेगा। वह तो यही समझता है कि दुनिया उस के लिए बहुत बाधक है, इसीलिए तो उसे सफलता नहीं मिल रही। "यदि वे मेरे मार्ग में रोड़ा न अटकाते तो मैं कहीं का कहीं पहुँच जाता।" ऐसी हालत में प्रयत्न करने का कोई लाभ तो है ही नहीं, इसलिए तो वह भी बस, आगे बढ़ने का कोई प्रयत्न नहीं करता। ऐसा व्यक्ति सदा चिन्तित (Worried) तथा अशान्त (Disturbed)

रहेगा। दूसरी ओर हीनता की भावना स्थिर रूप से नहीं रहती। यह व्यक्ति को प्रेरणा देती है कि यह आगे बढ़ने के लिए और अधिक प्रयास करे।

यदि बार-बार व्यक्ति को असफलता मिलेगी तो यही हीनता की भावना फिर स्थायी हो जाएगी और हीनता की ग्रन्थि के रूप में परिणित हो जाएगी। इस प्रकार हीनता की भावना की आधार-शिला पर ही हीनता की ग्रन्थि का महल खड़ा होता है।

हीनता की ग्रन्थि का निदान (Cure of Inferiority Complex)—

हीनता की ग्रन्थि का उपचार करने के लिए बालकों को प्रोत्साहन देना आवश्यक है। केवल सहानुभूति के प्रदर्शन से ही काम नहीं चलेगा। अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालक स्वतन्त्रतापूर्वक काम को करना सीखें। साथ ही साथ उन्हें ऐसे काम भी सौंपने चाहिए, जिनके द्वारा उनमें उत्तरदायित्व की भावना पैदा की जासके।

क्रिया द्वारा ज्ञानार्जन (Learning by Doing) का सिद्धान्त भी इस दिशा मे बड़ा उपयोगी है। जो बालक मानसिक रूप मे पिछड़े होते हैं, वह हस्त क्रिया में आगे बढ़ सकते हैं। इस सिद्धान्त के द्वारा बालकों में आत्म-विश्वास की भावना पैदा की जासकती है।

पाठान्तर क्रियाओं (Extra-Curricular activities) के द्वारा भी हीनता की ग्रन्थि का निवारण किया जासकता है। इन क्रियाओं के द्वारा भी बहुत से बालक अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर सकेंगे।

जिन बालकों मे कोई शारीरिक दोष होता है, वह इस ग्रन्थि के शिकार जल्दी हो जाते हैं उन के लिए ऐसे कार्यों का आयोजन करना चाहिए जिनमे वे भी आगे बढ सकें।

अध्यापकों तथा अभिभावकों को चाहिए कि वे बालकों को हर घड़ी बुरा भला न कहते रहें, और न ही उनको किसी दुर्बलता का मजाक ही उड़ाएँ।

साथ सन्तुलन (Adjustment) बनाये रख सके। शिक्षा के द्वारा हम बालकों का सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं। परन्तु यह सर्वांगीण विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि बालक मानसिक रूप से स्वस्थ्य न होंगे और अपने दैनिक जीवन के साथ मानसिक सन्तुलन (Mental adjustment) न बनाए रख सकेंगे। आजकल का जीवन बड़ा जटिल बनता जा रहा है जहाँ व्यक्ति को पग-पग पर निराशाओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होना और भी आवश्यक है।

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान की परिभाषा—वैब्सटर शब्द कोष (Webster's Dictionary) के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—

"Mental Hygiene is the science and art of maintaining mental health and preventing the development of insanity and neurosis. General hygiene cares for physical health only but mental hygiene includes mental health as well as physical health because mental health is not possible without physical health"

अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान वह विज्ञान है जिसके द्वारा हम मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हैं तथा पागलपन और स्नायु सम्बन्धी रोगों को पनपने से रोकते हैं। साधारण स्वास्थ्य विज्ञान में केवल शारीरिक स्वास्थ्य का ही ध्यान दिया जाता है परन्तु मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी सम्मिलित किया जाता है क्योंकि बिना शारीरिक स्वास्थ्य के मानसिक स्वास्थ्य सम्भव नहीं हो सकता।

अमेरिका में १९२९ ई० में, तृतीय बाल स्वास्थ्य सम्मेलन पर (Third White House Conference on Child Health and Protection) मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के कुछ विशेषज्ञ एकत्रित हुए। वहाँ उन्होंने मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा इन शब्दों में की—

"Mental health may be defined as the adjustment of

maximum of effectiveness, satisfaction, cheerfulness and socially considerate behaviour and the abilities of facing and accepting the realities of life "

अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा के रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति आपस में तथा समाज के अन्य सदस्यों के साथ सन्तुलन बनाए रख सकें। इस के साथ-साथ वे अपनी क्षमताओं के अनुसार सन्तोष की भावना से जीवन की वास्तविकताओं को ग्रहण कर सकें।

क्रो और क्रो (Crow and Crow) के मतानुसार मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं—

"Mental Hygiene is a science that deals with human welfare and pervades all fields of human relationships."

अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो मानव कल्याण के लिए है और मानवीय सम्बन्धों के सभी क्षेत्रों में इसका [illegible] है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की सहायता से व्यक्ति समाज के अन्य व्यक्तियों तथा अपने वातावरण के साथ सन्तुलन बनाये रख सकता है। इसके द्वारा मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर रखा जा सकता है तथा मानसिक अव्यवस्थाओं (Mental Disorders) का उपचार भी किया जा सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का महत्व की दृष्टि से [illegible] इस सम्बन्ध में [illegible]

साथ सन्तुलन (Adjustment) बनाये रख सके। शिक्षा के द्वारा हम बालकों का सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं। परन्तु यह सर्वांगीण विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि बालक मानसिक रूप से स्वस्थ न होंगे और अपने दैनिक जीवन के साथ मानसिक सन्तुलन (Mental adjustment) न बनाए रख सकेंगे। आजकल का जीवन बड़ा जटिल बनता जा रहा है जहाँ व्यक्ति को पग-पग पर निराशाओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति मे मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होना और भी आवश्यक है।

मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान की परिभाषा—वैब्सटर शब्द कोष (Webster's Dictionary) के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है—

"Mental Hygiene is the science and art of maintaining mental health and preventing the development of insanity and neurosis. General hygiene cares for physical health only but mental hygiene includes mental health as well as physical health because mental health is not possible without physical health"

सम्बन्ध एक ऐसे समुदाय (Group) के साथ हो जाता है जो घर से बडा है। यहाँ बालक को भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगो से मिलना पडता है। यह उसके लिए एक नया संसार है, जहाँ फिर से उसे सन्तुलन (Adjustment) बनाए रखना पडता है। इस प्रयास मे वह कभी-कभी असफल होता है और दुख उठाता है। यदि अध्यापक को मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की पर्याप्त जानकारी होगी तो वह इस दिशा मे बालक की काफी सहायता कर सकता है।

(iii) अध्यापक और उपचार-मनोविज्ञान (Psychiatry) का ज्ञाता एक ही समस्या को भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखते हैं। एक डरपोक और झेंपू बालक, अध्यापक के लिए कोई समस्या उत्पन्न नही करता, इसलिए अध्यापक उस पर विशेष ध्यान देता। उसकी जोर जबरदस्ती सदा ऐसे बालक पर चलती है जो हर समय लड़ता झगडता रहता है। परन्तु मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञाता जानता है कि लडने झगडने वाला बालक तो जल्दी ठीक हो सकता है। परन्तु डरपोक तथा झेंपू बालक, उनके ठीक होने मे काफी देर लग सकती है। इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के द्वारा अध्यापक को एक नया दृष्टिकोण प्राप्त हो सकता है।

(iv) मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान को जानने वाला अध्यापक, शिक्षण पद्धति में उचित संशोधन कर सकता है। पाठ्‌क्रम तथा शिक्षा सम्बन्धी अन्य क्रियाओ (Activities) को वह, बालको की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित (Modify) कर सकता है। अनुशासन (Discipline) की समस्या को भी वह एक नए दृष्टिकोण से ही देखेगा।

(v) मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अध्ययन करने वाला अध्यापक, किसी समस्यात्मक बालक (Problem Child) को बुरा भला नही कहेगा वरन् उसका व्यवहार, ऐसे बालक के साथ, चिकित्सक के समान होगा। वह भी ध्यान से ऐसे बालक का उपचार करने का प्रयास करेगा। वह बालकों के स्वास्थ्य के प्रति पूर्ण सावधान रहेगा और प्रशिक्षण देने के साथ ही साथ, इस बात का भी प्रयास करेगा कि प्रत्येक बालक, प्रसन्न तथा सुखी रहे।

the unsocial pupil whose timidity prevents him from mix-
ing with others."

अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान, तो एक प्रकार का दृष्टिकोण है जि
अध्यापिका अपनाती है। इस का सम्बन्ध तो पाठशाला सम्बन्धी सभी कि
कलापों से है जैसे—उसका प्रश्न पूछने का ढंग, उत्तर ग्रहण करने का ढं
परीक्षा लेने की विधि, खेल के मैदान में भिन्न-भिन्न क्रियाओं का निरीक्षण त
संचालन करना; कक्षा सम्बन्धी क्रियाओं में भाग लेने के लिए विद्यार्थि
को प्रेरणा देने का ढंग, अनुशासनहीन बालक को अनुशासन में लाने का ढं
चोर बालक, दूसरों को तंग करने वाला बालक तथा डरपोक बालक, इन
के प्रति उसका दृष्टिकोण।

जैसे-जैसे बालक बड़ा होता जाता है, उसके सामने कितनी ही बाधाएँ
तथा निराशाएँ आती हैं। यदि उसका मानसिक स्वास्थ्य ठीक होगा तो वह
इन सब पर काबू पालेगा और वातावरण के साथ ठीक-ठीक सन्तुलन कर
सकेगा।

अध्यापक के लिए मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता

निम्नलिखित कारणो से अध्यापक के लिए मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का
परिचय प्राप्त करना आवश्यक है—

(i) मानसिक असन्तुलन (Maladjustment) के रोगो (Cases)
को गम्भीर रूप धारण करने से पहले ही ठीक किया जा सकता है। बड़ों
की अपेक्षा छोटे बालको के व्यक्तित्व को जल्दी प्रभावित किया जा सकता है।
इसलिए कक्षा की दृष्टि से मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का महत्व बालकों के
लिए बहुत अधिक है।

(ii) पाठशाला में अक्सर बालक वातारण के साथ सन्तुलन बनाए
रखने में असमर्थ होता है। पाठशाला में आने से पूर्व बालक अपने घर में रहता
है जहाँ उसकी इच्छाओं की पूर्ति की जाती है और उसे हर प्रकार से सन्तुष्ट
रखने का यत्न किया जाता है। घर में बालक पूर्ण रूप से संवेगात्मक सुरक्षा
(Emotional Security) का अनुभव करता है। पाठशाला में उसका

सम्बन्ध एक ऐसे समुदाय (Group) के साथ हो जाता है जो घर से बड़ा है। यहाँ बालक को भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगो से मिलना पड़ता है। यह उसके लिए एक नया संसार है, जहाँ फिर से उसे सन्तुलन (Adjustment) बनाए रखना पड़ता है। इस प्रयास मे वह कभी-कभी असफल होता है और दुख उठाता है। यदि अध्यापक को मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की पर्याप्त जानकारी होगी तो वह इस दिशा मे बालक की काफी सहायता कर सकता है।

(iii) अध्यापक और उपचार-मनोविज्ञान (Psychiatry) का ज्ञाता एक ही समस्या को भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखते हैं। एक डरपोक और झेंपू बालक, अध्यापक के लिए कोई समस्या उत्पन्न नही करता, इसलिए अध्यापक उस पर विशेष ध्यान देता। उसकी जोर जबरदस्ती सदा ऐसे बालक पर चलती है जो हर समय लड़ना झगड़ता रहता है। परन्तु मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञाता जानता है कि लड़ने झगड़ने वाला बालक तो जल्दी ठीक हो सकता है। परन्तु डरपोक तथा झेंपू बालक, उनके ठीक होने मे काफी देर लग सकती है। इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के द्वारा अध्यापक को एक नया दृष्टिकोण प्राप्त हो सकता है।

(iv) मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान को जानने वाला अध्यापक, शिक्षण पद्धति मे उचित संशोधन कर सकता है। पाठ्यक्रम तथा शिक्षा सम्बन्धी अन्य क्रियाओ (Activities) को वह, बालकों की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित (Modify) कर सकता है। अनुशासन (Discipline) की समस्या को भी वह एक नए दृष्टिकोण से ही देखेगा।

(v) मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अध्ययन करने वाला अध्यापक, किसी समस्यात्मक बालक (Problem Child) को बुरा भला नही कहेगा वरन् उसका व्यवहार, ऐसे बालक के साथ, चिकित्सक के समान होगा। वह बड़े ध्यान से ऐसे बालक का उपचार करने का प्रयास करेगा। वह बालकों के स्वास्थ्य के प्रति पूर्ण सावधान रहेगा और प्रशिक्षण देने के साथ ही साथ, इस बात का भी प्रयास करेगा कि प्रत्येक बालक, प्रसन्न तथा सुखी रहें।

(vi) मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान के अध्ययन के द्वारा अध्यापक अपना उपचार स्वयं भी कर सकता है। आजकल बहुत से अध्यापक स्वयं भी असन्तुलित (Maladjusted) रहते हैं। उनको इससे लाभ पहुँच सकता है।

(vii) यदि अध्यापक को मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की जानकारी होगी तो वह ऐसे बालको को, जिनका वह स्वयं उपचार नही कर सकता, किसी उपचार-मनोविज्ञान के ज्ञाता (Psychiatrist) के पास अथवा किसी और उचित रुग्णालय (Clinic) मे भेज सकता है। इस प्रकार वह कई बालकों का जीवन बचा सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य उत्पन्न करने के साधन (Steps to promote Mental Health)—

अब कुछ ऐसे साधनो का वर्णन किया जाता है जिनके द्वारा पाठशालाओं मे बालको का मानसिक स्वास्थ्य उन्नत किया जा सकता है—

(i) शारीरिक स्वास्थ्य (Sound Physical Health)—पाठशालाओं मे इस प्रकार के साधनो को अपनाना चाहिए जिनके द्वारा बालकों का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहे। सन्तुलित भोजन, उचित आराम, ठीक समय पर रोगों का उपचार, स्वच्छता तथा व्यायाम इत्यादि ऐसी बातें हैं जिनके द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ाया जा सकता है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है, शारीरिक स्वास्थ्य का प्रभाव मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ेगा।

(ii) संवेगात्मक सुरक्षा (Emotional Security)—संवेगात्मक सुरक्षा का अभाव हो जाने पर बालकों को स्नायु सम्बन्धी कई रोग (Neurosis) हो जाते हैं। पाठशाला में बालक को यह अनुभव करना चाहिए कि वह पूर्ण रूप से सुरक्षित है। पाठशाला के अन्दर, उसका भी अपना एक निश्चित स्थान है।

(iii) लोगों द्वारा स्वीकृति (Recognition)—थामस (Thomas), हैमली (Hamley) तथा रोजर्स (Rogers) इत्यादि मनोवैज्ञानिकों ने स्नायु सम्बन्धी रोगियों (Neurotics), असन्तुलित (Maladjusted)

व्यक्तियों तथा बालापराधियो (Delinquents) के सम्बन्ध मे जो
अध्ययन किया है, उससे वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि लोगो के द्वारा
स्वीकृति, किसी भी बालक अथवा व्यक्ति की परम आवश्यकता (Need) है
जिस बालक को साधारण रूप से स्वीकृति (Recognition) नही मिलती
वह शरारतों आदि के द्वारा दूसरो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है
इस प्रकार अचेतन रूप से वह सन्तोष (Satisfaction) प्राप्त करता है
यह मार्ग बाद मे उसे बालापराध (Delinquency) की ओर ले जाएगा
इसलिए पाठशाला मे इस प्रकार की क्रियाओ का आयोजन होना चाहिए
जहाँ बालक को आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हो सके।

(४) साहसपूर्ण कार्य (Adventure)—साहसपूर्ण कार्य करने
की प्रवृत्ति बालको में स्वाभाविक रूप से पाई जाती है। इसीलिए हम कई
बार देखते है कि बालक साईकिलों के साथ दौड़ रहे हैं, किसी पेड़ पर चढ़
रहे है अथवा किसी पुल पर से छलांग लगा रहे हैं। पाठशालाओ मे
भिन्न-भिन्न क्रियाओ (Activities) के द्वारा, बालकों की इस मूल आवश्यकता
(Basic Need) की पूर्ति होनी चाहिए। बालचर (Scouting) तथा
पाठान्तर क्रियाओ (Extracurricular Activities) के द्वारा यह कार्य
सम्भव हो सकता है।

(५) स्वतन्त्रता और आत्म-विश्वास (Freedom and Self-dependence)—स्वतन्त्रता तथा आत्म विश्वास बालकों की मूल
आवश्यकताएँ है। पाठशालाओ मे कुछ ऐसे कार्यों का आयोजन होना चाहिए,
जिन्हे बालक स्वतन्त्र रूप से कर सकें। इस से उन मे आत्म-विश्वास की
मात्रा बढ़ेगी।

(६) मित्रो का होना (Companionship)—मनुष्य एक सामाजिक
जीव है, वह अकेला नही रह सकता। इसी दृष्टि से बालको को भी मित्रों की
आवश्यकता पड़ती है। जिस बालक के मित्र होते है, वह मनोवैज्ञानिक रूप से
सुरक्षा का अनुभव करता है। सैलेस (Sayless) के एक अध्ययन (Study)
के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालको मे कुसमायोजन (Malad-

justment) का कारण मित्रों का अभाव ही है। पाठशाला के मित्र कि कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए, जिनमें अधिक से अधिक बालक आपस में मि सकें ताकि मित्र बनाने में उन्हें कोई कठिनाई न हो।

(७) पाठ्यक्रम के प्रति नया दृष्टिकोण (A new Approach t Curriculum)—बालकों के मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से पाठ्यक्रम क आयोजन होना चाहिए। न तो बालको से इतना अधिक काम करवाना चाहि कि वे थक जाएँ और न ही पाठ्यक्रम मे ऐसी बातों का समावेश होना चाहि जिनमें बालक कोई रुचि ही न लें। पाठ्यक्रम के द्वारा बालक के सम्पू व्यक्तित्व का प्रशिक्षण होना चाहिए।

(८) शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन (Educational and Vocational Guidance)—प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत योग्यताओं को ध्यान मे रखते हुए, उस के उचित निर्देशन (Guidance) की व्यवस्था होनी चाहिए। यह निर्देशन शैक्षिक तथा व्यावसायिक (Educational and Vocational) दोनो दृष्टियों से होगे। बालको को पाठ्यक्रम के वही विषय दिलाए जाएँ जो उनकी क्षमता (Capability) तथा रुचि (Interest) के अनुसार हों। उचित निर्देशन के आधार पर बालको को यह भी बताया जा सकता है कि कौन सा व्यवसाय (Vocation) उनके लिए अधिक उपयुक्त हो सकता है।

(९) अध्यापक का आचरण (Behaviour of the Teacher)—मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार अध्यापक का आचरण एक तानाशाह (Dictator) के समान नहीं होना चाहिए। उसका काम तो केवल निर्देश (Guidance) देना ही है। अध्यापक को स्वयं अपने मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए। यदि अध्यापक स्वयं असमायोजित (Maladjusted) तथा स्नायु सम्बन्धी रोगों का शिकार (Neurotic) होगा तो वह बालकों की कुछ भी सहायता नहीं कर सकेगा।

व्यक्तिगत भेदों के प्रकार—

भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे जो अन्तर पाया जाता है, उसका वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है—

(१) शारीरिक भेद (Physical Differences)—शारीरिक दृष्टि से व्यक्तियों में बहुत अन्तर पाया जाता है। शारीरिक दृष्टि से हमें छोटे बड़े, सुन्दर, कुरूप, गोरे, साँवले आदि कई प्रकार के मनुष्य दिखलाई पड़ते हैं। मनोवैज्ञानिको के अनुसार मनुष्य की शारीरिक आकृति का उस की मानसिक वृत्ति पर बड़ा प्रभाव पडता है। वातावरण के अन्दर जो वस्तुएँ पाई जाती हैं, उनकी सुन्दरता अथवा असुन्दरता सम्बन्धी विचार जो मनुष्य के मन में आते हैं, वे उसकी शारीरिक आकृति से प्रभावित होते है। कई शिक्षा शास्त्रियों का ऐसा कथन है कि व्यक्तित्व की दृष्टि से लम्बे व्यक्ति, छोटे व्यक्तियो से प्रभावशाली होते है। बहुत से मनोवैज्ञानिको की ऐसी धारणा है कि छोटे कद के व्यक्ति को सदा इस बात का भय लगा रहता है कि समाज मे कही वह उपेक्षा की दृष्टि से न देखा जाए। इसलिए वह सदा इस बात का यत्न करता रहता है कि किस प्रकार उस का प्रभाव दूसरो पर पड़े।

(२) मानसिक भेद (Mental Differences)—शारीरिक भेद के साथ साथ मनुष्यो मे मानसिक रूप से भी कई भेद पाए जाते हैं—

(क) स्वभावगत भेद (Temperamental Differences)—पाठशालाओ मे कई बार देखते हैं कि विद्यार्थियो के स्वभाव मे बहुत अन्तर पाया जाता है। कई विद्यार्थी उग्र स्वभाव के होते हैं तथा कई स्वभाव से ही विनम्र तथा सुशील होते हैं।

(ख) रुचि सम्बन्धी भेद—न केवल लड़कों और लड़कियो की रुचि भिन्न-भिन्न होती हैं, वरन् लड़कों, और लड़कियो मे आपस मे भी रुचि सम्बन्धी अन्तर पाया जाता है।

(ग) व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्तर—पाठशालाओ मे ऐसा प्रायः देखा जाता है कि कुछ बालक बड़े शर्मीले तथा झेंपने वाले होते हैं। वे चुपचाप बैठे रहते हैं। इसके विपरीत कई बालक ऐसे पाये जाते हैं जो सदा ऐसा अवसर ढूंढते रहते है जबकि वे सामाजिक कार्यों मे भाग ले सकें।

(घ) मूल-प्रवृत्ति सम्बन्धी अन्तर—मूल-प्रवृत्तियाँ तो सभी बालको मे पाई जाती हैं परन्तु उनके प्रकटीकरण मे बड़ा अन्तर रहता है। कुछ बालको मे सचय की प्रवृति (Hoarding Instinct) बड़ी प्रबल होती है। उनकी जेबे सदा ककरो से भरी रहती है। इस प्रवृत्ति की अधिकता से लोभ की मात्रा भी बढ जाती है। किसी बालक मे लडने की प्रवृत्ति (Pugnacity) बडी शक्तिशाली होती है। वह छोटी-छोटी सी बात पर भी लड़ने को तैयार हो जाता है। कोई कोई बालक ऐसा भी होता है जिसमे कौतूहल (Wonder) की प्रवृत्ति जोरो पर होती है। वह हर समय बड़ा चौकन्ना रहता है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि कई मनुष्य हर समय मुस्कराते ही रहते हैं दूसरी ओर कई व्यक्तियो की रोनी सूरत ही हमेशा सामने आती है। कई लोग शक्की होते हैं, कई लोग वहमी होते हैं।

उपरोक्त उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि व्यक्ति व्यक्ति मे कितना अधिक अन्तर पाया जाता है।

व्यक्तिगत भेदों के कारण

व्यक्तिगत भेदो के कई कारण हो सकते हैं। उनमे से कुछ नीचे दि जा रहे हैं—

(i) वंशानुक्रम सम्बन्धी अन्तर—कहावत भी है—

"मां पर पूत, पिता पर घोड़ा
बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा"

जिस प्रकार के माता पिता होगे उसी प्रकार के बालक भी होगे। माता पिता के गुण बच्चो मे भी अवतरित हो जाते है। वंश परम्परा के प्रभाव से व्यक्ति मन्द बुद्धि अथवा तीव्र बुद्धि हो सकता है। कई बालक इसी कारण गूंगे और बहरे होते है। कोई कोई व्यक्ति वंश परम्परा के कारण, खानदानी दोष भी साथ ले आते है। परिवारो के इतिहास भी इसी बात को सिद्ध करते है।

(ii) वातावरण सम्बन्धी अन्तर—वंशानुक्रम के समान ही व्यक्ति

वातावरण से भी बहुत प्रभावित होता है। यह वातावरण का ही प्रभा कि एक पंजाबी बालक, एक मद्रासी बालक से भिन्न होता है। जो बा जर्मन समाज में पैदा हुआ है वह अमरीकन समाज के बालक से भिन्न होग एक पिछड़ी जाति के बालक तथा एक ब्राह्मण बालक में बहुत अन्तर हो वातावरण के अनुसार ही शारीरिक तथा मानसिक योग्यताओं का वि होता है।

(iii) लिंग सम्बन्धी भेद (Sex Differences)—मनोवैज्ञा परीक्षणों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्रियों और पुरुषों में ब सी बातों में अन्तर पाया जाता है। पुरुषों में वीरता और साहस की भाव स्त्रियों से अधिक पाई जाती है। इसके विपरीत, दया, स्नेह, ममता तथा लज्जा आदि गुण पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में ही अधिक पाये जाते हैं। पाठशालाओं में यह देखा जा सकता है कि स्मृति तथा भाषा सम्बन्धी विकास, लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में जल्दी होता है। आगे ऐसा समझा जाता था कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में बुद्धि की मात्रा कम होती है। परन्तु मनोवैज्ञानिकों परीक्षणों के आधार पर यह बात गलत सिद्ध हुई है। अब ऐसा कहा जाता है कि सामान्य बुद्धि (General Intelligence) में स्त्रियाँ पुरुषों से आगे होती हैं परन्तु विशिष्ट बुद्धि (Specific Intelligence) में तो पुरुषों ही का बोल बाला है, इसलिए तो दर्शन (Philosoply) और विज्ञान (Science) के क्षेत्रों में हम पुरुषों को ही आगे पाते हैं। पुरुषों तथा स्त्रियों का शारीरिक अन्तर तो स्पष्ट है ही।

(iv) जातीय भेद (Racial differences)—बहुत से समाज शास्त्रियों का ऐसा कथन है कि व्यक्तियों में जातीय भेद भी बहुत पाये जाते हैं। अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में भिन्न-भिन्न जातियों के बुद्धि-उपलब्धि (Intelligance Quotient) के सम्बन्ध में एक परीक्षण किया गया। उस परीक्षण का परिणाम इस प्रकार था—

राष्ट्रीयता	बुद्धि उपलब्धि

जर्मन	६८·५
कैनेडा निवासी अंग्रेज	६३·८
रूसी	६००
यूनानी (ग्रीक)	८७ ६

इन जातीय भेदो मे भी वंशानुक्रम और वातावरण का काफी हाथ रहता है।

व्यक्तिगत भेद और शिक्षा

शिक्षा की दृष्टि से व्यक्तिगत भेदो का बडा महत्व है। ऊपर यह बताया ही जा चुका है कि किस प्रकार कक्षा के बालक एक दूसरे से भिन्न-भिन्न होते है। पढ़ाते समय, बालकों की मानसिक योग्यता, स्वास्थ्य, रुचि तथा सामाजिक वातावरण पर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए। व्यक्तिगत भेदों को ध्यान मे रखते हुए ही अमेरिका आदि स्थानों मे श्रेणी रहित स्कूलो (Gradeless Schools) की व्यवस्था की गई है। आज शिक्षा के अन्दर जो क्रियाशीलता द्वारा शिक्षा पर (Activity education) पर इतना बल दिया जारहा है, वह भी इसी कारण। शिक्षा की सभी नवीन पद्धतियों जैसे डाल्टन विधि (Dalton Plan) बालोद्यान विधि (Kindergarten Method), मोंटेसरी पद्धति (Montessori System), प्रोजैक्ट पद्धति (Project Method), वर्धा योजना (Wardha Scheme) आदि मे बालको के व्यक्तिगत भेदो का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। व्यक्तिगत भेदो के अनुसार शिक्षा देने से पाठशाला मे भी घर जैसे वातावरण बना रहता है तथा अनुशासन (discipline) की भी कोई समस्या नहीं रहती। यहाँ पर बालक पाठशाला के सभी कामो मे बडी दिलचस्पी से भाग लेते हैं। इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक बालक को वही काम सौंपा जाए, जो उसकी शारीरिक अवस्था तथा मानसिक योग्यता के अनुसार हो।

Q. 98 What do you understand by educational guidance? Try to convince about the need of the educational guidance.

What are the aims and purposes of educational guidance in schools ?

(शिक्षा सम्बन्धी निर्देश से आपका क्या तात्पर्य है ? शिक्षा की दृष्टि से इसकी उपादेयता पर प्रकाश डालो । पाठशालाओं में जो शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन किया जाता है उसका क्या उद्देश्य तथा प्रयोजन हैं ?)

उत्तर—शिक्षा-निर्देशन का स्वरूप—

शिक्षा सम्बन्धी सभी कार्यक्रमों में, चाहे उनका सम्बन्ध प्रारम्भिक शिक्षा (Elementary Education) से हो अथवा उच्च शिक्षा (Higher education) से, निर्देशन (Guidance) का अपना एक विशेष महत्व है । अच्छी शिक्षा हम उसे ही कह सकते हैं जिसके द्वारा बालकों क्षमताओं (Capabilities), योग्यताओं (Talents) तथा रुचियों (Aptitudes) का ज्ञान हो सके । इसके द्वारा जहाँ विद्यार्थी समाज के साथ ठीक-ठीक सन्तुलन (Adjustment) रख सकेगा वहाँ उसे यह भी मालूम हो जाएगा कि कौन-कौन से व्यवसाय उसके लिए उपयुक्त हो सकते हैं । निर्देशन (Guidance) का क्षेत्र बड़ा व्यापक है, तथा निर्देशन की प्रक्रिया (Process) बड़ी जटिल (Complex) है । निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी विशेष की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए । विद्यार्थी की शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएँ, सामाजिक, नैतिक संवेगात्मक, व्यावसायात्मक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी, इन सभी की पूर्ति निर्देशन के द्वारा होनी चाहिए । एक प्रसिद्ध लेखक ने निर्देशन (Guidtance) के सम्बन्ध में निम्नलिखित शब्द कहे हैं :—

अपनी योग्यताओं का ज्ञान हो जाता है और वह अपने आपको इस
तैयार कर सकता है कि सन्तुलित जीवन व्यतीत करता हुआ,
अन्य सदस्यों की भलाई के लिए भी काम कर सके।

सैकंडरी एडूकेशन कमीशन (Secondary Education Cor
sion) ने निर्देशन की परिभाषा इन शब्दों में की है :—

"Guidance involves the difficult art of helping
and girls to plan their own fortune wisely in the full
of all the factors that can be mastered about themselves
about the world in which they are to live and work."

अर्थात् निर्देशन एक ऐसा कठिन कार्य है जिसके आधार पर लड़के
लड़कियाँ बुद्धिमत्तापूर्ण, अपने भविष्य के सम्बन्ध में योजनाएँ बनाते हैं।
भविष्य सम्बन्धी योजना बनाते हुए वे संसार के उन सभी तत्वों को
रख लेते हैं जिनके बीच में रह कर उन्हें कार्य करना होगा।

इन परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट हो गया होगा कि नि
Guidance) का क्षेत्र कितना व्यापक है।

निर्देशन के सम्बन्ध में व्यापक रूप में चर्चा कर लेने के पश्चा
आवश्यक होगा कि शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन (Educational Guidar
स्वरूप की भी संक्षेप में चर्चा कर ली जाए। जोन्स (Jones) ने
सम्बन्धी निर्देशन का स्पष्टीकरण इन शब्दों में किया है :—

"Educational guidance in so far as it can be dist[illegible]
shed from other aspects of guidance, is concerned with
assistance given to pupils in their choices and adjust[illegible]
with schools, curriculums, courses and school life."

अर्थात् निर्देशन के व्यापक स्वरूप के साथ तुलना करते हुए हम कह
कि शिक्षा निर्देशन का कार्य है विद्यार्थियों को [illegible]
[illegible]
[illegible] सकें।

शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन की आवश्यकता—

पाठशालाओं मे शिक्षा सम्बन्धी निर्देशन क्यों दिया जाए, इस सम्बन्ध में दो बातें कही जा सकती हैं :—

(i) व्यक्तिगत विभिन्नताएँ।

(ii) विद्यार्थियों के सामने भिन्न-भिन्न कार्यक्रम।

यह पहले बताया ही जा चुका है कि किस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति में शरीर सम्बन्धी, बुद्धि सम्बन्धी, रुचि सम्बन्धी तथा स्वभाव सम्बन्धी अन्तर होता है। इसी प्रकार पाठशालाओं मे भिन्न-भिन्न विषयों (Subjects) का, विषय समूहों (Subject groups) तथा पाठान्तर क्रियाओं (Extra-curricular Activities) का आयोजन होता है। प्रत्येक विद्यार्थी को उनमें से कुछ को चुनना होता है। यदि विद्यार्थी की रुचि किसी विषय विशेष में नहीं होती तो इस बात का यत्न किया जाता है कि उसकी रुचि उस विषय में बनी रहे। परन्तु यदि किसी कारणवश ऐसा नहीं हो सकता, तो विद्यार्थी को दूसरा विषय लेने के लिए कहा जाता है। यदि विद्यार्थी कुछ विषयों में कमजोर है तो उसे यह बताया जाता है कि वह अपनी कमजोरी को कैसे दूर करे।

कोई भी शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रम तभी सफल होगा, जब कि प्रत्येक व्यक्ति उसके लिए अधिक से अधिक प्रयास करे। परन्तु इस कार्य के लिए प्रत्येक विद्यार्थी को सहायता देनी होगी। ताकि वह अपने उच्चतम विकास की ओर बढ़ सके। बड़े-बड़े समाजशास्त्रियों (Sociologists), इतिहासज्ञों (Historians) तथा दार्शनिकों (Philosophers) का ऐसा मत है कि व्यक्तिगत विकास के ऊपर ही सभ्यता का विकास भी निर्भर करता है।

शिक्षा-निर्देशन सम्बन्धी तीसरा बड़ा लाभ यह है
गत विकास के लिए, पाठशाला में जो साधन उप

के कारण समाज का स्वरूप अधिक से अधिक जटिल (Complex) होता जा रहा है। बिना निर्देशन (Guidance) के विद्यार्थी समाज के इस जटिल और परिवर्तनशील रूप को नही समझ सकेंगे।

Q. 99. What method would you employ to learn about the guidance needs of individual students ?

(विद्यार्थियों की निर्देशन सम्बन्धी आवश्यकताओ को मालूम करने के लिए आप कौन-कौन सी विधियो को अपनाएँगे ?)

उत्तर—विद्यार्थियो को उचित निर्देशन तभी दिया जा सकता है जबकि इस बात का पता हो कि विद्यार्थी को किस बात के लिए निर्देशन (Guidance) की आवश्यकता है। विद्यार्थियो की निर्देशन सम्बन्धी आवश्यकताओ को मालूम करने के लिए नीचे लिखी पद्धतियों का अवलम्बन किया जाता है :—

(i) विद्यार्थियों से बातचीत (Interview)—विद्यार्थियों को बातचीत के लिए बुलाया जाता है ताकि उन से कुछ बातो के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त की जा सके। परन्तु यह तभी-सम्भव हो सकता है जब कि बातचीत करने वाला व्यक्ति (Interviewer) विद्यार्थी के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध (Rapprot) स्थापित कर सके।

(ii) प्रश्नावली (Questionnaire)—प्रश्नावली में बहुत से प्रश्न होते हैं, जिनका विद्यार्थियो को उत्तर देना होता हैं। प्रश्नावली का मुख्य उद्देश्य, कुछ तथ्यो के सम्बन्ध के बालको के विचार (Opinion) जानना होता है जैसे बालकों के घरेलू वातावरण सम्बन्धी जानकारी, अवकाश के समय की क्रियाओ (Leisure Activities), उसकी आदतों, तथा शिक्षा और व्यवसाय सम्बन्धी योजनाओ का ज्ञान।

प्रश्नावली तैयार करते समय, इस बात का ध्यान रखा जाए कि प्रश्न छोटे-छोटे और स्पष्ट हो तथा प्रश्नो मे केवल वही बातें पूछी जायें, जिनके उत्तर देने में बालकों अथवा उनके माता-पिता को कोई अड़चन न हो।

(iii) परिश्रम-मापक परीक्षाएँ (Achievement Tests)—इन

परीक्षाओं के द्वारा, इस बात की जाँच की जाती है कि विद्यार्थियों ने भिन्न-भिन्न पाठ्य-विषयों में कितना परिश्रम किया है ? परिश्रम-मापक परीक्षाओं का प्रयोग आम-तौर पर निम्नलिखित बातों के लिए किया जाता है :—

(क) विद्यार्थियों की योग्यता तथा कमजोरी के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना।

(ख) विद्यार्थियों को अधिक परिश्रम के लिए प्रेरणा देना।

(ग) विद्यार्थियों के माता-पिता का सहयोग प्राप्त करना।

(घ) अध्यापक ने कितनी अच्छी प्रकार से पढ़ाया है, इसकी जाँच करना।

(च) विद्यार्थी भविष्य में कितनी प्रगति करेगा, इसके सम्बन्ध में अनुमान लगाना।

(iv) बुद्धिमापक परीक्षाएँ (Intelligence Tests)—बुद्धि के स्वरूप तथा बुद्धि मापक परीक्षाओं के सम्बन्ध में पिछले एक अध्याय में काफी विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। निर्देशन (Guidance) के क्षेत्र में हम बुद्धि मापक परीक्षाओं का प्रयोग निम्नलिखित बातों के लिए करेंगे :—

(क) विद्यार्थियों का वर्गीकरण (Classification)—बुद्धि मापक परीक्षाओं के द्वारा विद्यार्थियों का वर्गीकरण बड़ी सरलता से किया जा सकता है। तीव्र बुद्धि वाले, साधारण बुद्धि वाले तथा मन्द बुद्धि वाले छात्रों को अलग छाँट कर, उनके अनुरूप ही प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी किया जा सकता है।

(ख) भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रमों के लिए विद्यार्थियों का चुनाव—औद्योगिक (Technical) तथा वैज्ञानिक (Scientific) विषय ऐसे होते हैं जिनमें अधिक बुद्धि उपलब्धि (I. Q.) की आवश्यकता पड़ती है। इसके विपरीत व्यापार (Commeree) सम्बन्धी विषयों में अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं पड़ती। बुद्धिमापक परीक्षाओं के आधार पर विद्यार्थियों को बताया जा सकता है कि कौन से विषय, उनके अधिक उपयुक्त रहेंगे।

(ग) व्यावसायिक निर्देशन में सहायता—बुद्धिमापक परीक्षाओं के आधार पर विद्यार्थियों को इस बात का निर्देशन (Guidance) दिया जा

सकता है कि कौन से व्यवसाय उनके लिए अधिक उपयुक्त होंगे। बर्ट (Burt) के मतानुसार वकील (Lawyer), चिकित्सक (Physician) आदि कार्यों के लिए अधिक बुद्धि-लब्धि (I Q) की आवश्यकता पड़ेगी।

परन्तु यहाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि केवल बुद्धि-मापक परीक्षाओं पर निर्भर रहने से ही काम नही चलेगा।

(v) व्यक्तित्व सम्बन्धी परीक्षण (Personality Tests)—व्यक्ति की भावी सफलता पर उसके व्यक्तित्व का भी काफी प्रभाव पड़ता है। जोन्स (Jones) के मतानुसार किसी मनुष्य के व्यक्तित्व में नीचे लिखी बातें आ जाती हैं :—

(१) व्यक्ति के देखने का ढंग।
(२) उसकी वेश-भूषा।
(३) उसके चलने का ढंग।
(४) उसकी बातचीत करने का ढंग।
(५) उसके काम करने का ढंग।
(६) उसका स्वास्थ्य।

व्यक्तित्व सम्बन्धी परीक्षणों (Personality Tests) पर हम पिछले एक अध्याय में विस्तारपूर्वक चर्चा कर चुके हैं।

(vi) व्यक्ति-इतिहास (Case History)—व्यक्ति-इतिहास से हमारा तात्पर्य है कि विद्यार्थी सम्बन्धी पूरी जानकारी प्राप्त करना और उसका रिकार्ड रखना। बालक का स्वास्थ्य कैसा है, उसका स्वभाव कैसा है, उसकी रुचियाँ, उसका घर में, कक्षा-गृह में, खेल के मैदान में, साथियों में तथा समुदाय में दूसरों के प्रति व्यवहार कैसा है, वह कौन-कौन से मनोरंजक साधनों को अपनाता है, इत्यादि सभी प्रकार की बातों की सूचना इकट्ठी की जाएगी।

(vii) बालकों के माता पिता से भेंट—बालकों के सम्बन्ध में उनके माता-पिता से बहुत सी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। बालक अपना बहुत सा समय घर पर ही बिताता है। इसलिए माता-पिता को उसके सम्बन्ध में बहुत सी बातों का पता होता है। समय-समय पर बालकों के

माता-पिता तथा निर्देशन देने वालों (Counsellors) के सम्पर्क
चाहिए। जहाँ पर वे अपने बच्चों के सम्बन्ध में उपयोगी सूचना दे सकें

इस प्रकार, इन साधनों के द्वारा बालकों को निर्देशन सम्बन्धी म
बातों का ज्ञान हो जाएगा और उन्हें ठीक-ठीक निर्देशन (Guidan
दिया जा सकेगा।

Q. 100 What is Vocational Guidance? *Justify its nece*
show your acquaintance with the principle techniques ess
to its success.

(*व्यावसायिक-निर्देशन से आपका क्या तात्पर्य है? इसकी*
दयकता क्यों पड़ती है तथा इसका प्रयोग सफलतापूर्वक करने के
कौन-कौन सी विधियों को अपनाया जाए?)

उत्तर—व्यावसायिक निर्देशन क्या है?—

व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा जोन्स (Jones) ने इन शब्द
की है :—

"Vocational guidance may be described as an assist
given to an individual in solving problems related to occ
tional choice and progress with due regard to *individu*
characteristics and their relation to accupational opportuni

अर्थात् व्यावसायिक निर्देशन से हमारा तात्पर्य ऐसी सहायता से है
किसी व्यक्ति को इस लिए दी जाती है कि वह अपने लिए व्यव
सम्बन्धी चुनाव की समस्याओं को हल कर सके। यह सहायता देते स
इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता कि इस व्यक्ति में कौन-कौन
गुण हैं और इन गुणों से सम्बन्धित कौन-कौन से व्यवसाय हो सकते हैं।

व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता—

व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता प्रत्येक व्यक्ति को पड़ सकती है
इसके दो प्रमुख कारण हो सकते हैं :—

(१) जैसी कि पहले भी चर्चा की जा चुकी है भिन्न-भिन्न व्यक्तियों

शारीरिक दृष्टि से, मानसिक दृष्टि से, स्वभाव की दृष्टि से, रुचि की दृष्टि से तथा योग्यता की दृष्टि से बहुत अन्तर होता है।

(२) हजारों व्यवसायों के लिए भिन्न-भिन्न योग्यता वाले व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है।

व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) के द्वारा हम किसी व्यक्ति-विशेष को इस बात में सहायता करते हैं कि वह हजारों लाखों व्यवसायों में से कोई ऐसा व्यवसाय चुन सके जो उस के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हो।

व्यावसायिक निर्देशन की प्रक्रिया—

ऐसा कहा गया है कि व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) की प्रक्रिया (Process) बड़ी जटिल (Complex) होती है। इस जटिलता के कारण निम्नलिखित हो सकते हैं :—

(क) किसी व्यक्ति-विशेष को इस बात के लिए सहायता देना कि वह अपने लिए उचित व्यवसाय को चुन सके, यह प्रक्रिया बहुत अधिक समय लेती है।

[illegible] पहले किया जा चुका है कि प्रत्येक मनुष्य का [illegible]) बड़ा जटिल होता है। व्यक्तित्व की जटिलता के [illegible] जटिल हो जाती है।

[illegible] है [illegible] आवश्यक [illegible] है।

[illegible] है [illegible] (Personal) [illegible]

व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य—

व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) के उद्देश्यों में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं :—

(१) व्यक्ति को इस बात की सहायता देना कि वह अपने लिए उचित व्यवसाय का चुनाव कर सके।

(२) व्यक्ति को उसकी योग्यताओं और रुचि के अनुरूप काम दिलाकर, उसे इस बात के लिए तैयार करना कि वह समाज के अन्य सदस्यों के सन्तुलन बनाए रख सकें।

(३) बालकों का सर्वाङ्गीण विकास करना।

(४) इस बात की व्यवस्था करना कि सभी व्यक्तियों को समान अवसर (Equal Opportunities) मिले।

व्यावसायिक निर्देशन की विधियाँ—

ऊपर इस बात का कथन किया जा चुका है कि व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) की प्रक्रिया (Process) बड़ी जटिल है। इसलिए माता-पिता या अध्यापक इस कार्य को सुचारू रूप से नहीं कर सकते। इस कार्य के लिए तो ऐसे विशेषज्ञों (Experts) की आवश्यकता पड़ेगी, जिनको व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी विधियों (Techniques) तथा कार्यों (Services) का ठीक-ठीक ज्ञान हो।

जार्ज मयर्स (George Myers) ने इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित कार्यों तथा विधियों की चर्चा की है :—

(१) व्यवसाय सम्बन्धी सूचना का कार्य (A Vocational Information Service)—आधुनिक काल में व्यावसायिक संसार का कार्य बड़ा कठिन होता जा रहा है।

इसके दो प्रमुख कारण हो सकते हैं :—

(i) उद्योगीकरण (Industrialization) की प्रगति।

(ii) भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में पाई जाने वाली विशेषज्ञता (Specialization)।

इसलिए इस बात की आवश्यकता है कि नवयुवकों को सभी व्यवसायों की पूरी-पूरी सूचना दी जाए। व्यवसाय सम्बन्धी सूचना (Occupational Information) में नीचे लिखी बातें सम्मिलित की जा सकती हैं:—

(i) व्यवसाय का महत्व।

(ii) व्यवसाय सम्बन्धी कार्य कैसा होगा?

(iii) व्यवसाय को ग्रहण करने के लिए किस प्रकार की तैयारी की आवश्यकता है।

(iv) व्यवसाय में काम करने वाले व्यक्तियों की योग्यता सम्बन्धी जानकारी।

(v) नये व्यक्ति (New Entrant) और अनुभवी व्यक्ति (Experienced person) की औसत आमदनी।

(vi) प्रगति (Advancement) के अवसर।

यह किसी व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं कि वह सभी प्रकार के व्यवसायों के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सके। इसलिए उसे इस बात के निर्देशित करना चाहिए कि वह कुछ इने-गिने व्यवसायों का ही अध्ययन करे जो

(iii) शारीरिक दुर्बलताएं—स्वास्थ्य और स्नायु मंडल सि

(iv) पाठशाला की परीक्षाओं का परिणाम।

(v) मनोवैज्ञानिक तथ्य—योग्यता, रुचि तथा व्यक्तित्व।

(vi) व्यक्ति से सम्बन्धित शैक्षणिक तथा व्यावसायिक योजन

(३) व्यवसाय सम्बन्धी तैयारी का कार्य (The Voc Preparatory Service)—व्यावसायिक निर्देशन (Voc Guidance) की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि पाठशाला कारी मालिकों (Employers) का तथा कार्यकर्ताओं (Wo का सहयोग प्राप्त करें।

(४) काम दिलवाना (The Placement Service)— से महत्वपूर्ण कार्य (Service) है। पाठशाला को नौकरी दिल सहायता करनी चाहिए। भारत में बहुत कम ऐसी शिक्षण संस्था इस कार्य को करती हैं।

(५) संतुलन का कार्य (The Adjustment Service) ात का स्पष्टीकरण पहले ही हो चुका है कि निर्देशन (Guidance क्रिया (Process) जीवन पर्यन्त चलती है। किसी व्यवसाय को र लेने के पश्चात् इस प्रक्रिया की समाप्ति नहीं होती। फिर भी व्यक्ति चे लिखी बातों के लिए सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है :—

(i) किसी नए व्यवसाय (Job) को ग्रहण करना।

(ii) नई परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालना।

(iii) इस बात का ज्ञान प्राप्त करना कि व्यवसाय सम्बन्धी योग की कैसे बढ़ाया जा सकता है।

(iv) मनोरंजन सम्बन्धी (Recreational), सामाजि (Community) तथा सांस्कृतिक (Cultural) क्रिया का आयोजन करना।

(६) अनुसंधान सम्बन्धी कार्य (The Research Service)—व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) सम्बन्धी कार्य मे सुधार करने के लिए शोध (Research) की व्यवस्था होनी चाहिए।

भारत सरकार तथा अन्य कई राज्य सरकारें, निर्देशन सम्बन्धी कार्यों (Guidance Service Programmes) मे बड़ी दिलचस्पी ले रही हैं। आशा की जाती है कि निकट भविष्य में देशवासी इनसे अधिक लाभ उठा सकेंगे।

२४

असा...

(Exception...

Q 101 What do you understand by exceptional ... What provision will you make for the education ... children ?

(असाधारण बालकों से आप का क्या तात्पर्य है ? अ... वाले बालकों की शिक्षा की व्यवस्था आप किस प्रकार से करेंगे ...

Q. 102. How would you define gifted children ? D... briefly, how you would plan the education of such childre...

[Panjab ...

(किन बालकों को प्रखर बुद्धि वाला बालक कहा जा सकता ... संक्षेप में इस बात की चर्चा करो कि प्रखर बुद्धि वाले बालकों के ... शिक्षा की व्यवस्था किस प्रकार से की जाएगी ?) [पंजाब १९५५...

उत्तर—असाधारण बालक—

इस बात का अनुभव तो सभी अध्यापकों को होगा कि व्यक्तिगत भेदों के होते हुए भी, किसी भी कक्षा के अधिकांश बालक सामान्य अथवा औसत श्रेणी के ही होते हैं। इन बालकों की समस्याएँ प्रायः एक जैसी ही होती हैं। अध्यापक पढ़ाते समय, इन्हीं बालकों को अपने सामने रखता है। ... एक छोटा सा समुदाय ऐसे बालकों का भी ...

द्वारा बताई हुई किसी बात को साधारण बालकों से भी बहुत जल्दी समझ जाता है अथवा उसे साधारण सी बात को समझने मे भी बहुत देर लग जाती है। इन दोनों श्रेणियों के बालकों को हम असाधारण बालक (Exceptional Children) कह सकते हैं। यह असाधारण बालक ही अध्यापक के लिए समस्या का कारण बन जाते हैं। जो बालक किसी बात को औरों की अपेक्षा बहुत जल्दी सीख जाते हैं, वे अपना शेष समय, कक्षा में बातें करने अथवा शरारतें करने मे बिताते हैं। इसी प्रकार वे बालक भी, जिन्हें कक्षा की बातें समझ मे नही आतीं, ऊधम मचाते रहते हैं। हम शिक्षा की समस्या को ठीक प्रकार से तभी हल कर सकेंगे जब कि इन असाधारण बालकों Exceptional Children) के लिए भी शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाएगी।

जैसा कि ऊपर कथन किया जा चुका है, हम असाधारण बालकों को दो श्रेणियों मे बाँट सकते हैं :—

(i) प्रखर बुद्धि बालक (Gifted Children)
(ii)-मन्द बुद्धि बालक (Backward Children)

पहले हम प्रखर बुद्धि बालकों (Gifted Children) के सम्बन्ध मे कुछ विचार विमर्श करेंगे और देखेंगे कि उनके लिए शिक्षा की व्यवस्था किस प्रकार से की जा सकती है।

प्रखर बुद्धि बालक—

ऊपर इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि प्रखर-बुद्धि बालक (Gifted Children), साधारण बालकों की अपेक्षा किसी बात को बहुत जल्दी समझ जाते हैं। वे कक्षा में साधारण बालकों की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचे दर्जे की बातें सोचते हैं। अध्यापक का यह कर्तव्य है कि ऐसे बालकों का जल्दी ही पता लगाया जाए, क्योंकि समाज और राष्ट्र का भविष्य ऐसे प्रतिभाशाली बालकों पर ही निर्भर करता है। प्रतिभाशाली बालकों की बुद्धि (Intelligence) अन्य साधारण विद्यार्थियों से ऊँची होती है। साधारणतया ऐसे बालकों की बुद्धि लब्धि (I. Q.) १२० से अधिक होती है।

नदारी और दयालुता आदि के गुण दूसरों की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं।

(ट) प्रतिभावान बालकों में आत्म-सम्मान की मात्रा बहुत अधिक होती है। यदि उनका उचित पथ प्रदर्शन नहीं किया जाता तो उनमें डींगें हांकने की प्रवृत्ति (Boasting) बढ़ सकती है।

(ठ) ऐसे बालकों में तर्क शक्ति अधिक होती है और थोड़ा सा संकेत पा जाने पर ही वे अपनी अशुद्धियाँ सुधारने में समर्थ हो सकते हैं।

(ड) प्रतिभावान बालकों में सामाजिकता का गुण, सामान्य बालकों की अपेक्षा कम पाया जाता है।

(ढ) प्रखर-बुद्धि बालकों में मौलिकता (Originality) तथा बौद्धिक जिज्ञासा (Inquisitiveness) की मात्रा साधारण बालकों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। यदि उन्हें उचित निर्देशन (Guidance) मिल जाए तो वे अपना मार्ग स्वयं खोज निकालने में पूर्ण रूप से समर्थ हो सकते हैं।

अकाल-प्रौढ़ बालक (The Precocious Children)—

पाठशालाओं में कुछ ऐसे बालक भी पाये जाते हैं जो प्रारम्भ में तो बड़े प्रतिभावान (Gifted) दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु आगे चलकर सामान्य अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे बालक वास्तव में प्रतिभावान नहीं होते। मानसिक परीक्षाओं (Intelligence Tests) के आधार इन की बुद्धि-उपलब्धि (I. Q.) भी सामान्य ही निकलेगी। इस प्रकार के बालकों को अकाल-प्रौढ़ बालक (The Precocious) कहा जाता है। इस प्रकार के बालक समय से पहले ही बड़े हुए दिखलाई देते हैं। यदि इन की आयु नौ वर्ष होगी तो वे बारह वर्ष के बालकों के समान प्रतिभावान दिखलाई देंगे।

ऐसे बालक संख्या में कम ही होते हैं और केवल उन्हीं वर्गों में ही पाये जाते हैं, जिन के [illegible] का [illegible] अधिक है, जैसे [illegible] अधिकारी, विद्वानों के [illegible]।

प्रतिभावान बालक (Gifted Children) दो प्रकार के होते हैं :—

(i) ऐसे बालक जो सभी विषयो में, साधारण बालको की अपेक्षा अधिक प्रवीण होते हैं ।

(ii) ऐसे बालक जो किसी विषय-विशेष—संगीत, कविता, चित्रकला इत्यादि, में ही अपनी विशेष योग्यता प्रदर्शित करते हैं ।

प्रखर-बुद्धि बालकों की विशेषताएँ (Characteristics of Gift Children)—

(क) ऐसे बालको की साधारण मानसिक योग्यता (Gener Intelligence) औसत दर्जे के विद्यार्थियों से कही अधिक होती है ।

(ख) उनकी क्रियाओं (Activities) तथा रुचियों (Interests में साधारण बालकों की अपेक्षा विविधता (Vóriety) अधिक होती है ।

(ग) ऐसे बालक बौद्धिक (Intellectual) कार्यों को करना अधि पसन्द करते हैं ।

(घ) प्रखर-बुद्धि बालकों को वही खेल अच्छे लगते हैं जिनमें किस मानसिक क्रिया (Mental Activity) की प्रधानता हो ।

(च) मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि प्रतिभावान बालक केवल मानसि योग्यता मे ही बढे-चढे नहीं होते वरन् उनका शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा होता है । टरमैन (Terman) तथा हालिंग वर्थ (Hollingworth) के परीक्षण (Experiments) इस बात के प्रमाण हैं ।

(छ) प्रखर बुद्धि बालकों में ध्यान की शक्ति अधिक होती है । अपनी रुचि का कार्य मिल जाए तो वे बहुत देर तक बिना थके सकते हैं ।

(ज) ऐसे बालक किसी बात को बहुत जल्दी समझ किसी विषय के सम्बन्ध में निष्कर्ष निकालने में वे प्रदर्शन करते हैं ।

(झ) टरमैन (Terman) ने अपने परीक्षणों (' के आधार पर इस बात को सिद्ध किया है कि

(iv) उनके लिए अधिक से अधिक पाठान्तर क्रियाओ (Extra-Curricular Activities) की व्यवस्था।

(i) अलग से शिक्षा की व्यवस्था—कुछ मनोवैज्ञानिको का ऐसा कथन है कि मानसिक परीक्षाओ (Intelligance Tests) आदि के आधार पर विद्यार्थियो का वर्गीकरण (Classification) कर लिया जाए तथा प्रखर-बुद्धि बालको के लिए अलग से शिक्षा की व्यवस्था की जाए। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, यह तरीका बडा अच्छा हो सकता है। परन्तु सामाजिक तथा सास्कृतिक दृष्टि से यह पद्धति दोष पूर्ण ही कही जाएगी। यदि प्रतिभावान बालको को सामान्य लोगो से अलग कर के शिक्षा दी जाएगी तो उनमे व्यर्थ के बड़प्पन की भावना आ जाएगी। शिक्षा की समाप्ति के पश्चात् तो प्रतिभावान व्यक्तियों को जन साधारण के अन्दर ही रहना होगा। यदि उनका पालन-पोषण तथा शिक्षण और लोगो से अलग हुआ है तो वे समाज के अन्य सदस्यों के साथ ठीक-ठीक सन्तुलन (Adjustment) नहीं बनाए रख सकेंगे।

(ii) अगली कक्षा मे जल्दी चढ़ा देना—ऐसा कहा जाता है कि यदि कुशाग्र-बुद्धि बालक को अगली कक्षा मे जल्दी चढा दिया जायगा तो उसे काम करने की प्रेरणा मिलेगी तथा समय की भी बचत रहेगी। परन्तु यह बात भी सामाजिक दृष्टि से उचित प्रतीत नही होती। ऐसा करने से प्रतिभावान बालक छोटी अवस्था मे ही, बड़ी कक्षाओ मे पहुँच जाएँगे जहाँ उन्हे बडी आयु वाले बालको के साथ रहना पडेगा। आयु के अनुसार बालकों की रुचियो मे अन्तर होता है। बडी आयु वाले बालक उन्हें अपने साथ रखना पसन्द नही करेंगे तथा छोटी कक्षाओं के बालको के साथ वे स्वयं नहीं रहना चाहेंगे। इस प्रकार से उनके सामने कई कठिनाइयाँ आ सकती हैं।

(iii) पाठ्यवस्तु को व्यापक बनाना (Enrichment of Curriculum)—पाठ्य-वस्तु को व्यापक रूप दे कर उपरोक्त दोषो को दूर किया जा सकता है। पाठ्य-वस्तु को व्यापक बनाने के लिए, निम्नलिखित साधनों का अवलम्बन करना चाहिए—

ऐसे बालकों को देखकर, उनके माता-पिता और अभिभावक तथा अध्यापक गण बहुत प्रसन्न होते हैं तथा उनकी प्रशंसा के पुल, हर जगह बांधते फिरते हैं। उन्हें इस बात का क्या पता जिन बालकों की आज इतनी प्रशंसा की जा रही है, वे ही आगे जाकर साधारण स्थिति में आजाएंगे।

अतएव प्रारम्भ मे ही मानसिक परीक्षाओं (Intelligence Tests) आदि के द्वारा इस बात का पता लगा लेना चाहिए कि वास्तविक रूप में प्रतिभावान बालक कौन-कौन से हैं, ताकि उनके लिए उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सके। मानसिक परीक्षाओं के द्वारा ही इन प्रतिभावान दिखाने वाले बालको की कलई खुल जाएगी क्योकि इनकी बुद्धि-उपलब्धि (I. Q.) सामान्य ही निकलेगी।

प्रखर-बुद्धि बालकों की शिक्षा व्यवस्था (Education of Gifted Children)—

प्रारम्भ में इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि अध्यापक एक साधारण या औसत बालक को ध्यान मे रख कर, शिक्षा की योजना बनाता है। कई बार उसे बहुत सी बातों को फिर से दोहराना भी पड़ता है। परन्तु प्रतिभावान बालक की दृष्टि से यह तरीका अच्छा नही। वह तो अपनी योग्यता के अनुसार जल्दी-जल्दी प्रगति करना चाहता है परन्तु ऐसा कर नही पाता। जब किसी बालक को उसकी योग्यता के अनुसार काम नही दिया जाएगा तो वह या तो अध्यापक को तग करेगा अथवा अपना अधिकांश समय उत्पात मचाने में लगाएगा। इससे पाठशाला की व्यवस्था मे कई प्रकार की समस्याएँ उठ खड़ी हो सकती हैं।

प्रखर-बुद्धि बालको के लिए, समय-समय पर मनोवैज्ञानिको तथा शिक्षा-शास्त्रियो के द्वारा कई सुझाव दिए गए हैं, उनमे कुछ नीचे दिए जा रहे हैं :—

(i) प्रतिभावान बालको के लिए अलग से शिक्षा की व्यवस्था।
(ii) अगली कक्षा में जल्दी चढ़ा देना।
(iii) पाठ्य वस्तु को व्यापक बनाना।

Q. 105. Describe the physical, mental and emotional characteristics of feeble minded children Would you advocate separate classes and separate schools for them? and why? [Panjab 1957]

(मन्द-बुद्धि बालकों की शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। क्या आपके विचार मे उनके लिए अलग कक्षाओं अथवा अलग पाठशालाओं की व्यवस्था होनी चाहिए? यदि ऐसा है तो क्यों?) [पंजाब १९५७]

Q. 106. What steps will you take to improve the condition of backward children in your school?

(अपनी पाठशाला मे पिछड़े हुए बालकों की स्थिति में सुधार करने के लिए, आप कौन-कौन से उपाय काम मे लायेंगे।)

Q. 107. Write a critical note on the educational guidance of the slow learning pupils of your school. [Panjab 1958]

("पिछड़े हुए बालकों के लिए शिक्षा निर्देशन"—इस विषय पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।) [पंजाब १९५८]

उत्तर—पिछड़े हुए बालक—

परिभाषा (Definition)—पिछड़े हुए बालकों (Backward Children) की परिभाषा करते हुए हम कह सकते हैं कि कक्षा के अन्दर जो बालक किसी बात को कई बार समझाने पर भी नहीं समझते अथवा जो औसत विद्यार्थी के समान प्रगति नहीं कर सकते, उन्हें हम पिछड़े हुए बालक कह सकते हैं।

सिरिल बर्ट (Cyril Burt) ने अपनी विश्व-विख्यात पुस्तक "अपराधी बालक" (The Delinquent Child) मे पिछड़े हुए बालक के सम्बन्ध में अपने यह विचार प्रकट किए हैं—

"The child who cannot in the middle of the session do the work of the next lower class, should be regarded as backward."

अर्थात् वह बालक जो वर्ष के दौरान में, अपने से निचली कक्षा का भी काम नहीं कर सकता, उसे पिछड़ा हुआ बालक कहा जाना चाहिए।

पिछड़े हुए बालकों का श्रेणी-विभाजन—

पिछड़े बालकों को हम निम्नलिखित श्रेणियों में बाँट सकते हैं—

(i) मन्द-बुद्धि वाले बालक।

(ii) ज्ञानेन्द्रियों से निर्बल बालक।

(iii) अपंग बालक।

(iv) हकलाने वाले बालक।

(v) वातावरण और परिस्थितियों के कारण पिछड़े हुए बालक।

अब हम इन सब पर संक्षेप से कुछ विचार विमर्श करेंगे।

(i) मन्द बुद्धि वाले बालक (Feeble Minded Children)—
मन्द बुद्धि वाले बालको मे निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं—

(क) शारीरिक विशेषताएँ—पहले ऐसा समझा जाता था कि जो व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से कमजोर हो, वह तीव्र बुद्धि वाला होता है तथा शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति मन्द बुद्धि वाला होता है। परन्तु मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के आधार पर यह बात गलत सिद्ध हो चुकी है। इसके विपरीत यह कहा जाने लगा है कि शारीरिक स्वास्थ्य तथा मनुष्य के व्यक्तित्व मे बड़े निकट का सह-सम्बन्ध (Positive Correlation) है। यदि हम इस तथ्य को स्वीकार करें तो मन्द बुद्धि वाले बालको को शारीरिक दृष्टि से कमज़ोर होना चाहिए।

(ख) मानसिक विशेषताएँ—मन्द-बुद्धि वाले बालको की बुद्धि उपलब्धि (I. Q.) ७० से भी कम होती है। इस प्रकार के बालको की संख्या समाज मे केवल एक प्रतिशत ही होती है। मानसिक दृष्टि से मन्द-बुद्धि बालकों को निम्नलिखित श्रेणियो मे बांट सकते है—

बुद्धि उपलब्धि	५० से ७०	मूर्ख (Morones)
,, ,,	२५ से ५०	मूढ़ (Imbeciles)
	२५ से नीचे	जड़ (Idiots)

मूढ़ (Imbeciles) और जड़ (Idiots) बुद्धि वाले बालक बिन निर्देशन (Guidance) के कोई भी कार्य नहीं कर सकते। यहाँ त कि कपड़ा पहनना तथा खाना-पीना, इत्यादि कार्यों में भी इनको सहायता आवश्यकता पड़ती है।

मूर्ख (Morones) बुद्धि वाले किसी भी प्रकार का मानसिक का नहीं कर सकते। वे केवल शारीरिक कार्य ही कर सकते हैं। इसलिए अच्छ हो यदि उन्हें खेती बाड़ी (Agriculture) सम्बन्धी तथा हस्तकल (Craft) सम्बन्ध ज्ञान कराया जाए। ऐसे व्यक्ति अच्छे कारीग (Artisans) बन सकते हैं।

(ग) संवेगात्मक विशेषताएँ—मन्द-बुद्धि व्यक्ति आमतौर पर अप संवेगों के आधीन होते हैं। वे अपने संवेगों पर किसी भी प्रकार नियन्त्रण नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्तियों के संवेग बड़ी जल्दी उभारे ज सकते हैं।

मन्द-बुद्धि बालकों की शिक्षा—

साधारण बालकों के लिए जो शिक्षा उपयुक्त है, वह इनके लिए ठी नहीं हो सकती। हमें उनके लिए विशेष प्रबन्ध करना होगा। ऐसे बालक के लिए स्थूल (Concrete) तथा क्रियात्मक (Practical) विषयों पढ़ाने की व्यवस्था करनी होगी क्योंकि सूक्ष्म बातों को वे समझ नहीं सकेंगे बौद्धिक विषयों में वे साधारण बालकों से पीछे होते हैं परन्तु क्रियात्मक का में उनकी क्षमता साधारण बालकों के समान ही होती है। अतएव उनके पाठ् क्रम से ऐसे विषय निकाल देने होंगे जिन्हें काफी मेहनत के पश्चात् वे सीख लें परन्तु अपने व्यावहारिक जीवन में उसका कोई उपयोग नहीं कर सकें उन्हें भाषा तथा गणित का ज्ञान तो कराया जाएगा परन्तु उतना ही जित कि उसका उपयोग उनके दैनिक जीवन में हो सके। किसी, स्थूल औजार तथा क्रियात्मक कार्यों का अधिक प्रयोग इसी प्रकार करना चाहिए जि प्रकार कि हम छोटी आयु के बालकों के लिए करते हैं। कहने का तात्पर्य कि जो काम भी उन्हें दिया जाए, उनकी क्षमता शक्ति के अनुरूप हो।

अर्थात् वह बालक जो वर्ष के दौरान में, अपने से निचली कक्षा का भी काम नहीं कर सकता, उसे पिछड़ा हुआ बालक कहा जाना चाहिए।

पिछड़े हुए बालकों का श्रेणी-विभाजन—

पिछडे बालकों को हम निम्नलिखित श्रेणियो में बांट सकते हैं—

(i) मन्द-बुद्धि वाले बालक।

(ii) ज्ञानेन्द्रियों से निर्बल बालक।

(iii) अपंग बालक।

(iv) हकलाने वाले बालक।

(v) वातावरण और परिस्थितियो के कारण पिछड़ हुए बालक।

अब हम इन सब पर संक्षेप से कुछ विचार विमर्श करेंगे।

(i) मन्द बुद्धि वाले बालक (Feeble Minded Children)— मन्द बुद्धि वाले बालको मे निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं—

(क) शारीरिक विशेषताएँ—पहले ऐसा समझा जाता था कि जो व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से कमजोर हो, वह तीव्र बुद्धि वाला होता है तथा शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति मन्द बुद्धि वाला होता है। परन्तु मनोवैज्ञानिक परीक्षणो के आधार पर यह बात ग़लत सिद्ध हो चुकी है। इसके विपरीत यह कहा जाने लगा है कि शारीरिक स्वास्थ्य तथा मनुष्य के व्यक्तित्व मे बड़े निकट का सह-सम्बन्ध (Positive Correlation) है। यदि हम, इस तथ्य को स्वीकार करें तो मन्द बुद्धि वाले बालको को शारीरिक दृष्टि से कमजोर होना चाहिए।

(ख) मानसिक विशेषताएं—मन्द-बुद्धि वाले बालको की बुद्धि उपलब्धि (I. Q.) ७० से भी कम होती है। इस प्रकार के बालकों की संख्या समाज मे केवल एक प्रतिशत ही होती है। मानसिक दृष्टि से मन्द-बुद्धि बालकों को निम्नलिखित श्रेणियों में बांट सकते हैं—

बुद्धि उपलब्धि	५० से ७०	मूर्ख (Morones)
,, ,,	२५ से ५०	मूढ़ (Imbeciles)
,, ,,	२५ से नीचे	जड़ (Idiots)

न बालकों में इस प्रकार का दोष पाया जाता है। बालक पढ़ते समय,
स्तक को कितनी दूरी पर रखता है, ब्लाकबोर्ड तथा मानचित्र इत्यादि देखते
मय, उसकी आँखों की मुद्रा कैसी है, इत्यादि बातों से बालकों के दृष्टि-दोष
 सम्बन्ध में अनुमान लगाया जा सकता है। इसी प्रकार किसी बात को सुनते
मय, बालक का हाव-भाव कैसा है, इससे उसकी श्रवण-शक्ति के सम्बन्ध में
नुमान लगाया जा सकता है। जिस बालक के सम्बन्ध में तनिक सा भी
न्देह हो, उसकी डाक्टरी परीक्षा करवा लेनी चाहिए। अच्छा तो यही है कि
भी बालकों की समय-समय पर डाक्टरी परीक्षा करवा ली जाए और
ालकों की ज्ञानेन्द्रियों सम्बन्धी दोषों का पता चल सके।

जब यह पता चल जाए कि किन-किन बालकों में ज्ञानेन्द्रियों सम्बन्धी दोष पाये जाते हैं, तो उनके माता-पिता तथा अभिभावकों को तुरन्त सूचना दी जानी चाहिए ताकि वे अपने बच्चों का उचित उपचार कर सकें।

साथ ही साथ पाठशाला में भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बालकों में इन दोषों की वृद्धि न हो। कम सुनने वाले बालकों को इस बात के लिए प्रेरित किया जाए कि वे बातचीत करते समय दूसरों के मुँह की ओर देखते रहें और उनके होठों के आकार का अध्ययन करें। कभी-कभी वे इस बात का अभ्यास करने के लिए दर्पण से भी सहायता ले सकते हैं। कमज़ोर दृष्टि वाले बालकों को कक्षा में सबसे आगे ही बिठलाना चाहिए और ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए जिससे उनकी आँखों पर जोर पड़े।

(iii) अपंग बालक—अपंग बालकों की श्रेणी में हम उन बालकों को ले सकते हैं जो किसी बीमारी अथवा दुर्घटना के कारण अपंग हो गए हैं। इस प्रकार के बालकों में अन्धे, लूले, लगड़े, गूंगे, बहरे इत्यादि कई प्रकार के बालक आजाएँगे। मानसिक परीक्षाओं (Mental Tests) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के बालकों की बुद्धि मन्द नहीं होती।

ऐसे बालकों की शिक्षा के सम्बन्ध में सब से पहली बात तो यह है कि उनके साथ केवल सहानुभूति प्रदर्शित करने की बजाय, उन्हें प्रोत्साहन देना

सम्बन्ध में सिरिल बर्ट (Cyril Burt) ने अपने यह उद्गार प्रकट किए हैं —

> "मन्द-बुद्धि बालकों के मस्तिष्क में ज्ञान अथवा कुशलता की पूरी मात्रा भर देने का प्रयास करना उतना ही मूर्खतापूर्ण होगा जितना आठ औंस की बोतल मे बारह औंस औषधि भरने का प्रयत्न करना।"

कई शिक्षा-शास्त्रियों का ऐसा विचार है कि इस प्रकार के बालकों के लिए अलग से कक्षाओ या पाठशालाओ की व्यवस्था की जाए जहाँ विशेष प्रयास करके उनकी कमजोरी को दूर किया जा सके। परन्तु ऐसा करने से कई दोषयुक्त परिणाम निकल सकते हैं। दूसरे विद्यार्थी इस प्रकार की कक्षाओं को मूर्खों की कक्षाएँ कहेंगे। इस प्रकार अपमानित होने पर ऐसा बालकों का उत्साह और भी मन्द पड़ जाएगा।

यदि इस प्रकार के बालकों को सब के साथ पढ़ाते हैं तो सब की गति मन्द हो जाती है।

और यदि इन बालकों को, उनकी मानसिक आयु वाले बालकों की कक्षा मे भेज दिया जाता है, तो शारीरिक दृष्टि से उन से श्रेष्ठ होने के कारण, ये उन्हे मारने लगेंगे।

यदि पाठशाला मे इस प्रकार का प्रबन्ध किया जा सके कि सभी कक्षाओ में एक घण्टे मे एक ही विषय पढ़ाया जाए तो बहुत अच्छा रहेगा। जो बालक जिस विषय मे, जिस कक्षा की योग्यता का होगा, उस विषय को वह उसी कक्षा के साथ पढ़ सकता है। अमेरिका इत्यादि प्रगतिशील देशों में इस प्रकार की श्रेणी रहित कक्षाएँ (Gradeless Classes) बहुत ही सफल हुई है। कोई कारण नही कि हम भी ऐसा प्रयोग अपने देश मे क्यो न करें पाठशाला के अधिकारियों को इस महत्वपूर्ण विषय की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

(ii) ज्ञानेन्द्रियों से निर्बल बालक—ज्ञानेन्द्रियो से निर्बल बालको में हम उन्ही बालको को गिनेंगे जिनके देखने की शक्ति तथा सुनने की शक्ति कुछ कमजोर है। अध्यापक को पहले इस बात का पता लगाना चाहिए कि किन-